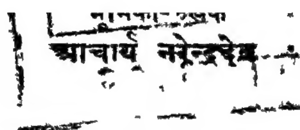
लड़खड़ाती दुनिया

मूल लेखक

पण्डित जवाहरलाल नेहरू



हिन्दी सम्पादक

सुधीन्द्र एम्. ए., साहित्य-रत्न

सर्वोदय साहित्य-माला : १०३वाँ ग्रन्थ

सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली

शाखाएँ

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर : वर्धा : कलकत्ता : इलाहाबाद

२६ जनवरी १९४१ : २०००
६ अप्रैल १९४२ : ३०००

मूल्य
चौदह आना

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नयी दिल्ली

मुद्रक
देवीप्रसाद शर्मा
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नयी दिल्ली

दो शब्द

इस पुस्तक में जो मजमून जमा [illegible] उनको मैंने पिछले तीन-चार बरस के अन्दर लिखा था। इस तेजी से [illegible] दुनिया में वह काफी पुराने हो गये। लेकिन फिर भी आज के सवालों के समझने में शायद मदद करें। यह किताब पारसाल निकली थी जब मैं जेल में था। अक्सर लोगों ने उसपर इनायत की नजर से देखा और जितनी कापियाँ छपी थीं वह खतम हो गयीं। इसलिए फिर से छपाने की आवश्यकता हुई।

इसके लेख चाहे पुराने हों या नये, किताब का नाम 'लड़खड़ाती दुनिया' बहुत मौजूं और उचित है। अजीब दुनिया में हम आज-कल रहते हैं जिसकी सब पुरानी बुनियाद ढीली पड़ गयी और फिर से कही जमती नही। कभी-न-कभी फिर जमेगी लेकिन वह कोई दूसरी दुनिया होगी क्योंकि आजकल का जमाना अपने आखिरी दिन देख रहा है। हमारे सामने बड़े साम्राज्य गिरे और गिर रहे हैं। रोज तस्वीर बदलती है। लेकिन सवाल तो यह है कि हम भी इस तमाशे में हिस्सा ले रहे हैं या खाली दर्शक हैं? दर्शकों की जगहें तो अब कहीं रही नहीं और जो बचना भी चाहते हैं वह भी कहीं जा नहीं सकते। बचें कहाँ और किसलिए? काम हमारा तो इस समय, इस जगह पर है।

आश्चर्य इस बात पर होता है कि किस तरह से इंग्लैण्ड और फ्रांस ने अपनी जड खोदी। चीन मे, स्पेन में और म्यूनिक के समझौते से उन्होंने अपने को बदनाम किया और कमजोर भी हुए। उस समय भी जो हम लोग कांग्रेस की ओर से इन विदेशी प्रश्नो पर कहते थे वह ठीक निकला और अब इंग्लैण्डवाले पछताते हैं कि क्यों गलती की। पुरानी गलतियाँ तो कभी-कभी समझ में आजाती हैं लेकिन फिर भी नयी

ग़लतियाँ होती जाती हैं। उनसे छुटकारा नहीं मिल सकता जबतक दिमाग़ न बदले।

हिन्दुस्तान इन पुरानी और नयी ग़लतियों का नमूना है। अंग्रेज़ी साम्राज्य तो यहाँ ख़तम हो रहा है—उसको तो ख़तम होना ही है—लेकिन ख़तम होते-होते हमको कितनी बीमारियाँ देकर जा रहा है। काफ़ी मुसीबतें हमको घेर रही हैं, काफ़ी मुश्किल सवाल हमको चिमटे हैं। लेकिन यह तो इस लडखडाती दुनिया में होना ही था। तब हम शिकायत क्यों करें? क्रान्ति और इन्किलाब के नारे हमने उठाये—अब वह क्रांति हमारे पास आयी। कुछ रूप अच्छा है, कुछ बुरा, कुछ डरावना, जैसा कि क्रान्ति का हमेशा होता है। हम उसका स्वागत कैसे करें? हिम्मत और वीरता और एकता से और अपने छोटे झगड़ों और बहसों को भूलकर हम अपना कद ऊँचा करके बड़े आदमी बनें और फिर बड़े सवालों को लेकर उनको हल करें।

इलाहाबाद,
८ मार्च, १९४२

जवाहरलाल नेहरू

पहले संस्करण की भूमिका

आज हम एक मोड़ पर खड़े हैं। जिस रास्ते पर अबतक दुनिया चलती थी उसे छोड़कर अब उसे दूसरी राह अख्तियार करनी पड़ेगी। पुराने आचार-विचार, पुरानी परम्पराएँ और संघटन टूटेंगे और नये उनकी जगह लेंगे। यह नयी राह राहत की होगी या आज से भी ज्यादा कठिन और मुसीबत की होगी, यह कहना मुश्किल है, किन्तु इसमें कुछ शक नहीं कि एक नये युग का प्रवर्तन होने जा रहा है। १९१४–१८ के रक्त-स्नान के बाद भी दुनिया न सँभली। आज वह पुराना इतिहास फिर से दुहराया जा रहा है। मानव-सभ्यता आज फिर खतरे में है। चारो ओर पाशविकता का राज्य है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में किसी बात का लिहाज और सकोच नहीं रह गया है और जीवन के ऊँचे आदर्श लुप्त-प्राय हो रहे हैं। अगर दुनिया बदलती है, तो हमारा देश भी इन बड़ी तब्दीलियों से अछूता न रह जायेगा। अगर दुनिया पर तबाही आयी, तो हम भी तबाही से बच न सकेंगे और यदि दुनिया में नया उजाला हुआ और एक ऐसा सामाजिक और आर्थिक सिलसिला कायम हुआ, जिससे मानवता की प्यास बुझनेवाली है, जिसके जरिये जनता की आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जरूरतें पूरी होनेवाली हैं, तो हम भी इस तरक्की में साझेदार होंगे। अतः दुनिया में आज क्या हो रहा है, इसके प्रति हम उदासीन नहीं रह सकते। अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की धार से अलग रहकर न हम जिन्दा ही रह सकते हैं और न तरक्की ही कर सकते हैं, इसलिए हमको इस बात के विचारने की जरूरत है कि दुनिया पर यह सकट क्यों आया और इसका अन्त कैसे हो सकता है? समाजशास्त्र ही इस सवाल का सन्तोषप्रद जवाब दे सकता है। युद्ध इसीलिए होते हैं कि मुट्ठीभर धन-कुबेर समाज की संपत्ति पैदा करने-वाले समुदाय का आर्थिक शोषण करना चाहते हैं। उनको अपने मुनाफे से मतलब। वे अपने वर्ग के स्वार्थ को देश के स्वार्थ पर भी तरजीह देने को तैयार हैं, न उनकी कोई मातृभूमि है, न पितृभूमि। मुनाफा

कमाने के लिए वे राष्ट्रो को लडवा देंगे और लाखो देशवासियों की हत्या का पाप अपने ऊपर लेने से न हिचकिचायेगे। मुनाफ़ा उनके लिए सर्वोपरि है, वही उनका ईश्वर और धर्म है। यह अमिट सत्य है कि जब तक पूँजीवादी प्रथा कायम है तबतक ससार मे भीषण युद्ध होते रहेंगे।

आज चारो ओर निराशा छायी हुई है, फैसिज्म और साम्राज्यवाद का बोलबाला है, तिसपर भी मानवता की अन्तर्वेदना और मार्मिक पीडा की कराह सुननेवालों को सुनाई पड़ ही जाती है। प्रगतिशील शक्तियाँ आज दबा दी गयी है लेकिन समय आने ही वह उभरेंगी और इतिहास का बदला चुकायेगी। यदि हम अपने राष्ट्रीय जीवन को पुष्ट करना चाहते है, तो हमारी जगह इन्हीं शक्तियो के साथ है। माना, आज ये शक्तियाँ क्षीण और दुर्बल है, लेकिन यह युगधर्म के अनुकूल है और इन्हीका भविष्य उज्ज्वल है। आज की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का अध्ययन करके हमको निश्चय कर लेना है कि हमारे सच्चे सहयोगी कौन है?

'लडखडाती दुनिया' मे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है, इस सग्रह से परिस्थिति को समझने और अपना मार्ग स्थिर करने मे काफी मदद मिलती है। प० जवाहरलाल नेहरू अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के एक बडे विद्वान् है। हमारे राजनीतिज्ञो मे इस विषय मे उनका मुकाबिला कोई नही कर सकता। उन्होने इस विषय का केवल अच्छा अध्ययन ही नही किया है, बल्कि विभिन्न देशो के प्रगतिशील व्यक्तियो और सस्थाओ के निकट सपर्क मे भी वह आये है। भारत के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहानुभूति हासिल करने मे उनका खासा हाथ है। हिन्दुस्तान के सवालो पर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करना उन्हीसे हमने सीखा है, हमारे अन्य नेता इस ओर सदा उदासीन रहे और अन्तर्राष्ट्रीय बातों की चर्चा करने के लिए जवाहरलालजी का मज़ाक उड़ाते रहे। जवाहरलालजी ने ही सबसे पहले हमको आनेवाले युद्ध के खतरे से आगाह किया था। उस समय बहुत लोग यह समझते थे कि जवाहरलालजी का यह एक खब्त है। अबीसोनिया, स्पेन और

चीन के साथ जब उन्होंने सहानुभूति दिखायी और भारत की सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए खतरों की परवा न कर स्पेन और चीन की यात्रा की, तब भी लोग मजाक करने से बाज न रहे। यह कहा गया कि जिसके साथ जवाहरलालजी सहानुभूति दिखाते हैं वही हार जाता है। यह भी तोहमत लगायी गयी कि वह यथार्थवादी नहीं हैं, महज हवा में उड़ते हैं। जीतती हुई ताकत का साथ तो सब देते हैं। संकट के आदर्श और सिद्धान्त को भुलाकर प्रायः लोग अवसरवादिता की शरण लेते हैं, पर बिरले ही ऐसे धीरचित्त होते हैं, जो ऐसे कठिन समय में भी आदर्शों को झुठलाते नहीं और अपने मार्ग से विचलित नहीं होते। संसार उन्हीं की पूजा करता है, वही मानवता के सच्चे आधार हैं, लेकिन अगर हम यथार्थवाद की दृष्टि से भी देखें तो भी हमारी रक्षा इसी में है कि हम उन्हीं ताकतों का साथ दें, जो आज भले ही कमजोर हों, पर भविष्य जिनके साथ है।

हमारा मुल्क एक अरसे से साम्राज्यवाद का शिकार रहा है। हमारे देश के करोड़ों आदमी बेकार और भूखे हैं। यदि हमको आजाद होना है और देश की गरीबी को मिटाना है, तो यह काम उन ताकतों की मदद से नहीं हो सकता जो दुनिया का शोषण करती हैं और सबको गुलाम बनाती फिरती हैं। उदाहरण के लिए हिन्दुस्तान जापान की मदद से आजाद नहीं हो सकता। जापान एक फ़ौजी और फ़ासिस्ट ताकत है। वह पूर्वी एशिया में अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। यदि यह उद्देश्य सफल हुआ, तो हिन्दुस्तान भी एक दिन उसका शिकार बनेगा। आज अगर चीन जापान के आक्रमण को न रोके और जापान से सुलह करले, तो पूर्वीय एशिया के लिए एक बड़ा संकट खड़ा होजाये। क्या हम नहीं देखते कि चीन जापान का मुकाबला कर एक ऐसा मज-बूत बाँध तैयार किये हुए है जो जापानी फैसिज्म को एशिया में बढ़ते से रोकता है? चीन इस तरह भारत तथा पूर्वी एशिया के अन्य देशों के लिए भी लड़ रहा है, इस कारण भी हमारा कर्तव्य है कि चीन से हम अपना नाता जोड़ें। जवाहरलालजी चीन को भारत के बहुत निकट

ले आये है। यूरोप की घटनाओं का प्रभाव हमपर पड़ेगा ही, पर उससे भी कही अधिक हमारे पडोसी राष्ट्रों की हलचल का प्रभाव हमपर पडनेवाला है। यदि हम अपने पडोसी राष्ट्रों के साथ सद्भाव और मैत्री कायम कर सके तो, हम अपने चारो ओर ऐसी अभेद्य दीवारे खडी कर लेगे जो हिमालय की तरह सन्तरी का काम देगी। जहाँ यूरोप के राष्ट्र अपने अस्त्र-शस्त्र के भरोसे अपनी रक्षा मे तत्पर है, वहाँ नि शस्त्र भारत अपनी सहृदयता और आदर्शवादिता के भरोसे अपनी और अपने पडोसियो की मिल-जुलकर रक्षा करेगा। आनेवाले दिन हम सबके लिए बडे सकट के है केवल परस्पर सहयोग और सद्भाव द्वारा हम विस्तार पा सकेगे। चीन की मैत्री हमारे बडे काम की चीज होगी। क्या अच्छा होता यदि जवाहरलालजी स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्रो मे भी एक चक्कर लगाकर इस शुभ काम को पूरा कर देते, उनके काम का महत्त्व आनेवाले युग में ही ठीक-ठीक आँका जा सकेगा।

स्पेन की यात्रा करके जनक्रान्ति का जो अनुभव उन्होने प्राप्त किया है, वह वक्त आने पर हमारे काम आयेगा। बार्सीलोना और केटोलोनिया के निहत्थे और रणशिक्षा से वचित मजदूरो ने अपने प्राणो को होमकर दुश्मन की मशीनगनो को बेकार करके जिस असाधारण शौर्य का परिचय दिया था, वह पद-दलित जनता के लिए एक गर्व की वस्तु है। क्या यह उन आलोचकों को मुंहतोड जवाब नही है, जो बराबर हमको याद दिलाया करते है कि अपढ जनता से कुछ हो नही सकता ?

जवाहरलालजी के इन लेखो से पाठकों को वस्तुस्थिति का प्रामाणिक ज्ञान ही न होगा, बल्कि वे भविष्य का मार्ग भी स्थिर कर सकेगे। उनकी अधिकारयुक्त वाणी रहस्य का उद्घाटन करके पथ-प्रदर्शक का काम करती है।

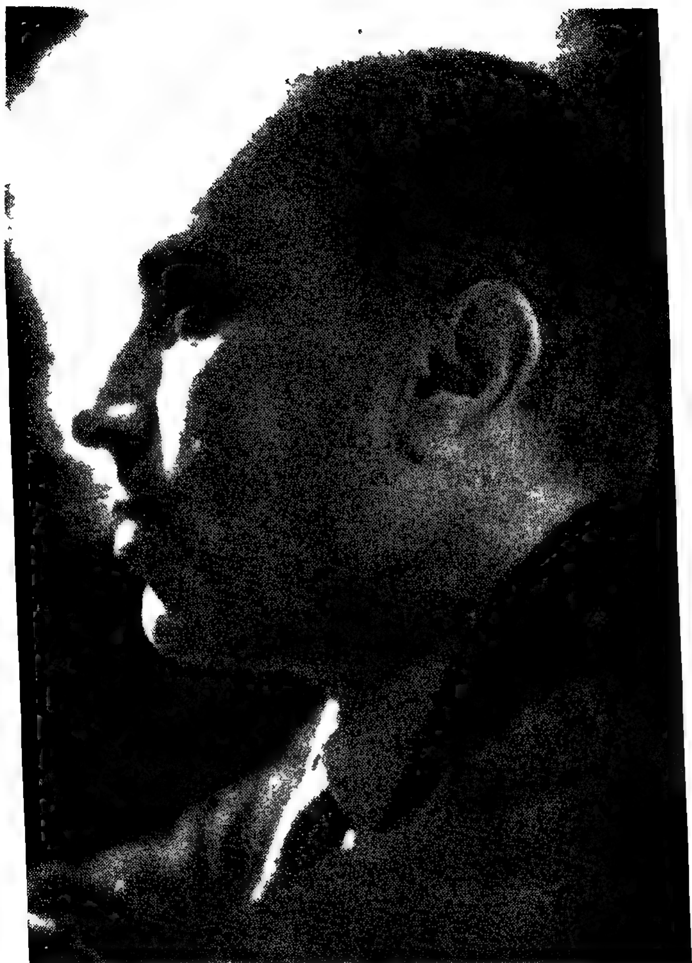
फ़ैज़ाबाद,
२९-१२-४०

नरेन्द्रदेव

सूची

चीन

स्पेन



पण्डित जवाहरलाल नेहरू

: १ :

शान्ति और साम्राज्य

यह परिषद् 'इण्डिया लीग' और 'लण्डन फेडरेशन ऑव पीस कौन्सिल्स' सस्थाओ की ओर से शान्ति और साम्राज्य की समस्याओ पर विचार करने के लिए बुलायी गयी है। शान्ति और साम्राज्य !—मूल मे ही एक दूसरे के विरोधी शब्दो और विचारो का यह अनोखा मेल है, लेकिन मेरी समझ मे उनको इस तरीके से एक साथ लाने और परिषद् की आयोजना करने की सूझ आनददायक रही। मै समझता हूँ जबतक हम अपने साम्राज्यवादी विचारो को दूर न कर देगे, तबतक हम इस दुनिया में 'शान्ति' नही पा सकेगे। इसलिए शान्ति की समस्या का सार साम्राज्य की समस्या ही है।

जबतक साम्राज्य फूलते-फलते रहते है, तबतक ऐसे अर्से आ सकते है जबकि राष्ट्रो के बीच खुली लडाई न हो रही हो, लेकिन तब भी शाति नही होती, क्योकि तब सघर्ष और युद्ध की तैयारियाँ चलती रहती है। साम्राज्यवादी विरोधी राष्ट्रो मे, शासन करनेवाली सत्ता और शासित जनता में और वर्गो मे सघर्ष तो रहता ही है क्योकि साम्राज्यवादी राष्ट्र का आधार ही शासित जनता का दमन और शोषण है इसलिए लाज़मी है कि उसका विरोध भी होगा और उस शासन को फेक देने की कोशिशे की जायेगी। इस बुनियाद पर कोई शाति कायम नही की जा सकती।

आप और मै फासिस्ट हमलो के इन दिनो में फ़ासिस्ट आतंक को रोकने के लिए अक्सर कुछ न कुछ करते रहते है, लेकिन हमेशा साम्राज्यवादी विचारों को भी रोकने के लिए ऐसा नही करते। बहुत-से लोग

दोनो मे फर्क ढूंढने की कोशिश किया करते है । वे साम्राज्यवादी विचार को बहुत अच्छा तो नही समझते, लेकिन समझते है कि शायद हम एक अर्से तक उसे निभा सके, हालाँकि फासिज़्म से हमारा काम चलना मुमकिन नही है । मै चाहता हूँ कि आप इस परिषद् मे इसपर विचार करेंगे और इस बात का पता लगाने की कोशिश करेंगे कि आखिर हम किस हदतक इन दोनो मे फर्क समझे ?

हो सकता है कि चूंकि मै ऐसे देश से आया हूँ जो साम्राज्यवाद के अधीन है, इसलिए साम्राज्य के इस सवाल को बहुत ज्यादा महत्त्व दे रहा हूँ । लेकिन इस बात को जाने दीजिए तो भी मुझे ऐसा लगता है कि आप फासिज्म और 'साम्राज्यवाद' नाम की दोनों धारणाओ मे फर्क नही पा सकते और फासिज्म असल मे साम्राज्यवाद का ही तीव्र रूप है । इसलिए अगर आप फासिज्म से लडना चाहते है तो आपका साम्राज्य-वाद से लडना लाजमी है ।

उस वक्त जबकि फासिस्ट प्रतिक्रियावादी फौजे लडने के लिए खडी होकर दुनिया को आतकित करती हों, और दूसरी साम्राज्यवादी सरकारे अक्सर उनको बढावा और मदद देती हो, तब हमे बडी विकट और जटिल परिस्थिति का सामना करना पडता है । आज, जबकि दुनिया की प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ इकट्ठी होकर सगठित हो रही है, उनका सामना करने और उन्हे रोकने के लिए हमे भी अपने तुच्छ भेद-भावो को भूलकर सगठित हो जाना होगा ।

हम देखते है कि साम्राज्यवादी राष्ट्रो मे और दूसरे देशो में फासिज़्म फैल रहा है और उसके पक्ष में सब तरह का प्रोपेगेण्डा भी चल रहा है। शायद आप सब जानते होंगे कि आज दक्षिणी अमरीका में फासिस्ट राष्ट्रो की ओर से बडे जोरों का प्रचार हो रहा है। हम यह भी देख

रहे है कि साम्राज्यवादी देश धीरे-धीरे करके फासिज्म की ओर बढते जा रहे है, गो कभी-कभी वे अपने यहाँ प्रजातन्त्र की बाते कर लिया करते है। वे तो यह करेगें ही क्योकि साम्राज्यवाद ही उनकी नीव और पार्श्वभूमि है इस कारण आखिरकार वे फासिज्म को रोक नहीं सकते। हाँ, वे उस पार्श्वभूमि को ही छोड दे तो बात दूसरी है।

प्रतिक्रियावादी शक्तियों का आज एक प्रकार का सगठन हो रहा है। हम उसका मुकाबला कैसे करे ? प्रतिक्राति के विरुद्ध प्रगति की शक्तियाँ जुटाकर। और अगर उन्ही लोगो की, जो कि प्रगतिशील शक्तियों के प्रतिनिधि है, बिखरने की और छोटी-छोटी बातों पर बहुत ज्यादा बहस करके बडे प्रश्नो को खतरे मे डालने की आदत हो जाये तो वे फासिस्ट और साम्राज्यवादी आतक को रोकने मे कभी सफल नही हो सकेगें। किसी भी वक्त यह आपके सोचने-विचारने की बात होगी कि हमे सगटित रहना है। लेकिन हमारे सामने जो तरह-तरह की कठिनाइयाँ आ गयी है, उनके कारण तो यह बहुत ही जरूरी बात हो गयी है।

अब तो एक सयुक्त मोर्चा ही—और राष्ट्रीय सयुक्त मोर्चा नही वल्कि विश्वव्यापी सयुक्त मोर्चा ही—हमारे मकसद को पूरा कर सकता है। और जिन सकटो मे से हम निकल चुके है, आज हमें सबसे अधिक आशा दिलानेवाले लक्षण वे ही है जो ससार भर की प्रगति और शान्ति की शक्तियों के सगठन की ओर इशारा करते है।

आपको याद होगा कि चीन के अन्दरूनी सघर्ष ने ही उस राष्ट्र को कमजोर बना दिया था, लेकिन पिछले साल जब जापान का हमला हुआ तो हमने देखा कि जो लोग आपस मे बुरी तरह लड़ रहे थे और एक दूसरे को मिटा रहे थे, जिन्होने एक-दूसरे के खिलाफ बहुत ज्यादा कटुता पैदा कर ली थी, वे ही इतने महान् हो गये कि उन्होंने सकट

को देखा, और उससे लडने के लिए सगठित हुए । आज हम सालभर से देखते आ रहे है कि चीन के सगठित लोग हमले के खिलाफ लड रहे है । इसी तरह, आप देखेगे कि कि हरेक देश मे एकता लाने के थोडे या बहुत सफल प्रयत्न हो रहे है और ससार भर के भिन्न-भिन्न राष्ट्रो के ये सगठित दल अन्तर्राष्ट्रीय सगठन बनाना चाहते है।

यूरोप और पश्चिम मे, जहाँ कि प्रगतिशील दलों का इतिहास जरा लम्बा है और भूमिका थोडी भिन्न है, आपको फायदे भी है और नुक्सान भी है । मगर एशिया मे, जहाँ ऐसे दल अभी बने ही है, यह प्रश्न अक्सर राष्ट्रीय प्रश्न से छिपा रहता है और किसी के लिए अन्तर्राष्ट्रीयता की भाषा मे इस प्रश्न को सोचना उतना आसान नही है क्योकि हमे सबसे पहले राष्ट्रीय राजनीति की भावना के अनुसार सोचना पडता है ।

यह सब होते हुए भी, आधुनिक परिवर्तनो ने और खासतौर से अबीसीनिया, स्पेन और चीन मे हुई घटनाओ ने अब लोगो को अन्तर्राष्ट्रीयता की भाषा मे सोचने को मजबूर कर दिया है । एशिया के इन कुछ देशो मे हम बहुत बडा परिवर्तन हुआ पाते है, कारण कि अपने सघर्षो मे लगे रहने पर भी, हम दुनिया के दूसरे हिस्सो मे होनेवाले सामाजिक सघर्षो पर अधिकाधिक सोचने लगे और अनुभव करने लगे कि उनका तमाम दुनिया पर असर पडा है इसलिए हमपर भी पडा है ।

अगर हम फासिस्टो के आतक को सफलतापूर्वक रोकना चाहते है तो हमको साम्राज्यवाद का भी उतना ही विरोध करना चाहिए, नही तो हम कामयाब न होगे । ब्रितानिया की विदेशी नीति इसी करुणाजनक असफलता का नमूना है, क्योकि जबतक वह साम्राज्यवाद की बात सोचा-करेगी तबतक न तो वह फासिस्ट हमलों का मुकाबला

कर सकती है और न दुनिया की प्रगतिशील शक्तियों से अपना सम्बन्ध जोड सकती है। और इस प्रकार असफल होकर वह उसी अपनी सल्तनत को नष्ट करने मे मदद भी कर रही है, जिसे वह कायम रखना चाहती है। हमारे सामने यह इस बात का जीता-जागता नमूना है कि किस प्रकार साम्राज्यवाद और फासिज्म की बुनियाद में गठजोड़ी है और साम्राज्यवाद एक दूसरे से विरोधी बाते पैदा करता है।

अगर हमारा यह विश्वास है—मै मानता हूँ हममे से अधिकाश का है—कि साम्राज्यवाद का फासिज्म से नाता है और दोनो के दोनों शान्ति के दुश्मन है तो हमे दोनो को मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए और दोनो मे फर्क ढूंढने की कोशिश छोड देनी चाहिए। इसलिए हमें खुद साम्राज्यवाद को ही उखाडने की कोशिश करनी है और दुनिया भर के पराधीन लोगो के लिए पूर्ण स्वतत्रता पाने मे जुट जाना है।

अब, हमसे अक्सर कहा जाता है कि साम्राज्यवादी धारणा के बदले हमे राष्ट्रों के कॉमनवेल्थ की धारणा बनानी चाहिए। यह शब्द तो हरेक को अच्छा लगता है, क्योकि हम सब चाहते है कि इस दुनिया मे राष्ट्रों का एक कॉमनवेल्थ बने। लेकिन अगर हम सोच ले कि साम्राज्य ही धीरे-धीरे करके कॉमनवेल्थ की शक्ल मे बदल जायेगा और अर्थनीतिक तथा राजनीतिक दृष्टि से उसका अपना ढाँचा करीब-करीब वैसा ही बना रहे, तो मुझे ऐसा जान पडता है कि हम अपने आपको बडे भारी धोखे मे रख रहे है। ऐसा कोई सच्चा कॉमनवेल्थ हो ही नही सकता कि जो साम्राज्य से पैदा हुआ हो। उसके जन्मदेनेवाले तो दूसरे ही होगे।

ब्रिटिश कॉमनवेल्थ मे बहुतेरे देश है जो करीब-करीब स्वतत्र है। लेकिन हम यह न भूल जाये कि ब्रिटिश साम्राज्य मे एक विस्तृत भू-खण्ड

और एक बडी भारी आबादी है जो बिल्कुल पराधीन है और अगर आप यह सोचे कि वह पराधीन जनता धीरे-धीरे उस कॉमनवेल्थ मे बराबरी की साझेदार बननेवाली है तो आपको बडी भारी मुश्किले मालूम होगी। आपको पता लगेगा कि यदि किसी तरह राजनीतिक उपायो से वह प्रक्रिया हो भी गयी तो ऐसे कई आर्थिक बन्धन रहेंगे जो एक स्वतन्त्र कॉमनवेल्थ से मेल नही खाते और उनसे उन पराधीन लोगों को कोई सच्ची स्वतन्त्रता नही मिल सकेगी, यहाँतक कि यदि वे अपनी आर्थिक व्यवस्था बदलना चाहेगे तो उसमे रुकावट आयेगी और वे अपनी सामाजिक समस्याएँ नही सुलझा पायेगे।

मै सोचता हूँ, हममे से हरेक राष्ट्रो के सच्चे कॉमनवेल्थ के पक्ष मे होगा। लेकिन हम उसे कुछ ही देशो और राष्ट्रो तक सीमित कर देना क्यो चाहे ? इसका मतलब यह हुआ कि आप एक वर्ग का विरोध करने के लिए दूसरा वर्ग बना रहे है। दूसरे शब्दो मे आप साम्राज्य की धारणा पर नयी रचना कर रहे है और एक साम्राज्य की टक्कर दूसरे साम्राज्य से होती है। इससे एक समूह के भीतर लडाई होने का खतरा भले ही कम हो जाये, समूहो के बीच मे लडाई का खतरा तो बढ ही जायेगा।

इसलिए अगर हम किसी सच्चे कॉमनवेल्थ की बात सोच रहे है तो फिर यह जरूरी हो जाता है कि हम साम्राज्यवाद के विचारों को छोड दे और नये आधार पर नयी रचना करे—वह आधार हो सब लोगो के लिए पूरी स्वतन्त्रता का। ऐसी व्यवस्था के लिए हरेक राष्ट्र को दूसरो के साथ-साथ प्रभुत्व (सत्ता) के कुछ चिह्न छोडने होंगे। इसी बुनियाद पर हम सामूहिक सुरक्षितता और शाति स्थापित कर सकते है।

आज एशिया मे, अफ्रीका मे और दूसरी जगह ऐसी एक विशाल जनसख्या है जो पराधीन है और जबतक हम उस पराधीनता को दूर न

कर दे और साम्राज्यवादी विचार नष्ट न हो जाये, तबतक हमें मालूम होगा कि यही शाति की बगल मे चुभनेवाला एक काँटा है।

अफ्रीका और दूसरे देशो मे मैण्डेट (शासनादेश) देने की प्रथा, मेरी समझ मे, बडी खतरनाक बात है, क्योकि वह एक बुरी चीज को अच्छे नाम मे छिपाकर रखती है। साररूप मे वह दूसरे भेष मे साम्राज्यवादी प्रथा ही है। एक शख्स को दूसरे का ट्रस्टी बनाना और उसे इससे नफ़ा उठाने देना हमेशा खतरनाक है। यह हो सकता है कि कुछ देशो में जहाँ आप पूरी आजादी कायम करना चाहते है, वहाँ उसी प्रकार की सरकार उतनी जल्दी कायम न हो सके जितनी जल्दी दूसरी जगह हो सकती हो, लेकिन चलना आपको यही आधार लेकर है कि हरेक पराधीन जनता को पूर्ण स्वतत्रता मिले और फिर अगर जरूरत हो तो व्यावहारिक रूप से आगे बढा जाये। हालाँकि व्यक्तिगत रूप से मुझे मदद पहुँचाने के इन वायदो मे भरोसा नही है, मगर कभी-कभी वे जरूरी हो सकती है। लेकिन मै नही समझता कि आप इस शासनादेश प्रथा मे से बाहर निकलने का रास्ता पा सकते है; क्योंकि वह उसी बुनियाद पर क़ायम है जिसपर कि खुद साम्राज्यवाद।

मैने आपको बताया कि इस सकट की वजह आज से भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की जनता मे सगठन और अतर्राष्ट्रीय भाईचारे और बन्धुत्व की भावना बढ रही है। जो राष्ट्र मित्र बनकर रहना चाहते है उन्हें निकाल देने से इस अतर्राष्ट्रीय बन्धु-भाव की प्रगति जोखम में पड जायेगी। हिन्दुस्तान के निवासी पिछले कई युगो से चीन-निवासियों के साथ अत्यन्त मित्रता का व्यवहार करते आ रहे है। उनमे कभी कोई झगडा नहीं हुआ। हमारे जिन मित्र ने चीन के निवासियो की ओर से बधाइयाँ प्रकट की है, मै उनकी भूल को दुरुस्त करने की गुस्ताखी कर रहा हूँ। उन्होंने कहा

कि चीनी यात्री हिन्दुस्तान मे १२वी सदी में आये। वे १००० वर्ष पिछड गये है। वे उससे भी १००० वर्ष पहले हिन्दुस्तान मे आये थे और उनकी यात्राओ के ग्रन्थो मे इसका वर्णन है। तो दोनो का सम्पर्क बहुत पुराना है, लेकिन इसके अलावा भी, हाल के इस विश्व और चीन के सकट ने हमे एक-दूसरे के बहुत अधिक निकट ला दिया है। अब तो हमें सगठित होकर रहना चाहिए, ससार की शाति और प्रगति के लिए आपस मे सहयोग रखना चाहिए। अगर हम चाहे तो ऐसा क्यो नही कर सकते ?

तो, अगर आप आज के ससार पर निगाह डाले तो आपको ऐसे देश मिलेगे जो किसी न किसी कारण से एक विश्व-व्यवस्थामे शामिल नही होगे, लेकिन यह तो कोई ऐसा कारण नही कि हम ऐसी विश्व-व्यवस्था बनाने के लिए जुट न पडे और उसे कुछ खास-खास राष्ट्रों तक ही सीमित करले।

इसलिए, राष्ट्रो की एक मर्यादित कॉमनवेल्थ की धारणा का विरोध होना चाहिए और अधिक व्यापक कॉमनवेल्थ की धारणा बननी चाहिए। सिर्फ तभी हम सामूहिक सुरक्षितता का अपना लक्ष्य सचमुच पा सकते है। हम सामूहिक सुरक्षितता चाहते है, लेकिन मं अपना मतलब बिल्कुल साफ कर देना चाहता हूँ मेरा मतलब वह नही है कि जो श्री नेविल चेम्बरलेन ने उसके साथ जोड रखा है। सामूहिक सुरक्षितता की मेरी धारणा, शुरू मे उस परिस्थिति को वैसा ही बनाये रखना नही है कि जो खुद अन्याय पर कायम है। इस तरह सुरक्षितता नही हो सकती। इसका जरूरी मतलब यह हुआ कि साम्राज्यवाद और फासिज्म को हट जाना होगा।

आज दुनिया बडी विकट हालत मे है। हम देखते है कि कई लोग दीखने मे तो बुद्धिमान है, लेकिन वे एक दूसरे की विरोधी नीति पर चल रहे हैं और दुनिया के गडबडझाले को और भी बढाते चले जा रहे है। इस देश मे, ब्रिटेन मे, हमने देखा कि विदेशी नीति ने एक असाधारण रूप

ले लिया है। आपमे से अधिकतर इसके खिलाफ हैं। फिर भी, यह बडी अजीब बात है कि ऐसी बात हो, और बाहर रहनेवाले के लिए तो इसको समझना बहुत ही ज्यादा मुश्किल है। इसे किसी भी दृष्टिकोण से समझना मुश्किल है। आज हम ब्रिटेन में ऐसी सरकार देखते हैं जो गालिबन् ब्रिटिश साम्राज्य को बनाये रखना चाहती है मगर काम ऐसे-ऐसे करती है कि जो साम्राज्य के हितों के खिलाफ जाते हैं।

मेरी दिलचस्पी उस साम्राज्य को बनाये रखने में नही है बल्कि उस साम्राज्य का एक मुनासिब ढग से खात्मा करने मे है। आम जनता शायद इस नीति को पसन्द करे क्योंकि वह साम्राज्यवाद और फासिज्म के बारे में अभी उलझन मे है। वह इस बात का जाहिर सबूत है कि जब साम्राज्यवाद एक कोने मे घुसा दिया जाता है तो वह फासिज्म के साथ जा खडा होता है। दोनों को आप अलग नही रख सकते। आज जबकि बडे-बडे मसले दुनिया के सामने है,वे साम्राज्यवादी लोग जिनमे पहले से अधिक वर्ग-चेतना आयी है, आइन्दा के अपने साम्राज्यवादी हितों की रक्षा और स्थायित्व को भी जोखिम मे डालकर अपने वर्ग के हितो को बनाये रखना चाहते है।

इसलिए, हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि हमें जो भी नीति बनानी हो, उसे सही नीव पर बनाना और असली बुराई को उखाड़ फेकना है। इस बात को हम समझ रहे हैं कि हमे मध्ययूरोप, चेको-स्लोवाकिया, स्पेन और चीन की और दूसरी बहुतेरी समस्याओ को अब एक साथ लेकर उन्हे एक सम्पूर्ण वस्तु मानकर विचार करना है।

मै आपको एक समस्या का ध्यान और दिलादूं कि जिसपर अक्सर हम इस सिलसिले मे कुछ भी नही सोचते, लेकिन जो इन दिनो हमारे

सामने बहुत ज्यादा आ रही है। वह समस्या है फिलस्तीन की। यह एक निराली समस्या है और हम इसे अरबो और यहूदियों के झगडे के रूप में ही बहुत ज्यादा देखने के आदी होगये हैं। मैं शुरू मे आपको यह याद दिलादूं कि ठीक २००० बरसो से फिलस्तीन मे अरबो और यहूदियो मे कभी कोई सच्चा झगडा नही हुआ। यह समस्या तो हाल ही मे लडाई के जमाने से उठ खडी हुई है। बुनियादी तौर पर यह समस्या फिलस्तीन मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की पैदा की हुई है और जबतक आप इसको ध्यान मे न रखेंगे तबतक आप इसे हल नही कर पायेगें और न ब्रिटिश साम्राज्य ही इसे हल कर सकेगा और यह सच है कि उन सरगर्मियो के कारण जो इस समस्या से पैदा हो गयी है इस समय यह समस्या कुछ कठिन भी होगयी है। तो फिलस्तीन की समस्या असल मे है क्या ?

वहाँ यहूदी लोग है और हममें से हरेक की यहूदियो से अत्यन्त सहानुभूति है, खासकर आज जबकि वे सताये जा रहे है और यूरोप के कई देशो से निकाले जा रहे है। यह ठीक है कि यहूदियो ने कई तरह की गलतियाँ की है, लेकिन जबसे वे फिलस्तीन मे आये है तबसे उन्होने देश की बडी सेवा की है। लेकिन आपको याद रखना चाहिए कि फिलस्तीन खासकर अरब का देश है और यह आन्दोलन बुनियादी तौर पर अरबो का स्वतन्त्रता पाने के लिए राष्ट्रीय सघर्ष है। यह अरब-यहूदी समस्या नही है, यह तो साररूप मे स्वतन्त्रता-प्राप्ति का सघर्ष है। यह मजहबी मसला भी नही है। शायद आपको मालूम होगा कि अरब के मुसलमान और ईसाई दोनों इस जद्दोजहद मे बिल्कुल एक है। शायद आपको यह भी मालूम होगा कि उन पुराने यहूदियों ने, जो लडाई के पहले फिलस्तीन मे रहते थे, इन जद्दोजहद मे बहुत कम हिस्सा लिया है—क्योंकि उनका अपने पडोसी अरब से निकट सम्बन्ध रहा है। यह तो

बिल्कुल समझ मे आनेवाली बात है कि अरब लोग अपने देश से वंचित किये जाने की कोशिश का विरोध क्यो न करे ? कही की भी जनता यही करती। आयर्लैण्ड, स्काटलैण्ड या इंग्लैण्ड के निवासी भी यही करते। यह सवाल अपने निजी देश से न निकाले जाने और स्वाधीनता और स्वतन्त्रता चाहने का सवाल है।

इसलिए अरब लोगो ने यह आन्दोलन अपने देश की आज़ादी के लिए उठाया, मगर ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने ऐसा हथकडा फेरा कि यह झगडा अरबो और यहूदियो का झगडा बन गया और फिर ब्रिटिश सरकार सरपच का काम करने आ बैठी।

फ़िलस्तीन की समस्या केवल एक ही तरह सुलझ सकती है और वह यो कि अरब और यहूदी लोग ब्रिटिश साम्राज्यवाद को बिल्कुल न पूछे और आपस मे समझौता कर ले। मेरा अपना खयाल यह है कि ऐसे बहुतेरे अरब और यहूदी है जो इस तरह से उस मसले को सुलझाना चाहते है। बदनसीबी से हाल की घटनाओ से ऐसी मुश्किले पैदा होगयी है जिनसे साम्राज्यवादी पुर्जो ने खिलवाड किया है और इसलिए अरबो-यहूदियो का मेल होने मे थोडा अर्सा लगेगा, लेकिनह मारा यह काम और फर्ज होना चाहिए कि इस दृष्टिबिन्दु पर जोर डालते हुए इस बात को स्पष्ट करे कि

(१) आप अरब लोगो को कुचलने की कोशिश करके इस समस्या को नही सुलझा सकते, और—

(२) यह झगडा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नही बल्कि दोनो खास पक्षों के मिलकर कुछ शर्तें क़बूल करके समझौता करने से सुलझेगा।

मैं उन बहुत से देशों का जिक्र करना नही चाहता कि जो पराधीन हैं या जो आज दूसरी मुश्किलो में मुब्तला है क्योंकि आज तो करीब-

करीब हरेक देश के साथ ऐसा ही है। यह हो सकता है कि हम बाद मे उनकी समस्याओ पर विचार करे, लेकिन मेरा यह पक्का खयाल है कि हम अफ्रीका के देशों को न भूले, क्योकि शायद दुनिया के किसी देश ने इतनी तकलीफे नही उठायी और पिछले दिनो किसीका इतना शोषण नही हुआ, जितना कि अफ्रीका के लोगो का।

हो सकता है कि इस शोषण-क्रिया मे कुछ हदतक मेरे अपने ही देश के निवासियो ने हिस्सा लिया हो। इसके लिए मुझे दुख है। जहाँ तक हम हिन्दुस्तानवालो का प्रश्न है, हम जो नीति रखना चाहते है वह यह है हम नही चाहते कि हिन्दुस्तान से कोई किसी देश मे जाये और वहाँ ऐसा कोई काम करे जो उस देश के निवासियो की मर्ज़ी के खिलाफ हो, फिर चाहे वह देश बर्मा या पूर्वी अफ्रीका य. दुनिया का कोई भी हिस्सा क्यों न हो। मै समझता हूँ कि अफ्रीका के भारतीयो ने बहुत से अच्छे-अच्छे काम किये है, बहुतों ने बहुत ज्यादा नफा उठाया है। मेरा खयाल है कि अफ्रीका मे या दूसरी जगह रहनेवाले भारतीय इस समाज के उपयोगी सदस्य बन सकते है। लेकिन केवल इसी आधार पर हम उनके वहाँ रहने का स्वागत करे कि अफ्रीकावासियों के हितो को हमेशा पहले स्थान दे।

मेरा खयाल है कि आप इस बात को समझ रहे होगे कि अगर हिन्दुस्तान स्वतन्त्र होजाये तो वह दुनिया-भर मे साम्राज्य की धारणा मे बड़ा भारी फर्क डाल देगा और उससे सब-के-सब पराधीन लोगो को फायदा पहुँचेगा।

हम भारत का, चीन का और दूसरे देशो का तो खयाल करते है मगर अफ्रीका को अक्सर भूल ही जाया करते है और हिन्दुस्तान के लोग चाहते है कि आप उनका भी ध्यान रक्खे। आखिर, हिन्दुस्तान के लोग

भले ही तमाम प्रगतिशील लोगों की ओर से मिलनेवाली मदद और हमदर्दी का स्वागत करे लेकिन, आज शायद उनमें इतनी ताक़त है कि अपनी लडाई आप लड लें—जबकि यह बात अफ्रीका के कुछ लोगो के बारे मे सच न हो। इसलिए अफ्रीका के लोग हमारी ओर से खास खयाल किये जाने के मुस्तहक हैं।

आपमे से अधिकाश शायद मेरे इन विचारो से सहमत होगे। इस हॉल (भवन) के बाहर बहुतेरे लोग उससे शायद सहमत न भी हों। बहुत से लोग यह भी कह सकते है कि ये खयालात आदर्शवादी है और आज की दुनिया से उनका कोई सरोकार नही है। मै समझता हूँ कि इससे ज्यादा बेवकूफी का खयाल शायद ही कोई हो। इसी रास्ते पर चलकर हम आज अपनी समस्याएँ सुलझा सकते है और अगर आपका यह खयाल हो कि हम इन बुनियादी मसलो को उठाये बिना उन्हे हल कर सकते है तो आप बड़ी भारी गलती कर रहे है।

इन समस्याओ को हाथ मे लेने का आज का एक छोटा-सा नमूना भी हैं। वह नमूना है स्पेनिश मोरक्को मे 'मूर' लोगो का। उनकी समस्या को हाथ मे लेने मे देर हुई तो झट स्पेन की फासिस्ट टुकडी ने उस मौके का फायदा उठाया, तरह-तरह के झूठे वायदे किये और उन्हे उन्ही लोगो पर हमला करने के लिए अपनी तरफ भर्ती कर लिया जो इन्हे आजादी दे सकते थे और इस तरह बेचारे बदनसीब मूर लोगों को धोखा दिया गया। अगर इस समस्या का उचित रीति से मुकाबला नही किया गया तो इसी तरह की बात बार-बार होती रहेगी।

किसी पराधीन देश से जिसके अपने लोग ही खुद पराधीन बने हुए है, हम यह आशा शायद ही कर सके कि वह दूसरो की आजादी मे उत्साह दिखा सकेगा।

इसीलिए, हिन्दुस्तान मे, हमने इसे अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है और कांग्रेस ने घोषणा कर दी है कि वह साम्राज्यवादी युद्ध मे कोई हिस्सा नही लेगा। जबतक हिन्दुस्तान पराधीन है, तबतक उससे यह उम्मीद करना बेहूदा है कि वह एक ऐसे उद्देश्य के लिए कि जो किसी साम्राज्य को मजबूत करने के पक्ष में हो, अपने जन और साधन दे सके।

स्थिति को हाथ मे लेने का सही तरीका तो यह है कि साम्राज्यवाद की जड उखाडी जाये, पराधीन लोगो को पूरी आजादी दे दी जाये और फिर दोस्ताना ढग से उनके पास जाकर उनसे शर्तो के साथ समझौता किया जाये। अगर उस तरीके से उनके पास पहुँचे तो वे मित्रता दिखायेगे, नही तो यह होगा कि लगातार दुश्मनी बनी रहेगी, मुश्किले और झगडे चलते रहेगे और जब सकट पैदा होगा और खतरा आ जायेगा, तो तरह-तरह की उलझने उठ खडी होगी और कह नही सकते कि क्या होगा। इसीलिए मेरी आप सबसे प्रार्थना है कि आप यह याद रखे और समझे कि हम आज दूर के आदर्शवादी हलो को नही बल्कि मौजूदा जमाने की समस्याओ को हाथ मे ले रहे है और अगर हम उनपर ध्यान नही देगे और उनसे कतरा जायेगे तो इसमे खतरा है।[१]

---

१ १५, १६ जुलाई १९३८ को लन्दन में शान्ति और साम्राज्य के प्रश्न पर 'इण्डिया लीग' और 'लन्दन फेडरेशन ऑव पीस कौंसिल्स' की ओर से हुई परिषद्, के अध्यक्ष-पद से दिया हुआ भाषण।

: २ :

नगरों पर बमबारी

आज की इस विराट सभा को मुझे हिन्दुस्तान की जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाली भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की ओर से शाति-स्थापना के कार्य मे पूरी सहायता देने का आश्वासन और बधाइयाँ देनी है। मै राजाओ, रानियो और राजकुमारो की ओर से नही बल्कि अपने करोडों देशवासियो की ओर से बोल रहा हूँ। हमने शाति के इस कार्य से अपना सबध बडी खुशी के साथ इसलिए जोडा है कि यह समस्या अत्यत आवश्यक है। और इसलिए भी कि किसी भी दशा मे हमारा पिछला इतिहास और हमारी सभ्यता भी हमे यही करने के लिए प्रेरित करती। कारण यह है कि पिछली कई शताब्दियो से हमारे महान् बन्धु-राष्ट्र चीन की तरह, हिन्दुस्तान की भावना भी शाति की रही है। स्वतन्त्रता के हमारे राष्ट्रीय सघर्ष मे भी हमने इसीको अपना आदर्श समझकर शातिमय उपायो को अपनाया है। इसीलिए हम बडी खुशी के साथ शाति के लिए प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा करते है।

कल लार्ड सैसिल ने कहा था कि केवल युद्ध को मिटा देने से ही अन्त मे शाति मिल सकती है। इस कथन से हम पूर्ण सहमत है। युद्ध को मिटा देने के लिए हमे युद्ध के कारणो और जड को मिटाना होगा। गुजरे जमाने में चूँकि हमने इस समस्या पर ऊपर-ऊपर ही विचार किया, इसकी जडो को नही छुआ, इसलिए हम अबतक कोई भी काम की चीज नही पा सके। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति लगातार बिगड़ती गयी है और लाखों के लिए मृत्यु और अकथनीय कष्ट लायी है। अगर हम लड़ाई की उन जड़ों की

ओर से लापरवाह बने रहेगे तो हम फिर असफल होगे और शायद उस असफलता मे बरबाद भी हो जायेगे ।

आज हम देखते है कि फासिस्ट हमले दुनिया को युद्ध की तरफ खीचे ले जारहे है और हम उसकी निन्दा करते और उसका मुकाबला करना चाहते है तो ठीक ही करते है । लेकिन हालाँकि फासिज्म पश्चिम मे हाल ही मे पैदा हुआ है मगर हम उसे अर्से से एक दूसरे भेष और दूसरे नाम—साम्राज्यवाद—से जानते-पहचानते है । गुजरे जमाने मे पीढियो तक उपनिवेश-देशों ने साम्राज्यवाद के नीचे कष्ट झेले है और अब भी झेल रहे है । यही साम्राज्य बनाने का खयाल, जो साम्राज्यवाद या फासिज्म के रूप मे काम कर रहा है, लडाई का जोरदार कारण है, और जबतक वह नही मिट जाता, तबतक सच्ची और स्थायी शाति नही हो सकती । एक पराधीन देश के लिए कभी शाति है ही नही क्योकि शाति तो स्वतन्त्रता के साथ ही आ सकती है । इसलिए साम्राज्यो को मिटना चाहिए, उनका जमाना बीत चुका । अब हमे न सम्राटो से दिलचस्पी है न राजा-नवाबो से, हमे दिलचस्पी है दुनिया भर के लोगो से,और भारतीय राष्ट्रीय महासभा (काग्रेस) भारत के रहनेवालो और उसकी स्वतन्त्रता की समर्थक है । आज भी शाति मे सहायता पहुँचानेवालो मे हिन्दुस्तान एक शक्तिशाली अग है । और अगर विश्व-सकट पैदा हुआ तो वह स्थिति को बहुत बदल सकता है । इस मामले मे उसे न तो कोई उपेक्षित कर सकता है और न वह ऐसा चाहता है । स्वतत्र भारत शाति की एक शक्तिशाली मीनार होगा, और हमे आशा है कि भारत जल्दी ही स्वतत्र होगा ।

लार्ड सैसिल ने कट्टर राष्ट्रीयता के खतरे बतलाये है । मै यह कहना चाहता हूँ कि मै उनसे पूर्ण सहमत हूँ और यद्यपि मै हिन्दुस्तान की

राष्ट्रीयता और हिन्दुस्तान की आजादी का समर्थक हूँ, फिर भी मैं वह समर्थन सच्ची राष्ट्रीयता की बुनियाद पर कर रहा हूँ। हम हिन्दुस्तान-वाले बडी खुशी से ऐसी विश्व-व्यवस्था मे सहयोग देगे और दूसरे लोगों के साथ कुछ हदतक राष्ट्रीय प्रभुत्व तक के कुछ अश को छोड देने को राजी हो जायेगे, बशर्ते कि सामूहिक सुरक्षितता की कोई योजना हो। लेकिन ऐसा तो तभी हो सकता है जब राष्ट्र शान्ति और स्वतत्रता के आधार पर सम्बद्ध हो जाये।

औपनिवेशिक देशो की पराधीनता रहे और साम्राज्यवाद चलता रहे, इस आधार पर तो कोई विश्वव्यापी सुरक्षितता कायम नही रह सकती। आज शान्ति और युद्ध की तरह स्वतन्त्रता भी अविभाज्य है। अगर आज के आक्रमणकारियो को रोकना है तो कल के आक्रमणकारियो से भी हिसाब माँगना होगा। चूँकि हमने पिछली बुराइयो को ढकने की कोशिश की है—भले ही वह अब भी मिटी न हो—इसलिए आज की इस नयी बुराई को रोकने की हममे ताकत नही रही है।

बुराई को न रोकने से वह बढती है, बुराई को बर्दाश्त कर लेने से वह तमाम क्रियाओं मे ही जहर फैला देती है। और चूँकि हमने अपनी पिछली और आज की बुराइयो को बर्दाश्त कर लिया है इसलिए अन्त-र्राष्ट्रीय कामो मे बुराई फैल गयी है और कानून और न्याय वहाँ से गायब हो गये है।

यहाँ हम खास तौर से शहरो और कस्बो की आबादी पर आस-मान से बमबारी होने के बारे मे चर्चा करने के लिए इकट्ठे हुए है। दिनो दिन डर-पर-डर आ-आकर छा रहे है और हालाँकि वर्तमान पर सोच-विचार करते हुए डर लगता है, मगर भविष्य के पेट मे तो ऐसा कुछ है जो ऐसा ज्यादा बुरा होगा कि जिसकी कल्पना भी नही हो सकती।

हाल ही मे मैं बार्सीलोना गया था और अपनी आँखो मैंने उसकी बरबाद हुई इमारतो को, मुँह फाड़े हुए दरारों को, और आसमान मे तेज़ दौड़ते हुए और अपने पीछे मौत और बरबादी के दृश्य लाते हुए बमो को देखा। वह तस्वीर मेरे दिल पर खिच गयी है और स्पेन और चीन मे होनेवाले रोज़ाना की बमबारी की खबर मेरे कलेजे मे छुरी की तरह चुभती है और उसकी भयकरता से मैं खिन्न हो उठता हूँ। लेकिन उस तस्वीर के ऊपर एक दूसरी तस्वीर है—स्पेन के तेजस्वी लोगों की, जो इन भयानक घटनाओ को झेलते हुए उनके मुकाबले मे दो लम्बे बरसो तक अनुपम वीरता के साथ लड़े है और जिन्होंने अपने खून और कष्टों से ऐसा इतिहास लिख दिया है जो आनेवाले युगो को प्रेरणा देता रहेगा। प्रजातन्त्र-स्पेन के इन महान् स्त्री-पुरुषो को मैं हिन्दुस्तानियो की ओर से आदर के साथ श्रद्धाजलि अर्पण करता हूँ और जिनके साथ हम इतिहास के प्रभातकाल से ही हज़ारो बन्धनो से जुड़े हुए है, उन चीनवासियो की ओर भी हम साथीपने की भावना से अपने हाथ बढा रहे है। उनके खतरे हमारे खतरे है, उनकी तकलीफे हमे चोट पहुँचाती है और हमारे कैसे भी भले या बुरे दिन क्यों न आये, हम उनके साथ रहेगे।

स्पेन और चीन मे होनेवाली इन आसमान से बमबारियो से हमे गहरी व्यथा होती है। लेकिन तो भी बमबारी हमारे लिए कोई नयी बात नही है। यह बुराई तो पुरानी है और चूँकि इसे चलते रहने से रोका नही गया इसलिए आज इसने इतना विशाल और भयकर रूप धारण कर लिया है। क्या आप भारत की उत्तर-पश्चिमी सरहद पर हुई उन बमबारियो को भूल गये, जो पिछले कई बरसों से अभी तक होती चली आ रही है ? वहाँ मैड्रिड, बार्सीलोना, कैण्टन, हैंको जैसे

शहर अलबत्ता नही है; मगर हिन्दुस्तान के सरहद्दी गाँवों में भी इंसान—आदमी, औरत और बच्चे ही रहते हैं और जब ऊपर आसमान मे बम गिरते है तो वे भी मरते या विकलांग होजाते है। क्या आपको याद है कि यह बमबारी का सवाल बहुत बरसों पहले राष्ट्रसघ मे उठाया गया था, और ब्रिटिश सरकार ने सरहद पर उसे रोकने से इनकार कर दिया था ? इसे पुलिस की कार्रवाई कहा गया था और उन्होंने उसको रहने देने पर ही जोर दिया था। यह बुराई रोकी नही गयी और अगर अब वह बढ़ गयी है तो इसमे अचम्भा ही क्या है ? इसकी जवाबदेही किसके सिर पर है ?

ग्रेटब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने हाल ही मे अपने इस अपवाद को वापिस ले लेने का आश्वासन दिया है, बशर्ते कि आसमान से होनेवाली बमबारी को रोकने पर सब राजी होजाये। लेकिन यह आश्वासन खोखला है, जबतक कि वह कार्रवाई करके तमाम सरहद्दी बमबारियो को रोक न दे। तबतक दूसरो की बमबारियो के खिलाफ उज्र करने के कोई मानी और कोई वकत नही।

चिसेस्टर के डीन ने कल इस परिषद् मे यह माँग की थी कि ऊपर से बमबारी करनेवाले देशो के साथ कोई सुलह न की जाये। इस भावना की ठीक ही सराहना की गयी। तब इंग्लैण्ड का क्या होगा जो अब भी हिंदुस्तान की सरहद पर बम बरसाने के लिए जिम्मेदार है ? क्या यह इस कारण है कि ब्रिटिश सरकार इस प्रश्न पर निर्दोष रहकर नही सोच सकती और उन्होंने अपनी विदेशी नीति को ऐसा बना लिया है कि उसपर भरोसा करना ठीक नही और अब वह उस राष्ट्र से दोस्ती और समझौता करने पर उतारू है जो स्पेन मे होनेवाली इस बमबारी के लिए सबसे अधिक जवाबदेह है ? मै तो इस बुराई करनेवाले और

आक्रमणकारी की पीठ ठोकने की नीति से हिन्दुस्तान को बिलकुल अलग कर देना और कह देना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान के लोग इसमे कोई हिस्सा न लेगे और जब कभी उन्हे मौका मिलेगा, वे उसका मुकाबला करेगे।

स्पेन मे हम अहस्तक्षेप का भयकर तमाशा देख चुके है, जिसने अच्छे-अच्छे शब्दो और प्रजातत्रीय नीति के बुर्के मे स्पेन के बागियो और हमलाइयो को मदद पहुँचायी है और उस देश के लोगो को अपनी हिफाजत करने के साधन पाने से रोका है। उन बागियो तक माल पहुँचाने के लिए समुद्र और दूसरे सैकडो दरवाजे खुले हुए है, लेकिन पिरेनीज़ की सरहद अहस्तक्षेप के नाम पर बन्द करदी गयी है, हालाँकि बमबारी व रसद की कमी से औरते और बच्चे भूखो मर रहे है।

हम स्पेन के आक्रमणकारियो और उपद्रवियो की निन्दा करते है, उनपर दोष लगाते है, लेकिन उन्होने कम-से-कम खुले आम अन्तर्राष्ट्रीय कानून और सुघडता के तमाम कायदो को ठुकराया है और दुनिया को उन्हे रोकने की चुनौती दी है। मगर उन सरकारो का क्या होगा, जो बात तो बडी बहादुरी से शाति और कानून की करती है, मगर जिन्होने इस चुनौती के आगे सिर झुका दिया है और हरेक नयी छेडखानी को बर्दाश्त कर लिया है और बुराई करनेवालो से दोस्ती करने की कोशिश की है ? उन लोगो का क्या होगा जिन्होने ऐसे वक्त पास खडे-खडे उदासीन रहने का जुर्म किया है जबकि जिन्दगी और जिन्दगी से भी अधिक पाक चीज़ को कुचला और बेइज्जत किया जा रहा था।

आज भी आक्रमणकारी राष्ट्र दूसरे राष्ट्रो से क्या सख्या, क्या ताकत और क्या लडाई के साधनों मे कमजोर है, मगर फिर भी ये दूसरे राष्ट्र बेबस और कारगर कार्रवाई करने मे असमर्थ दिखाई देते है। क्या ऐसा होने की वजह यह नही है कि उनकी पिछली और मौजूदा साम्राज्य-

वादी नीतियो ने उनके हाथ-पाँव बाँध रक्खे है ? इन सरकारो से कुछ न बन पडा । अब वक्त है कि लोग कार्रवाई करे और उन्हे अपने ऐमाल सुधारने को मजबूर करे । यह कार्रवाई फौरन बमबारियो को रोकने, पिरेनीज की सरहद को खोलने और बचाव करने के साधनों और रसद को प्रजातन्त्रीय स्पेन मे पहुँचने देने की होनी चाहिए । अगर बमबारी जारी रहे तो वायुयान-विरोधिनी तोपे और रक्षा की दूसरी सामग्री भी वहाँ पहुँचने दी जानी चाहिए ।

इन पिछले दो सालो मे स्पेन और चीन मे कितनी बडी-बडी बरबादियाँ हुई है ! भूखो मरते और घायल स्त्रियाँ और बच्चे सहायता माँगने के लिए आर्त्तनाद कर रहे है और दुनिया भर के तमाम भले और समझदार लोगो का काम है कि उनकी मदद करे। यह समस्या दुनिया भर की है और हमे विश्वव्यापी आधार पर सगठन करना चाहिए । सघर्ष का असली बोझ तो पीडित देशो के निवासियों पर पडा है, हम कम-से-कम इस छोटे बोझ को ही उठाले ।

मुझे इस परिषद् मे यह कहते हुए खुशी होती है कि कांग्रेस ने एक 'मेडिकल यूनिट' का सगठन किया है और उसे जल्दी ही चीन भेज रही है । भारत मे जापानी माल के अपने बहिष्कार में भी हमने काफी सफलता पायी है जैसा कि निर्यात के आँकडो से जाहिर होता है । एक हाल की घटना से चीनी जनता के प्रति हमारी भावना की ताकत का पता लगेगा । मलाया मे जापानियो की लोहे और टीन की खानें थी, जिनमे चीनी मजदूर नौकर थे । इन मजदूरो ने जापान के लिए हथियार बनाने से इनकार कर दिया और खाने छोड दी । इसपर हिन्दुस्तानी मजदूर नौकर रख लिये गये, मगर हमारी प्रार्थना पर उन्होंने भी वहाँ काम करने से इनकार कर दिया, हालाँकि इससे उनको बडी

मुसीबते और तकलीफे उठानी पडी ।

और इस प्रकार जद्दोजहद जारी है। इस जद्दोजहद मे हमारे कितने ही दोस्त, साथी और प्रियजन जान दे ही चुके है—मगर फिजूल नही। हो सकता है कि यहाँ इकट्ठे हुए हममे से न जाने कितने उसी रास्ते पर जाये और फिर न मिल सके। मगर चाहे हम जिन्दा रहे या मरे, शाति और स्वतन्त्रता का उद्देश्य तो कायम रहेगा ही, क्योंकि वह हम सबसे अधिक महान् है—वह स्वयम् मानव-जाति का उद्देश्य है। अगर वही मिट जायेगा तो हम सबके सभी मिट जायेगे। यदि वह जीवित रहा तो हम भी जीवित रहेगे, फिर हमारे नसीब मे चाहे कुछ भी क्यो न हो। इसलिए आइए, हम उसी उद्देश्य के लिए प्रतिज्ञा ग्रहण करे।[१]

---

१ पैरिस में २३-२४ जुलाई १९३८ को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति-आन्दोलन के अन्तर्गत बुलायी गयी एक परिषद् में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से दिया हुआ भाषण ।

: ३ :

चेको-स्लोवाकिया के साथ विश्वासघात

हिन्दुस्तान की आजादी और विश्वशान्ति का उत्कट इच्छुक भारतीय होने के नाते मैंने हाल की स्पेन और चेको-स्लोवाकिया में हुई घटनाओं को चिन्ता के साथ देखा है। पिछले कुछ बरसो में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने ब्रितानिया की विदेशी नीति की आलोचना की है और अपने आपको उससे अलग रखा है, क्योंकि वह हमें बडी प्रतिगामी, जनतन्त्र-विरोधी और फासिस्ट व नात्सी हमलों को बढावा देनेवाली जान पडी है। मञ्चूरिया, फिलस्तीन, अबीसीनिया, स्पेन ने हिन्दुस्तान के लोगों मे आन्दोलन पैदा कर दिया है। मचूरिया में हमले को बढावा देने की नींव पडी और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के तमाम कायदो और समझौतों की ओर से आँख मूँदकर राष्ट्रसघ के काम को बिगाड दिया गया। यूरोप मे यहूदियो ने भयानक और अमानुषिक अत्याचार सहने मे जो सकट उठाये उनसे हमदर्दी और सद्भावना रखते हुए हमने उनके सघर्ष को असल मे आजादी के लिए किया जानेवाला राष्ट्रीय सघर्ष समझा है कि जिसका ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हिन्दुस्तान आनेवाले समुद्री रास्ते को कब्जे में रखने के लिए जोर जबर्दस्ती करके दमन किया था। अबीसीनिया मे बहादुर जनता के साथ बडी दगा हुई। स्पेन मे प्रजातन्त्र को तग करने और बागियों की पीठ ठोकने मे कुछ कसर नहीं रखी गयी। यह फैसला करके कि स्पेन की सरकार को खत्म होना चाहिए या वह खत्म होनेवाली है ब्रिटिश सरकार ने भिन्न-भिन्न तरीकों से उस मकसद को जल्दी

पूरा करने की कोशिश की और बागियों की ओर से तौहीन, नुकसान और बड़ी भारी जलालत तक बर्दाश्त कर ली गयी।

यह नीति हर जगह बुरी तरह असफल रही है, इस सचाई से भी ब्रिटिश सरकार उसपर चलने से बाज न आयी। मन्चूरिया पर हुए बलात्कार का फल आज दुनिया मे हम चारो ओर देख रहे हैं। फिलस्तीन की समस्या दिन-पर-दिन बिगडती जाती है। हिंसा का मुकाबला हिंसा से होता है और जनता को दबाने की कोशिश मे सरकार दिन-पर-दिन बढनेवाली फौजी ताकत काम मे ला रही है। इस बात को हमेशा याद नही रखा जाता कि यह समस्या बहुत कुछ ब्रिटिश सरकार की पैदा की हुई है और जो कुछ हुआ है उसमे से बहुत कुछ के लिए उसीको जवाबदेह ठहराना चाहिए। आपके सम्वाददाता के अनुसार तो अबीसीनिया अब भी जीता नही गया है और शायद वह ऐसा ही रहेगा। स्पेन मे जनता ने ब्रिटिश सरकार की इच्छा पर नाचने से इनकार किया है और दिखला दिया है कि वे न तो दबाने या कुचलने मे आयेगी न आ सकती है।

असफलता का यह लेखा ध्यान देने योग्य है। तिसपर भी ग्रेटब्रिटेन की सरकार को उससे नसीहत लेना और अपने ऐमाल दुरुस्त करना नही आता। बल्कि वह तो और भी धडाके के साथ हमलो को बढ़ावा देने और जनरल फ्रैको और फासिस्ट व नात्सी ताकतों को मदद देने की अपनी नीति चला रही है। इसमे शक नही कि अगर उसे चलने दिया गया तो वह इसी तरह तबतक चलती रहेगी जबतक कि वह अपने आपको और ब्रिटिश साम्राज्य को मिटा नही देती, क्योंकि दूसरी सारी बातो से भी बढकर बात है उसका फासिज्म की ओर वर्ग-सहानुभूति और झुकाव होना। अवश्य ही यह दुनिया को उसकी बड़ी

भारी सेवा होगी—चाहे वह कितनी ही अनजान में हो, और मै साम्राज्यवाद के अन्त होने का विरोध करनेवालो मे सबसे आखरी हूँगा। पर मुझे विश्वव्यापी युद्ध की सम्भावना से भारी चिन्ता है और यह देखकर मुझे अत्यन्त दुख होता है कि ब्रितानिया की विदेशी नीति सीधे लडाई की ओर ले जा रही है। यह सच है कि हेर हिटलर की बात इस मामले मे आखरी फैसला करेगी, लेकिन हेर हिटलर तो खुद बहुत कुछ ब्रिटेन के रुख और रवैये पर निर्भर रहेगा। अबतक तो इस रवैये ने उसे बढावा देने और चेको-स्लोवाकिया को दाँत दिखाने और धमकाने मे कुछ भी उठा नही रखा है। तो, अगर लडाई होकर ही रही, तो ब्रिटिश सरकार को कम-से-कम यह महसूस करके सन्तोष या जो कुछ भी हो हो सकेगा कि यह सब बहुत-कुछ उसीके कारण हुआ और ब्रितानिया के लोग, जिन्होने इस सरकार को सत्ता दी है, इस सच्चाई से जो आराम उठा सकें, उठा लेगे।

मैंने सोचा तो यह था कि (ब्रिटिश) सरकार जो कुछ करेगी उससे मुझे अचम्भा नही होगा—(सिवा एक बात के कि वह अचानक प्रगतिशील बन जाये और शान्ति-स्थापना का प्रयत्न करने लगे)। पर मैंने भूल की थी। चेको-स्लोवाकिया मे हुई हाल की घटनाओ और जिन तरीको से सरकार ने—खुद या अपने बीच-बचाव करनेवालो के जरिये—जो हर मौके पर चेक सरकार को सताया और धमकाया है उसपर मेरा मन बिगडने लगा है और मुझे हैरानी हुई है कि कोई भी अंग्रेज जिसमें उदारता की जरा-सी भावना या सुजनता हो, इसे कैसे बर्दाश्त कर सका ?

हाल ही मे मैने थोडा समय चेको-स्लोवाकिया मे बिताया था। वहाँ मै बहुतेरे चेक और जर्मन लोगो से मिला। मै लौटा तो भयकर खतरे और बेमिसाल कष्टो मे भी शान्त और प्रसन्नचित्त रहते हुए

शान्ति बनाये रखने की खातिर सब-कुछ करने के लिए उत्सुक और अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए दृढ निश्चयवाले जनतन्त्रवादी जर्मनों और चेकों के प्रशसनीय स्वभाव के लिए प्रशसा के भावो से भरा हुआ लौटा। जैसा कि घटनाओ से जाहिर होगया है, अल्पसख्यको की हरेक मांग को पूरा करने और शांति बनाये रखने की खातिर वे लोग असाधारण हदतक जाने को तैयार है। लेकिन हर कोई जानता है कि जो सवाल दरपेश है वह कोई अल्पमत का सवाल नही है। अगर अल्पसख्यको के अधिकारो के प्रेम ने लोगो को पिघला दिया होता तो हम यही बात इटली मे अल्पसख्यक जर्मनो या पोलैण्ड के अल्पसख्यको के बारे मे क्यो न सुनते ? सवाल है सत्ताधारी राष्ट्रो की राजनीति का और नात्सियो की चेक-सोवियट मित्रता को तोडने का, मध्य यूरोप के एक जनतत्रीय 'राष्ट्र' को खत्म कर देने से रूमानिया के तेल के क्षेत्रो और गेहूँ के खेतो तक पहुँचने और इस तरह यूरोप पर अपना कब्जा जमाने का। ब्रिटिश नीति ने इसे बढावा दिया है और उस जनतत्रीय राज्य को कमजोर करने की कोशिश की है।

किसी भी दशा मे हम हिन्दुस्तानवाले न फासिज्म चाहते है न साम्राज्यवाद। और हम आज हमेशा से ज्यादा इस बात को समझ गये है कि ये दोनो चीजे निकट सम्बन्धी है और विश्व-शाति और स्वतन्त्रता के लिए खतरनाक है। हिन्दुस्तान ब्रिटेन की विदेशी नीति का विरोध करता है और उसमे हिस्सा लेना नही चाहता और हम अपनी ताकत लगाकर प्रतिक्रिया के इस खम्भे से हमे बाँधनेवाले बन्धनो को तोड देने की कोशिश करेगे। ब्रिटिश सरकार ने पूर्ण स्वाधीनता के लिए यह एक और लाजवाब दलील हमे दे दी।

हमारी पूरी सहानुभूति चेको-स्लोवाकिया से है। अगर लडाई

छिड़ी तो ब्रिटिश जनता अपनी फासिज्म-भक्त सरकार के होते हुए भी उसमे घसीटी जाये बिना न रहेगी। लेकिन तब भी यह सरकार जिसकी फासिस्ट और नात्सी राष्ट्रो के प्रति सहानुभूति है जनतन्त्र और स्वतन्त्रता के उद्देश्य को कैसे आगे बढायेगी ? जबतक यह सरकार कायम रहेगी, तबतक फासिज्म हमेशा दरवाजे पर डटा रहेगा।

हिन्दुस्तान की जनता लडाई के सम्बन्ध मे किसी भी विदेशी निर्णय को मानना नही चाहती। केवल वही फैसला कर सकती है और निश्चय है कि उस ब्रिटिश सरकार के हुक्म को जिसमें उसे बिल्कुल भरोसा नही है वह नही मानेगी। हिन्दुस्तान अपना सारा-का-सारा वजन बडी खुशी-खुशी जनतन्त्र और स्वतन्त्रता की ओर डालेगा, लेकिन हम ये शब्द बीस या इससे भी ज्यादा बरसो से सुनते आ रहे है। केवल स्वतन्त्र और जनतन्त्रात्मक देश ही दूसरी जगह स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र को मदद पहुँचा सकते है। अगर ब्रिटेन जनतन्त्र के पक्ष मे है तो उसका पहला काम है हिन्दुस्तान से साम्राज्य को समेट लेना। हिन्दुस्तान की निगाहो मे घटनाओ का क्रम यह है और इसी क्रम पर हिन्दुस्तान की जनता अटल रहेगी।[१]

---

१ २७, सेंट जेम्स' स्ट्रीट, लन्दन से ८ सितम्बर, १९३८ को मैंञ्चेस्टर गार्डियन' के सम्पादक के नाम लिखा गया पत्र।

: ४ :

म्यूनिक-संकट, १६३८

जेनेवा की झील—लेक लीमन—कितनी शान्त और सुन्दर दिखाई देती है ! सैर करनेवालों और दर्शको को लिये हुए स्टीमर लोज़ान की तरफ धुआँ उडाते हुए जा रहे हैं। पानी की एक भीमकाय धारा झील से निकलती जान पडती है और ऊँची उठकर आसमान मे चली जाती है। पीछे की ओर माउण्ट सेलीव है जो जेनेवा नगर के ऊपर उठा हुआ है और उससे भी पीछे माउण्ट ब्लेंक की बर्फीली चोटियाँ उठी हुई हैं। घाट के किनारे-किनारे होटलों की कतारे है। जिनपर कई राष्ट्रो के झडे हवा मे फडफडाते हुए उड रहे है। बिजली से चलनेवाली बडी-बडी बसे सैर करनेवालों से लदी हुई सडको पर जोर-शोर से दौडती चली जा रही है।

आगे बढने पर राष्ट्र-सघ का पुराना घर 'पैलेज विल्सन' है। उससे थोडे आगे अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालय की ठोस इमारत है! और उससे भी आगे चलकर भय उपजानेवाली शान-शौकत के साथ सघ का बिल्कुल नया विशालकाय भवन खडा है।

लेकिन झील की सुन्दरता और शान्ति और शहर की तरफ ध्यान जाता ही कहाँ है। क्योकि सबके मन को तो एक ही विचार घेरे हुए है। चेकोस्लोवाकिया क्या कहता है? लन्दन मे क्या हो रहा है? और पेरिस मे, प्रेग मे, न्यूयार्क मे? लोग एक दूसरे से ताज़ा से ताज़ा खबरे पूछते हैं। झूठी अफवाहे खूब उडती है और मनमाने अन्दाज़ लगाये जाते है। सबके ऊपर पस्तहिम्मती छायी हुई है। राष्ट्र-सघ (लीग-

असेम्बली) की बैठक हो रही है, लेकिन उसकी परवा कौन करता है ? जैनेवा को गिनता कौन है ? लीग तो मर चुकी। पूछ तो अब है प्रेग, लन्दन, पेरिस, मास्को और बेशक हिटलर के पहाडी आश्रय-गृह की भी। राष्ट्र-सघ का महल तो एक मकबरे की तरह दिखाई देता है जो शान्ति और सामूहिक सुरक्षितता की लाश को इज्जत बख्शने के लिए बनाया गया हो। जबकि यूरोप जोश के मारे थरथरा रहा है और शान्ति और युद्ध के बीच लटक रहा है, तब लीग-असेम्बली मुख्य बात की चर्चा तक नही चलाती !

क्या हुआ—सुलह या लडाई ? चैको ने क्या जवाब दिया ? ब्रिटिश और फ्रेंच सरकार ने चेको-स्लोवाकिया के साथ विश्वासघात किया और उसे नाजी भेडियो के सामने फेक दिया। क्या ब्रिटिश और फ्रेंच जनता इस विश्वासघात के आगे चुपचाप सिर झुका लेगी।

रूमानिया का प्रतिनिधि इतने ऊँचे स्वर मे बोलता है कि फ्रेंच डैलीगेटो का गिरोह सुन ले—"चैको-स्लोवाकिया जिन्दाबाद ! फ्रास मुर्दाबाद !" फ्रासवालो के चेहरे तमतमा आते है।

खबर है कि मोशिये ब्लूम ने कहा था कि वह सधि करने की उत्कट इच्छा और जो कुछ हो रहा है उसपर शर्मिन्दगी की दो टकराने-वाली भावनाओ के बीच पैदा हुए है। दूसरे फ्रासीसी महाशय कहते है—"बहुत अच्छे मोशिए ब्लूम ! लेकिन आपमे जो मनोवैज्ञानिक प्रति-क्रियाएँ हो रही है उनसे हमे क्या ? हमे तो जनतन्त्र से, चैको-स्लोवाकिया से काम है।"

लन्दन की खबर ! चैक सरकार ने हिटलर-चैम्बरलेन-दलैदिये वाले प्रस्तावो को उसूलन् तो मजूर कर लिया। फिर निराशा। लेकिन कोई कहता है कि यह सब अग्रेजो का प्रोपेगैण्डा है।

दूसरा तार। ब्रिटिश लेबर-आन्दोलन ने चेम्बरलेन की नीति की निन्दा की है और कल कारंवाई करने की एक सर्वमान्य योजना बनाने के लिए सी जी टी (फ्रेंच-लेबर-कन्फेडरेशन) की बैठक हो रही है। क्या कहने!

प्रेग की खबर। कैबिनेट की बैठक अब भी चल रही है। रातभर चलती रही। अभी तक कोई फैसला नही हो पाया।

बर्लिन का तार। सरहद के करीब जर्मनों और चैको के बीच मुठ-भेड हो गयी। दूसरी खबर, जर्मनो की पलटने चैको-स्लोवाकिया की सरहद पर इकट्ठी हो रही हैं।

लीग के एक अंग्रेज डेलीगेट अपनी सरकार की नीति को ठीक साबित करने की कोशिश कर रहे हैं। यह बडी मुसीबत और तकलीफ-देह बात है। लेकिन करते क्या? दूसरा कोई चारा नही। हिटलर चेको-स्लोवाकिया मे कदम रखने ही वाला था। उसकी हवाई फौज प्रेग पर बमबारी करने के लिए तैयार थी। कुछ-न-कुछ तो होना ही चाहिए था और चेम्बरलेन ने उसे बहादुरी के साथ किया। यह सच है कि इससे जनतन्त्र और लीग के कल-पुर्जे बिगड गये और चैको के साथ दगा हुई, लेकिन कम-से-कम शान्ति तो कायम रख ही ली गयी। लेकिन कबतक? और शान्ति आखिरकार कायम भी रही? अगर हिटलर ने लडाई की धमकी देकर एक ब्रिटिश उपनिवेश की मॉंग की, तो क्या होगा? क्या तब ब्रिटेन नही लडेगा? बेशक। इसलिए ब्रिटिश सरकार के लिए जनतन्त्र से, राष्ट्र-सघ के प्रतिज्ञापत्र (लीग कवेंनेन्ट) से, पवित्र प्रतिज्ञाओ से, आश्वासनो से और बहादुर चैको-स्लोवाकिया के नसीब से भी अधिक महत्त्वपूर्ण एक उपनिवेश पर कब्जा होना था।

न्यूयार्क से टेलीफोन। चैकों के साथ जो विश्वासघात हुआ उसक

विरोध और निन्दा करने के लिए एक बडी भारी सभा हुई। अच्छा हुआ। लेकिन अमरीका के लोग सिर्फ एक ऊँची नैतिक सतह से ही विरोध करते है। क्या उसके अलावा भी वे कुछ करेंगे ?

कोई कहता है किसी देश को आत्महत्या करनी हो तो सबसे अचूक तरीका यह है कि वह इग्लैण्ड और फ्रास से दोस्ती और संरक्षण की भीख माँगे। ये सरकारे निश्चय ही दगा देंगी और विश्वासघात करेंगी।

रूस के डेलीगेट बडे कठोर दीखते है। चेक बडे दुखी है, क्या करें ? स्पेनवाले कहने मे कमी नही रख रहे है। वे कहते है – 'यह सब हम जानते है। इसका हमे तजुर्बा हो चुका है। हम अपनी मजबूत बाजुओ पर निर्भर रहे। हमारी जीत होगी और हम जनतत्र को बचा लेगे।"

ताजा खबर क्या है ? क्या हो रहा है ? अखबारवाले इधर-उधर प्रेग, लन्दन और पेरिस को टेलीफोन करते दौड रहे है। अफवाहे उड रही है। कभी तो पस्तहिम्मती छा जाती है और कभी उत्साह फैल जाता है। चेक कभी सर नही झुकायेंगे ! चेको ने आत्म-समर्पण कर दिया !! लेकिन, नही। बेनेश चलता-पुर्जा आदमी है। वह पकड मे नही आयेगा। अगर चेक सरकार ने आत्मसमर्पण किया भी तो वह मिट जायेगी और उसकी जगह दूसरी सरकार आजायेगी। हिटलर बेनेश का इस्तीफा चाहता है।

आधी रात। बेवेरिया का कॉफी-होटल, राजनीतिज्ञो और पत्रकारो का अड्डा। वहाँ एक विदेशी मत्री है, लीग के बहुत से डेलीगेट है, सम्पादक और पत्रकार है और बहुत से लीग के पिछलगुए है। बिअर और कॉफी उड रही है और लगातार बातचीत और बहस चल रही है। उस सबके पीछे तनाव है और सख्त पत्रकार तक हिम्मत दिखा रहे है।

प्रेग ने क्या तै किया ? लन्दन और पेरिस का क्या हुआ ? लन्दन

मे लोगो की नाराजगी बढ रही है। पेरिस मे चैम्बर ऑव डिप्टीज़ की बैठक कल होनेवाली है। शायद फ्रेंच सरकार का पतन हो जाये। एक नये प्रधान-मन्त्री का जिक्र हो ही रहा है। लन्दन मे पार्लमैण्ट की बैठक चल रही है। लेबर-पार्टी आक्रामक होती जा रही है। हर जगह पारा चढ रहा है, हालाँकि अखबार आराम से पैर बढाते जाते है।

टेलीफोन की घटियाँ बराबर हो रही है। हॅलो प्रेग ! हॅलो पेरिस ! ताजा खबर क्या है ? युद्ध या शान्ति ?

प्रेग की खबर—सरकार ने लोकार्नो-सन्धि की दुहाई दी है। उसकी शर्तों के अनुसार उसने पचो की मध्यस्थता की माँग की है। जर्मनी ने उसे स्वीकार किया, बाद मे हिटलर ने उसे पक्का कर दिया।

शाबाश ! होशियारी का काम किया। बेनेश मूर्ख नही है। उसने ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारो को परेशानी मे डाल दिया है। इसपर वे क्या कहेंगे ? हिटलर क्या कहेगा ? स्वीडन का एक डेलीगेट कहता है कि लोकार्नो मे जो मध्यस्थ नियत किये गये थे, उनमे वह भी था।

चेम्बरलेन फिर परसो हिटलर से मिलने जायेगे। हवाई जहाज से खबरे ले जाने का काम वह बडी अच्छी तरह से कर रहे है। शायद उनकी छोटी-सी चाय-पार्टी आखिरकार खत्म न होगी। .

हॅलो प्रेग ! हॅलो पेरिस ! हॅलो लन्दन ! क्या हुआ ? शान्ति हुई या लडाई ? बस २१ सितम्बर १९३८ तक इतना ही। शान्ति हुई या लडाई ?

२१ सितम्बर, १९३८

: ५ :

लन्दन की असमञ्जस

पिछले कुछेक हफ्तो मे हुई रहस्यभरी घटनाओं के बाद इधर-से-उधर घूम लेने और अपीलो व आखिरी चेतावनियो और लडाई के बढते हुए खतरे के आजाने पर आखिरकार मि० नेविल चेम्बरलेन आम घोषणा करने चले। वह रेडियो पर बोले और मैंने भी उनकी आकाशवाणी सुनी। वह मुख्तसर थी, मुश्किल से उसमे आठ मिनट लगे होगे। जो कुछ उन्होने कहा, उसमे कुछ भी नयी चीज नही थी। उनका कथन बाल्डविन की तरह भावनाओ को उकसानेवाला था, मगर उसमे बाल्डविन की-सी झलक और उनके व्यक्तित्व की छाप नही थी। इसलिए उसका मुझपर कोई असर नही पडा। न तो उसमे उन खास मसलो का जिक्र था जो दरपेश थे, न उस नगी तलवार का जिक्र था जो दुनिया के आगे चमक-चमककर मानव-जाति को त्रस्त कर रही थी और न उस हिंसात्मक तरीके की चर्चा थी जो राष्ट्रों का कायदा बनता जा रहा था और जिसको खुद मि० चेम्बरलेन अपनी कार्रवाइयो से उकसाते आ रहे थे। उस स्वाभिमानी और बहादुर राष्ट्र का भी उसमे मुश्किल से ही उल्लेख था, जिसको इर्द-गिर्द घेरे हुए शिकारी जानवरो की खून की प्यास को बुझाने के लिए कुर्बान किया जानेवाला था, और जिक्र किया भी गया तो अपमानजनक तरीके से। कहा गया कि वह एक दूरदराज का देश है, जिसके निवासियों के बारे मे हम कुछ नही जानते। उन्ही दूर बसनेवाले लोगों की शान का, हिम्मत का, शान्तिप्रियता का, स्वतन्त्रता-प्रेम का, उनके शान्त सकल्प का और ज्वलत बलिदानों का नाम तक

नही लिया गया कि जिनपर उनके दोस्तो ने ज्यादतियाँ की और दगा-बाजी करके उन्हे छोड दिया था। नात्सी क्षेत्रो से लगातार जो धमकियाँ मिल रही थी, अपमान किया जा रहा था और सरासर झूठ बोला जा रहा था, उसके निस्बत भी कुछ नही कहा गया था, सिर्फ खेद प्रकट करने के रूप में हेर हिटलर की 'नावाजिब कार्रवाई' का थोडा-सा जिक्र था।

मै उदास-सा हो गया और दिल अन्दर-ही-अन्दर भारी हो आया। क्या हमेशा अच्छो के साथ यही सलूक होता रहेगा, अगर उनके पास बडी फौजें न हुई ? क्या हमेशा बुराई की ही जीत होती रहेगी ?

मैने सोचा, शायद मि० चेम्बरलेन अगले रोज पार्लमैण्ट मे अपने मजमून के साथ ज्यादा इन्साफ कर सके। शायद आखिरकार वह जिस बात को महत्त्व मिलना चाहिए उसे देगे और हेर हिटलर का डर छोडकर सच्ची बात कहेगे। सकट का मौका नजदीक आ रहा था। सच बात जाहिर होने का वक्त आ गया था। पर साथ ही मुझे इसपर यकीन नही हो रहा था, क्योकि मेरे आगे तो चेम्बरलेन की पिछली बाते थीं, जोकि उनके फासिज्म और उसकी कार्रवाइयो की हिमायत करने का सबूत थी।

इसी समय पार्कों और खुली जगहो मे खाइयो की खुदाई का काम चल रहा था, विमानभेदी तोपे चढायी जा रही थी। ह० ह० हि०—हवाई हमलो से हिफाजत—के सामान हरेक छिपने की जगह से हमारी ओर घूर-घूरकर देख रहे थे और न जाने कितने कामचलाऊ गोदामो से मर्द और औरते गैस मास्क (घातक गैस से बचाव के लिए लगाये जानेवाले खास तरह के चेहरे) लगा-लगाकर देखते थे। ये गैस मास्क बडे बदसूरत और हिसा के इस बर्बर युग के सच्चे प्रतीक थे।

लोग अपने काम-काज पर आते-जाते, लेकिन उनके चेहरों पर बेचैनी और खौफ छाया दिखाई देता। कितने ही घरों मे उदासी छायी हुई थी, क्योंकि उनके प्रियजनो को आगे आनेवाली लडाई के लिए तैयार हो जाने का हुक्म मिला था।

घटे-पर-घटे धीरे-धीरे खिसकते गये और वह भयकर घडी नजदीक आती गयी कि जब एक आदमी के पागलपन से भरे इशारे पर हमला न करना चाहनेवाले, लाखों दयालु और सदाशय व्यक्ति एक दूसरे पर झपट पडेगे और मारकाट और सर्वनाश मचा देगे। तोपे गरजने लगेगी, आग उगलने लगेगी और बमवर्षक हवाई जहाजो के घर्राटे से आसमान गूँज उठेगा। सकट की घडी! क्या वह कल होगी या परसों?

आज पुन सुन पड़ा वही स्वर जिससे जग मे त्रास लहे
"अब तो नग्न और अनियत्रित तलवारो का राज रहे।"

लोग मजबूर कर रहे हैं कि मै भी एक गैस मास्क ले लूँ। इसके खयाल से ही मुझे तो हँसी आती है। क्या मैं सूँड लगाये जानवर की-सी सूरत बनाये इधर-उधर घूमता फिरूँ? मै खतरे और खौफ से घबराता नही हूँ और बार्सीलोना मे तो कुछ दिन रहकर मुझे हवाई हमलो का स्वाद मिल चुका था। मै इस बात पर भरोसा नही करता कि ये काम की चीजे है, क्योंकि अगर खतरा आयेगा ही तो चेहरा क्या हिफाजत कर सकेगा? शायद उसका खास मकसद यह हो कि पहननेवाले को इतमीनान रहे और आम जनता में हौसला कायम रहे। जब हद दर्जे का खतरा सामने होगा तो कोई नही जानता कि वह कैसे उसका आमने-सामने मुकाबला करेगा? और मेरा खयाल है कि मेरा सर आसानी से जुदा न होगा।

तो भी गैस-मास्क को नजदीक से देखने का कौतूहल मुझे हुआ

और मैने ह० ह० हि० के एक गोदाम पर जाने का निश्चय किया। चेहरा चढाया गया और एक मै ले भी आया।

(अमरीका के) राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने हेर हिटलर के पास एक सन्देश भेजा है। वह एक गौरवपूण मार्मिक अपील है जिसमे मसले के खास मुद्दे पर जोर दिया गया है। जो कुछ वह कहते है और जिस तरह कहते है उसमे और मि० चेम्बरलेन के वक्तव्यो मे कितना बडा फर्क है। प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट का एक-एक छपा हुआ शब्द तक जाहिर करता है कि उसके पीछे कोई इसान है। हिटलर के लिए दलील और अजाम का खौफ कोई मानी नही रखता। क्या हिटलर निरा पागल है कि वह अपनी उस अद्भुत कूटनीतिपूर्ण विजय को जो उसे निस्सन्देह हिंसा की धमकी देकर मिली है, लडाई मे शामिल होकर खतरे मे डाल दे ? क्या वह नही जानता कि विश्वव्यापी युद्ध मे पडने पर उसकी किस्मत मे हार और बरबादी ही आयेगी और उसीके लोगो मे से अधिकाश उसके खिलाफ उठ खडे होगे या शायद उसने मि० चेम्बरलेन और मो० दलैदिये को ठीक-ठीक पहचान लिया है और वे कहाँतक जा सकते है, इसका उसे ठीक-ठीक इल्म हो गया है।

पार्लमेण्ट-भवन को जानेवाली सडको पर भीड ही भीड है, और वातावरण मे उत्तेजना है। भवन के भीतर की जगह रुकी हुई है और दर्शको की गैलरियाँ खचाखच भरी हुई है। लार्ड लोग अपने पूरे जोर-शोर के साथ हाजिर है। वे बिल्कुल बुर्जुआओ की भीड ही जान पडते है और नीची श्रेणी के इसानो से उनमें कोई फर्क नही नजर आता। ड्यूक आफ केण्ट की बगल मे लार्ड बाल्डविन विराजमान है। उनकी दूसरी बगल मे लार्ड हैलीफैक्स और केण्टरबरी के आर्चबिशप है, राज-नीतिज्ञो की गैलरी मे भीड है। रूस का उप-राजदूत वहाँ है और चेको-

स्लोवाकिया के मन्त्री मो० मसारिक भी, जो राष्ट्र का निर्माण करनेवाले मशहूर पिता के बेटे है, वही है। क्या उसी शानदार इमारत को, जिसे पिता ने निर्माण किया था, बेटा बरबाद होते देखेगा ?

प्रधान-मन्त्री ने शुरूआत की। उनकी शक्ल प्रभावशाली नही है। उनके चेहरे पर बड़प्पन नही है। वह बहुत-कुछ एक व्यापारी जैसे जान पड़ते है। उनका भाषण ठीक होता है। घण्टे भर उन्होने भाषण दिया। वह एक तरह का सफाचट वर्णन था, जिसमें जहाँ-तहाँ व्यक्तिगत बाते थी और ऐसे अलफाज थे जिनमे दबी हुई उत्तेजना झलकी पड़ती थी। न जाने क्योकर मुझे लगा (या मेरा खयाल हो) कि वह शख्स इतना बड़ा नही है कि उस काम के लायक हो जो उसने हाथ में लिया है और उसके शब्दो और तरीका से भी यही भावना बारबार जाहिर हो जाती है। अपनी व्यक्तिगत दस्तन्दाजी पर, हिटलर के साथ हुई उनकी बातचीत पर और दुनिया की हलचलों मे वह जो हिस्सा ले रहे है, उसपर वह उत्तेजित हो जाते है, उन्हे नाज हो आता है। ब्रिटेन के प्रधान-मन्त्री होते हुए भी वह ऐसे बड़े-बड़े कामो के अभ्यस्त नहीं है और खतरे के कामो का नशा उन्हें चढा रहता है। पामर्स्टन होता, ग्लैडस्टन होता या डिजरैले होता तो मौका न चूकता। कैम्पबेल बैनरमैन होता तो जो कुछ कहता उसमे आग भर देता। बाल्डविन सभाभवन को पकड़े रखता और चर्चिल भी दूसरे ढग से यही करता, एस्क्विथ भी मौके के लायक शान के साथ बोलता। लेकिन मि० चेम्बरलेन ने जो कुछ कहा उसमें न तो कोई हार्दिकता थी और न कोई बुद्धि की गहराई। यह तो बिलकुल साफ जाहिर हो गया कि वह किस्मतवाले आदमी नहीं है।

मेरा खयाल उनकी हिटलर के साथ हुई मुलाकात की तरफ गया और मैने सोचा कि वे हिटलर से दब-से गये होगे, उसकी बार-बार दी

गयी आखिरी चेतावनियो से ही नही, बल्कि उसके जोरदार लगनवाले और थोडे-बहुत सनकी व्यक्तित्व से भी, क्योकि हिटलर मे चाहे जितना बुरा इरादा हो, फिर भी उसमे कुछ-न-कुछ तात्त्विकता है और मि० चेम्बरलेन तो धरती के है, पार्थिव। फिर भी मि० चेम्बरलेन चाहते तो उस तात्त्विक शक्ति का मुकाबला दूसरी ताकत से करते, जो खुद तात्त्विक होते हुए भी कही ज्यादा जबरदस्त थी और वह ताकत थी सगठित प्रजातन्त्र या लाखो-करोडो व्यक्तियो की इच्छा की। उनके पास न वह ताकत थी ओर न उसे हासिल करने की कोशिश थी। वह तो अपने तग दायरे मे ही चक्कर काटते रहे और मर्यादित शब्दो मे ही सोचते और लाखो को पिघला देनेवाली प्रेरणा को बढावा देने अथवा उसे व्यक्त करने की कभी कोशिश नही करते थे। वैसी परिस्थिति मे यह तो लाज़िमी ही था कि इरादो मे टक्कर होने पर उनको हिटलर के आगे झुकना पडता।

लेकिन क्या इरादो की टक्कर थी भी ? मि० चेम्बरलेन ने जो कुछ कहा उससे ऐसी किसी टक्कर का इशारा तक नही मिलता था क्योंकि उनके कामो मे कोई टक्कर नही थी। वह हिटलर के पास हमदर्दी और बहुत-सी स्वीकृतियाँ और समझौते लेकर पहुँचे। ऊँचे सिद्धान्तो की, आजादी की, प्रजातन्त्र की, मानवीय अधिकारो और न्याय की अन्तर्राष्ट्रीय कानून और नीतिमत्ता की चर्चा नही हुई और तलवार के न्याय की बर्बरता का, उकता देनेवाले झूठ का, नात्सीवाद के परम पुजारियो की अमानुषता का कुछ ज़िक्र तक नही हुआ। जर्मनी मे अल्पसख्यको के साथ हुए उन अत्याचारो की कोई चर्चा नही हुई जिनकी दुनिया मे मिसाल नही है, और न पैसा ऐठने की जबरदस्तियो और धमकियो के आगे सर न झुकाने की कोई बात ही छिडी। सिद्धातो पर शायद ही

कोई झगडा हुआ हो, सिर्फ चन्द ब्यौरे की बातों की चर्चा हुई। यह साफ है कि अगर मि० चेम्बरलेन की इग्लैण्ड-सम्बन्धी परिस्थिति को छोड दें तो उनका दृष्टिकोण हिटलर से कोई ज्यादा भिन्न नही था।

अपने उस लम्बे भाषण मे उन्होने हिटलर की तारीफ में, उसकी ईमानदारी और उसकी सचाई मे यकीन होने और यूरोप मे और ज्यादा इलाके न चाहने के उसके वायदे के बारे मे बहुत-कुछ कह डाला। मगर राष्ट्रपति रूज़वेल्ट और उनके महत्त्वपूर्ण सन्देशो का जिक्र तक नही किया। रूस का भी कोई जिक्र नही हुआ, हालाँकि रूस का चेको-स्लोवाकिया की किस्मत से इतना गहरा सम्बन्ध है।

और खुद चेको-स्लोवाकिया की निस्बत भी क्या ? हाँ, उसका जिक्र ज़रूर था, मगर उसके निवासियो की बेमिसाल कुरबानियों के बारे मे, असह्य उत्तेजना मिलने पर भी उनके आश्चर्यजनक सयम तथा गौरव के सम्बन्ध मे, और प्रजातन्त्र का झण्डा ऊँचा रखने की निस्बत एक लफ्ज़ तक नही कहा गया। इसे छोड देना बडी आश्चर्यजनक और महत्त्वपूर्ण भूल थी, जो जानबूझकर की गयी थी।

मि० चेम्बरलेन के भाषण पर श्रोतागण स्तब्ध थे—वक्ता की दलीलों की उत्कृष्टता या उसके व्यक्तित्व की वजह से नही, बल्कि विषय के अत्यन्त महत्त्व की वजह से। उनके भाषण का अन्त नाटकीय ढग से हुआ। कल वह सिन्योर मुसोलिनी और मो० दलैदिये के साथ म्यूनिक जानेवाले है और बडी कृपा करते हुए हिटलर ने एक काबिलेग़ौर रिआयत की है कि वह २४ घटे तक लडाई की तैयारी का हुक्म न देगा।

इस नाटकीय ढग से और इससे होनेवाली इस उम्मीद से कि शायद लडाई टल जाये, मि० चेम्बरलेन ने पार्लमेण्ट-भवन को उत्तेजित करने में कामयाबी पायी। पिछले चन्द दिनो का बोझ हल्का हुआ और

सबके चेहरों पर राहत नजर आने लगी।

यह अच्छा हुआ कि युद्ध टल गया, चाहे अब भी वह टला एक या दो दिन के ही लिए हो। उस युद्ध का विचार करना तक भयानक था, तो उससे मिलनेवाली थोड़ी-सी भी राहत सबको अच्छी क्यो न लगती ?

और फिर, और फिर, चेको-स्लोवाकिया का क्या हुआ ? प्रजातन्त्र और आज़ादी का क्या हुआ ? क्या अब कोई दूसरी दगाबाज़ी करके उस राष्ट्र की पूरी हत्या होनेवाली थी ? म्यूनिक मे जो यह अजीब चौकडी जमा हुई, वह क्या फासिस्ट-साम्राज्यवादी चार राष्ट्रो की सधि के उस नाटक की प्रस्तावना थी जिसमे रूस को अलग कर दिया गया, स्पेन को खत्म कर दिया गया और तमाम प्रगतिशील तत्त्वो को कुचल दिया गया ? मि० चेम्बरलेन के पिछले इतिहास को देखते हुए लाजमी तौर पर यही खयाल करना पडता है।

तो कल हिटलर और मुसोलिनी से चेम्बरलेन साहब मिलेगे। उनके लिए तो एक ही काफी था। दो-दो जबर्दस्त मिल जायेगे तो न जाने उनके नसीब मे क्या बदा होगा ! सम्भव है, मि० चेम्बरलेन और मो० दलॅदिये उनके शब्द-जाल मे फँसकर जो कुछ हिटलर कहेगा सब मान लेगे और फिर अपनी दूसरी मेहरबानी के बतौर हिटलर चन्द दिनो या हफ्तो के वास्ते जग को मुल्तवी करने पर राजी हो जायेगा। वह सचमुच एक महान् विजय होगी ! और तब हिटलर का शान्तिदूत के रूप मे अभिनन्दन होना चाहिए। शाति का नोबल पुरस्कार शायद अब भी उसको दिया जा सके, हालाँकि मि० चेम्बरलेन भी जोर-शोर से उसे जीतने की कोशिश करेगे।

२८ सितम्बर, १९३८

: ६ :

हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड

ढाई साल पहले मैं इंग्लैण्ड पहुँचा था और वहाँ की विभिन्न पार्टियों और दलों के बहुत से व्यक्तियों से मिला था। उन्होंने भारत की समस्या में शिष्टतापूर्ण दिलचस्पी जाहिर की थी और हम जिस मकसद के लिए लड़ रहे हैं उससे सहानुभूति दिखायी थी। मैंने उस शिष्टता की कद्र की थी और उस हमदर्दी का स्वागत किया था। लेकिन वह सब होते हुए भी मैंने दोनों में से किसी को भी बड़ा महत्त्व नहीं दिया क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता था कि वहाँ के आम लोगों में तो हिन्दुस्तान के प्रति उदासीनता और रुखाई है ही, उन लोगों में भी है कि जिनका काम ऐसी समस्याओं पर विचार करना है।

मैंने देखा कि वहाँ के लोगों की आम मंशा हिन्दुस्तान के बारे में कुछ न सोचने और मामले को टालने की है। वह समस्या काफी उलझी हुई थी और मुसीबत से भरी दुनिया में उनकी एक मुसीबत और क्यों बढ़ा दी जाये? भारतीय शासन-विधान मंजूर हुआ ही था और चूँकि वह असन्तोषजनक था, इसलिए कम-से-कम उससे एक फायदा तो हुआ। इसने मामले को कुछ अर्से के लिए मुलतवी कर दिया और उन्हें उसकी बाबत कुछ विचार न करने का एक बहाना मिल गया।

मुझे इससे निराशा नहीं हुई क्योंकि मैंने इससे कोई ज्यादा उम्मीदें नहीं बाँधी थीं और बरसों से हम लोगों ने यह सबक सीखा है कि दूसरों के आसरे कभी न रहें बल्कि अपनी खुद की ताकत बढ़ायें। मैं भारत लौट आया। पर हमारी समस्या दूर नहीं हुई क्योंकि इंग्लैण्डवाले उसपर

विचार नही कर रहे थे, बल्कि वह बढती ही गयी और साथ-साथ हम भी बढते गये ।

इसी बीच, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पहले से ज्यादा चिन्ताजनक हो गयी और हमे यह समझ मे आने लगा कि हिन्दुस्तान का मसला इस विश्वव्यापी समस्या का ही एक अग है और अगर कोई सकट या युद्ध आ पडा तो हम हिन्दुस्तान मे रहनेवाले उसपर असर डाल सकते है । हम लोगो के साथ-साथ दूसरे लोगो को भी यह जाहिर होने लगा है और हिन्दुस्तान की आजादी पाने की जद्दोजहद अन्तर्राष्ट्रीय सतह तक जा पहुँची है ।

इग्लैड की अपनी इस यात्रा मे मुझे फिर अपने नये और पुराने मित्रो से मिलने और बहुतेरी सभाओ मे हिन्दुस्तान के विषय मे भाषण देने के सुअवसर मिले है ।

मैने फिर भी भारत के बारे मे एक तरह की उदासीनता और काफी नावाकफियत उनमे पायी और उसका ध्यान स्पेन, चीन और मध्य यूरोप की आवश्यक समस्याओ मे लग जाना लाज़मी था । लेकिन तो भी मैने काफी फर्क पाया । और देखा कि हिन्दुस्तान के मसलो पर नजर डालने का तरीका भी नया और ज्यादा यथार्थवादी हो गया है । हो सकता है कि यह इस बात के समझने से हुआ हो कि आज हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन की ताकत बहुत बडी है, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति बहुत नाजुक है और यह डर पैदा हो गया है कि सकट का मौका आने पर हिन्दुस्तान खतरे को और भी बढा सकता है । शायद इसी गम्भीर परिस्थिति और सिरपर मँडराने वाले सकट की भावना ने ही लोगों को अपनी पुरानी दिमागी लीको से हटने को और सचाई तथा असलियत के साथ सोच-विचार करने को मजबूर किया था ।

क्योंकि असलियत तो यह है कि भारत पूरी स्वतन्त्रता चाहता है और उसे पाने के लिए कमर बाँधे हुए है। हमारी भयकर गरीबी की समस्या सुलझायी जाने के लिए चिल्ला रही है और वह समस्या तबतक हल होनेवाली है नही, जबतक कि हिन्दुस्तान के निवासी अपने देश का बिना किसी बाहरी दखल के मनचाहा राजनैतिक और आर्थिक भविष्य बना लेने का अधिकार न पाले। दूसरी बात यह भी है कि भारतवासियो की सगठित शक्ति पिछले वर्षो मे काफी बढ गयी है और किसी भी बाहरी ताकत के लिए उन्हे स्वराज की ओर बढने से अधिक दिनो तक रोक रखना मुश्किल है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी छिपे तौर पर हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन को बडा बल दे रही है।

कट्टर दल भी यह मानता है कि हिन्दुस्तान की परिस्थिति की ठीक-ठीक जाँच का सार यही निकलता है कि हिन्दुस्तान आजादी पाकर रहेगा। दूसरो की सद्भावना से मिले तो बेहतर है, पर ऐसा न हो तब भी वह रुक नही सकती। इसीलिए आज करीब-करीब हर शख्स हिन्दुस्तान की आजादी की बात करता है।

इस दृष्टिकोण से देखने पर प्रान्तीय स्वराज और फेडरेशन के प्रश्न इस व्यापक प्रश्न के मुकाबले छोटे पड जाते है। यह जरूर है कि उनके कारण एक बहुत बडा सघर्ष छिड सकता है लेकिन खास सवाल तो आजादी का ही है और रहेगा, और हम अपने एक-एक कदम की, अपनी एक-एक नीति की अकेले इसी प्रश्न की कसौटी पर जाँच करके फैसला करेंगे कि क्या वह हमे ताकत देता है और स्वतन्त्रता को हमारी पहुँच के अन्दर ला देता है।

अगर अडचन डाली गयी, अगर हमपर कोई चीज थोपने की कोशिशे की गयी, तो हमारी कार्रवाई मुखालफत की होगी। अन्तिम परिणाम

वही होकर रहेगा, क्योंकि उस उद्देश्य को पाने के लिए ऐसी ताकतें काम कर रही हैं जो इन्सान के बस के बाहर हैं। हो सकता है कि वह कार्रवाई मित्रता और सद्भावना के साथ हो और मित्रता और सहयोग की ओर ले जाये अथवा उसके पीछे दुर्भावना और विरोध रहे, जिससे भविष्य अन्धकारमय हो जाये और आपस के स्वस्थ सहयोग में रुकावटें पैदा हो जाये।

मेरा विश्वास है कि इसी सारी बात को समझ लेने की वजह से ही वहाँ के बहुतेरे लोगों के रुख में यह सब तबदीली हुई है। वे जान गये हैं कि गतिशील परिस्थिति में कुछ न करने और उदासीन बने बैठे रहने से कुछ लाभ नहीं होता बल्कि कुछ कर गुजरने की नीति ज्यादा फायदे-मन्द होती है।

दुर्भाग्य की बात है कि इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के पीछे इसी विरोध और संघर्ष का इतिहास है। एक हिन्दुस्तानी इसे आसानी से नहीं भूल सकता। फिर भी आज के युग में—जिसके गर्भ में कुछ छिपा हुआ है—जबकि दुनियाभर में संघर्ष है, फासिस्ट हमले हो रहे हैं और भयंकर लड़ाई के आसार हमेशा बने ही रहते हैं, अगर हम छोटी-छोटी गयी-गुजरी बातों का खयाल करते और काम करते रहे तो उससे हमको ही खतरा है। अब तो हमको उनके ऊपर उठकर बड़ी व्यापक दृष्टि रखनी चाहिए।

मुझे तो यकीन है कि भविष्य में हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड आपसी भलाई के लिए एक-दूसरे को बराबर मानते हुए आपस में सहयोग कर सकें यह संभव है। लेकिन सल्तनत की छाया में वह सहयोग होना नामुमकिन है। पहले उस सल्तनत को खत्म करना होगा और हिन्दुस्तान को अपनी आजादी हासिल करनी होगी, तभी सच्चा सहयोग मुमकिन हो सकेगा।

एक भारतीय राष्ट्रवादी होने के नाते मुझे इग्लैण्ड से कुछ नही कहना है, क्योकि हम उसकी कल्पना साम्राज्यवाद की ही भाषा मे करते है। मै तो वही काम कर सकता हूँ जिससे हमारी अपनी शक्ति बने, बढे और हमारा ध्येय प्राप्त करा सके।

लेकिन दुनिया मे शाति और स्वतन्त्रता पर ठहरी हुई सुव्यवस्था देखने का परम इच्छुक होने के नाते मुझे इग्लैण्ड और उसके निवासियो से बहुत कुछ कहना है, क्योकि मै देख रहा हूँ कि आज की अग्रेज सरकार ऐसी नीति पर चल रही है, जो शान्ति और स्वतन्त्रता दोनो के लिए खतरनाक है।

उस नीति से हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड के बीच की खाई बढेगी क्योकि हम उसके कतई खिलाफ है और उसे आज की दुनिया की एक बुराई समझते है। क्या इस बुनियाद पर हमारे उनके बीच सहयोग हो सकता है ?

एक समाजवादी के नाते मुझे यहाँ के अपने साथियो से और भी ज्यादा कहना है। पिछले दिनो इग्लैण्ड की लेबर पार्टी साम्राज्यवादी मामलो पर खास तौर पर भारत के सम्बन्ध मे भयानक रूप से ढिलमिल रही है। उसकी कारगुजारिया खराब है। लेकिन खतरे के इन दिनो मे हममे से कोई भी ढिलमिल होने या दाअर्थी बात करने की हिम्मत नही करता। इसलिए यही मौका है कि इग्लैण्ड की लेबर पार्टी उन सिद्धान्तो पर चले जिनको उसने बताया है और मुनासिब बात भी यही है कि यह कार्रवाई हो जानी चाहिए।

लेबर पार्टी को फासिज्म-विरोधी होने के साथ-ही-साथ साम्राज्य-वाद-विरोधी भी होना चाहिए। उसे सल्तनत को खत्म करने का हामी होना चाहिए उसे साफ शब्दो मे हिन्दुस्तान की आजादी की और उसकी

जनता के इस अधिकार की घोषणा कर देनी चाहिए कि वह विधान-पचायत द्वारा अपना विधान खुद बनाले और इसकी पूर्ति मे जो कुछ उससे बन सके उसे करने के लिए उसे तैयार रहना चाहिए ।

हमें फेडरेशन के बारे मे कोई ज्यादा अफसोस नही है क्योंकि हम तो चाहते है सारा-का-सारा भारतीय शासन-विधान हटा ही दिया जाये और उसकी जगह हमारा अपना तैयार किया विधान आ जाये ।

छोटे-छोटे उपायो का वक्त अब नही रहा । अब तो दुनिया सकट की ओर दौड रही है । अगर दुनिया की प्रगतिशील ताकतें साथ मिलकर कोशिश करे, तो हम अब भी उस सकट को टाल सकते है । इस साझे मे हिन्दुस्तान भी अपना हिस्सा ले सकता है, लेकिन सिर्फ स्वतन्त्र होकर ही । इग्लैण्ड की लेबर पार्टी अगर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होगी तो भविष्य मे इग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के दर्मियान मित्रता और सहयोग की बुनियाद पडेगी ।

यह देखकर तसल्ली होती है ब्रिटिश लेबर पार्टी के नेता इस दिशा मे सोच रहे है । और यह जानकर और भी ज्यादा प्रसन्नता होती है कि मजदूर आन्दोलन का पूरा दल-बल बडे उत्साह के साथ आज़ादी की इस पुकार को सुन रहा है ।

दुनिया आज तेजी से दौड रही है और कौन जानता है कि कल क्या हो ? हिन्दुस्तान मे भी रद्दोबदल हो रही है और वह आगे बढ रहा है और हो सकता है कि हमारी सारी योजनाएँ जल्दी ही पुरानी पड़ जाये लेकिन हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड की प्रगतिशील शक्तियो में सद्भावना होने से एक ऐसे भावी सहयोग की नीव पड सकती है जिससे दोनों का भला हो और विश्व-शान्ति और स्वतन्त्रता को मदद पहुँचे ।

२८ अक्टूबर, १९३८

: ७ :

रूस की ख़ुशामद

बीस साल पहले तरुण सोवियट-प्रजातन्त्र पर सब तरफ से इग्लैण्ड, अमरीका, फ्रास और जापान जैसे ताकतवर देश टूट पड़े थे। ख़ुद उसी के इलाके मे प्रति-क्रान्ति उठ खड़ी हुई थी और दूर-दूर से उसको समर्थन मिला था। रूस के पास फौज नही थी, पैसा नही था, लड़ाई के साधन या उद्योग-धन्धे नही थे, और लड़ाई, हार और क्रान्ति के बाद निहायत बदइन्तजामी फैल गयी थी, जिसके कारण वह बरबाद होने को था और उसके दुश्मन ताक रहे थे कि कब वे अन्त मे उसपर हावी हो जायें। यहाँतक कि जो उसके साथी थे वे भी उसका फिर से उठना नामुमकिन-सा मानते थे और सोच बैठे थे कि अब तो उसे मिटना ही है। लेकिन एक महान् पुरुष के अदम्य सकल्प और प्रतिभा ने ऐसी जिन्दगी और नयी उम्मीद पैदा की कि रूस ने इन सब भयकर मुसीबतो को पार किया और वह जिन्दा रहा।

लेकिन फिर भी वे लोग उसे नफरत और हिकारत की निगाह से देखते रहे, गोया वह राष्ट्रो के बीच मे कोई अछूत—अन्त्यज—हो कि जो उच्च वर्णों को चुनौती देने चला हो। उन्होने उसकी कोई पूछ नहीं की, उससे कोई वास्ता नही रखा, उसकी बेइज्जती की और उसके रास्ते में हर तरह की मुसीबतें पैदा की। मगर वह तो इस तानेजनी को सुना-अनसुना करता हुआ जीता रहा और उस नयी जिन्दगी को लाने में लगा रहा जिससे वह इतना बड़ा हिम्मत का काम करने के लिए तैयार हुआ था। उसके रास्ते मे परीक्षा और संकट की घड़ियाँ आयीं और

अक्सर उसने गलतियाँ की और गलतियो के लिए नुकसान उठाया। मगर फिर भी वह एक प्रकार के विश्वास और ताकत को लेकर अपने सपनो की दुनिया बनाता हुआ बढता ही चला गया।

शायद सपने तो कतई सच्चे न हो सके, क्योकि असलियत मन मे बनी हुई तसवीर से जुदा थी। फिर भी एक दुनिया बनी, एक बहादुराना नयी दुनिया, जिसमे एक जान थी, उम्मीद थी, सुरक्षितता थी और उन लाखो इन्सानो के लिए, जो उसके लम्बे-चौडे इलाको मे बसे हुए थे, खुशहाली का जमाना लानेवाली थी। बिजली की रफ्तार से उद्योग-धन्धे फैले, शहर बस गये, खेती ने उसकी शक्ल को ही बदल डाला और कल के गये-गुजरे तरीको की जगह सामूहिक खेती होने लगी। साक्षरता का प्रसार होने लगा, शिक्षा और संस्कृति की उन्नति हुई, विज्ञान को अपनाया गया और योजनाभरे वैज्ञानिक तरीका का उपयोग राष्ट्र के नवनिर्माण मे किया गया।

दुनिया को दिलचस्पी हुई। अरे, जबकि तमाम दुनिया कुचली जा रही है, एक तरह की आर्थिक मन्दी से जिसका गला घुट रहा है और हर जगह बेकारी बढ रही है, तब यह तेजी से तरक्की होने और बेकारी कम होने की अजीब चीज कैसी! राजनेता और चान्सलरों ने इस गैरमामूली बर्ताव को पसन्द नही किया। उनके अपने लोगो के आगे यह बुरी मिसाल थी। वे सोवियट को मुसीबत मे डालने के जाल रचने लगे, वे छेडखानी के बर्ताव करके उसे भडकाने लगे, वे उसे लडाई मे फाँसने लगे। मगर उसने इन अपमानो की परवा न की और लडाई मे पडने से इनकार किया। अपने राष्ट्र के नवनिर्माण का जबर्दस्त कार्यक्रम लेकर उसने जान-बूझकर दृढता के साथ वैदेशिक मामलो मे शांति की नीति कायम रखी।

इसी बीच, उसने अपनी सेना और हवाई ताक़त भी बढा ली और ज्योंही ये तैयार हो चुकी, उन लोगो मे भी जो उसे नापसन्द करते थे उसके लिए इज्जत हो गयी। लेकिन इज्जत के साथ-साथ डर भी उन लोगो मे पैदा हुआ और वे फिर चाले चलकर उसे अकेला छोड़ देने और नयी फासिस्ट ताकतो को उसके खिलाफ उभाड़ने की कोशिशें करने लगे। यूरोप के प्रजातन्त्र के हिमायतियो ने नात्सियो और फासिस्टो से मुहब्बत की, उनके हमलों को बर्दाश्त किया, उनकी हैवानियत को और असभ्यतापूर्ण उद्दण्डता को दरगुज़र किया, जो उनके आसरे थे उन्हे धोखा दिया, और अपने साथियो और दोस्तों से दगाबाजी की—और सब सिर्फ इस उम्मीद से कि सोवियट को कुचलकर नात्सियो से उसपर हमला कराया जाये। उन लोगों ने म्यूनिक के समझौते मे उसे पूछा ही नही—हालांकि वह फ्रास का और उसी देश का मित्र था कि जिसे अलग करने को वे जमा हुए थे। अन्त तक सोवियट अपने साथियो के साथ सच्चा और अपने वायदो पर कायम रहा।

म्यूनिक की घटना होने और सन्तुष्ट करने की नीति के खुल खेल लिये जाने के बाद ८ महीने गुज़र गये। और अब ईश्वर की लीला है कि सोवियट रूस की कोई अवहेलना नही कर सकता ! अब उसे चाहने और उसकी कृपा चाहनेवाले बहुतेरे है। हिटलर भी, जो कि साम्यवाद का बडा दुश्मन है, उसकी इज्जत करता है और समझौता चाहता है। फ्रास और इग्लैण्ड उसके पीछे-पीछे लगे हुए है और मीठी-मीठी बाते करके इस बात को छिपाना चाहते है कि पहले उसे नही चाहते थे। एकाएक सोवियट रूस अन्तर्राष्ट्रीय मामलो का कर्त्ता-धर्ता बन गया है और उसका फैसला आज स्थिति मे बडी भारी रद्दोबदल कर सकता है।

सोवियट रूस आज यूरेशिया महाद्वीप में सबसे ज्यादा ताकतवर

देश है। अपनी बड़ी फौज और विशालकाय हवाई ताकत के लिहाज से ही वह ताकतवर नहीं है बल्कि उसके साधन अटूट हैं और उसने समाज का जो ढाँचा तैयार किया है वह बड़ा शक्तिशाली है। हिटलर के जर्मनी के पास भले ही हथियारबन्द फौज हो, मगर उसकी बुनियाद कच्ची है और लड़ाई या शांति को कायम रखने की ताकत उसमें नहीं है। वह बूढ़ा हो ही चला है। और वह चलता रहे इसके लिए उसे ताकत की दवा बार-बार मिलने की जरूरत है। ये ताकत की दवाएं उसके पास हरेक नये हमले में और इंग्लैंड और फ्रांस की सद्भावना से मिली हैं। जर्मनी के साधन महदूद हैं और उसकी धन-शक्ति ज्यादा-से-ज्यादा खर्च हो चुकी है। हाँ, फ्रांस के पास उम्दा फौज है और उसकी कीमत हो सकती है, मगर वह तो अभी से ही सब राष्ट्रों में पीछे पड़ गया है। इंग्लैण्ड की सल्तनत बहुत बड़ी है, लेकिन अब वह है कहाँ ? उसके पास बड़े-बड़े साधन हैं, लेकिन उसकी बड़ी-बड़ी कमजोरियाँ भी हैं। उसके भी घमण्ड और हुकूमत के दिन लद गये।

अगर सोवियट रूस न होता तो आज इंग्लैण्ड होता कहाँ ? या फ्रांस या यूरोप के पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिण पूर्वी देश कहाँ होते ? यह खयाल बड़ा अजीब है कि यूरोप में नात्सियों के हमले का सफल मुकाबला करनेवाला किला सोवियट रूस है। सोवियट की मदद के बिना आज अधिकांश दूसरे देश लड़ने की कोशिश करने के पहले ही मिट सकते हैं। उसकी मदद के बिना इंग्लैण्ड का पोलैण्ड और रूमानिया को आश्वासन देना कोई मानी नहीं रखता।

आज दुनिया में दो ही ताकतें जाँच-पड़ताल के बाद ठहरती हैं। एक तो अमेरिका के संयुक्त-राष्ट्र और दूसरा सोवियट रूस। संयुक्त-राष्ट्र तक तो कोई नहीं पहुँच सकता और उसके साधन अपार हैं। भौगो-

लिक दृष्टि से सोवियट-सघ की स्थिति अच्छी नही है, लेकिन फिर भी वह करीब-करीब अजेय है। तमाम दूसरी ताकते इन दोनो से नीचे दर्जे की है, और अपनी हिफाजत के लिए उन्हें अपने साथियो के आसरे रहना पड़ता है। और ज्यों-ज्यो समय बीतता जायेगा त्यो-त्यो यह विषमता बढ़ती जायेगी।

और यही कारण है कि उसके साम्यवादी के होते हुए भी वे लोग जो उससे नफरत करते थे आज उसकी खुशामद कर रहे है। ईश्वर की लीला है!

३० मई, १९३९

: ८ :

इंग्लैण्ड की दुविधा

परम्परा से ब्रिटेन की विदेशी नीति इस आधार पर रही है कि साम्राज्य व उसके स्थल और जलमार्गों की हिफाजत रहे, यूरोप में शक्ति-सन्तुलन अर्थात् राष्ट्रों की ताकत की समतोलता कायम रहे ताकि इग्लेंड सबपर हावी रहे और आर्थिक दृष्टि से ब्रिटेन का प्रभुत्व बना रहे जैसा कि महायुद्ध के सौ बरस पहले रहा था। १९ वी सदी के उत्तरार्द्ध में सयुक्त-राष्ट्र अमरीका और जर्मनी इग्लैण्ड के औद्योगिक आधिपत्यों को चुनौती देने लगे। साम्राज्यवादों में टक्कर शुरू होगयी, जिसका नतीजा हुआ १९१४ का महायुद्ध। इस लड़ाई के बाद राजनीतिक दृष्टिकोण से इग्लैण्ड की स्थिति बडी फायदेमन्द होगयी, परन्तु सयुक्त-राष्ट्र उसके आर्थिक प्रभुत्व को ललकारने लगा। अमरीका के साथ कडी टक्कर लेते रहने के बाद इग्लैण्ड ने जैसे-तैसे दुनिया में अपनी आर्थिक स्थिति वैसी ही बना ली, हालाँकि वह एक कर्जदार राष्ट्र रहा और सयुक्त-राष्ट्र कही ज्यादा मालदार और दुनिया की बडी ताकतों में अकेला कर्ज देनेवाला (Creditor) राष्ट्र था। मगर इस दिखावटी जीत के लिए इग्लैण्ड को जो कीमत चुकानी पडी वह बहुत बडी थी, उसके यहाँ बेकारी बढी और उद्योग-धन्धे बैठने लगे। चीजों के दाम एकदम गिर गये।

राजनैतिक जनतन्त्र की शुरुआत करने में अगुआ होते हुए भी यह अजीब बात थी कि वह सामाजिक दायरे में पिछडा हुआ था। आज भी इग्लैण्ड यूरोप के अधिकाश देशों से सामाजिक मामलों में ज्यादा

अनुदार है । चूँकि वह सम्पन्न हो रहा था और अपने साम्राज्य में होने-वाले शोषण से आयी हुई सम्पत्ति से मालामाल हो रहा था, इसलिए सामाजिक सघर्ष का असर उसपर बिल्कुल नही हुआ—और हुआ तो कम होगया । कुछ हदतक उसके श्रमिक (मजदूर) लोग इस नयी दौलत में हिस्सा बँटानेवाले हुए, लेकिन दृष्टिकोण मे वे साम्राज्यवादी थे । इग्लैण्ड का वास्तविक श्रमिक-वर्ग तो हिन्दुस्तान और ब्रिटिश उपनिवेशों मे बसता था ।

सोवियट रूस के उत्थान व साम्यवादी और समाजवादी विचारो की पैदाइश के साथ ही ब्रिटेन के शासक-वर्ग मे खलबली मच गयी और उन्होने महायुद्ध के बन्द होते ही सोवियट शासन का अन्त कर देने की कोशिश की । वे कामयाब नही हुए, मगर दुश्मनी का रुख जारी रहा । चूँकि रूस को वे सामाजिक और राजनीतिक दोनो निगाहो से खतरनाक समझते थे, इसलिए वैदेशिक विभाग की परम्परागत नीति का इस दुश्मनी के साथ मेल बैठ गया । जापान के मचूरिया पर होनेवाले हमले को न रोका जाने का लाजमी अजाम यह होता कि राष्ट्र-सघ के सारे ढाँचे को दफना दिया जाता । और फिर भी, इग्लैण्ड ने इसे बर्दाश्त ही नही कर लिया, बल्कि उसे बढावा भी दिया । तत्कालीन वैदेशिक मन्त्री सर जॉन साइमन अपनी राह को छोडकर जापान की मदद करने चले गये और इस तरह राष्ट्र-सघ के कल-पुर्ज़े बिगाड दिये । इंग्लैण्ड की वैदेशिक नीति का तमाम आधार उस समय भी यही था और आगे भी रहा कि सोवि-यट-सघ का विरोध किया जाये और उसे क्या यूरप और क्या सुदूरपूर्व दोनो मे कमजोर कर दिया जाये । वैदेशिक विभाग या ब्रिटिश शासक-वर्ग के लोग अपने-अपने विचारो में साफ थे और किसी तरह की शका उन्हें न थी । कुछ लोग चाहे चिल्ल-पौं मचाते और विरोध जाहिर

करते, लेकिन नीति पर वे कोई असर नही डाल सकते थे। सिर्फ कभी-कभी उस मूलभूत नीति को व्यक्त करने के तरीके मे वे जरूर फर्क पैदा कर देते थे।

हिटलर के आने से स्थिति मे एक पेचीदा उलझन होगयी। यह उलझन दो प्रकार से उठ खडी हुई। पहले तो यह कि इस यूरोप मे शक्ति-सन्तुलन के बिगड जाने का खतरा होगया, दूसरे ब्रिटिश जनता आमतौर पर हिटलर और उसके तौर तरीकों के खिलाफ थी। लेकिन विदेशी-विभाग अपनी पुरानी नीति पर चलता रहा। हिटलर का खतरा तो दूर का था लेकिन सोवियट की तरफ से सामाजिक और राजनैतिक खतरा ज्यादा निकटवर्ती और खतरनाक समझा गया था। जनमत को समय-समय पर बहादुरीभरी तकरीरो मे तसल्ली दे दी जाती थी, लेकिन पुरानी नीति चलती रही। सोवियट के खिलाफ हिटलर को तैयार करना ही अब इस नीति का मकसद था। इसलिए हिटलर को हर तरीके से बढावा दिया गया और दरअसल ब्रिटिश सरकार की सीधी छत्रछाया मे नात्सी जर्मनी की ताकत बढ गयी। यह बढावा इस हदतक पहुँचा कि फ्रास को अलग करके डराया गया। इग्लैण्ड और जर्मनी की जल-सन्धि मे, जो वार्साई की सधि और राष्ट्र-सघ की अवहेलना करके की गयी थी और जिसका फ्रासीसी सरकार को पता नही था, फ्रास इतना परेशान हुआ कि वह मुसोलिनी के बाहुपाश मे जा फँसा और अभिवचन दे दिया कि अबीसीनिया पर हमला होगा तो वह दखल नही देगा। मुसोलिनी जानता था कि अगर फ्रास ने दखल नही दिया तो इग्लैण्ड भी चुप रहेगा। अब मैदान उसके लिए खुला था। इस तरह अबीसीनिया के ऊपर होनेवाला हमला इग्लैण्ड की नीति का ही सीधा परिणाम था।

ब्रिटेन ने इसको सब-का-सब तो पसन्द नही किया, क्योंकि इसमें इग्लैण्ड के कुछ साम्राज्यवादी हित आते थे। वे थे—नील नदी की उत्तरी जलधाराएँ, स्वेज नहर और भूमध्यसागर। इस तरह इग्लैण्ड के इन साम्राज्यवादी हितों और वैदेशिक विभाग की तत्कालीन नीति मे टक्कर होने लगी। नीति ही कायम रही, क्योंकि ब्रिटिश सरकार इटली की फासिस्ट सरकार को मिटाये जाने के बिलकुल खिलाफ थी। उसकी नीति का मकसद तो था फासिज्म और नात्सीवाद की रक्षा करके उनके जरिये साम्यवाद से लडना। सामाजिक खतरा राजनैतिक खतरे से बढकर समझा गया। लेकिन इग्लैण्ड की जनता मुसोलिनी के अबीसीनिया के हमले के सख्त खिलाफ थी और उसे तसल्ली देने को कुछ-न-कुछ करना पडा। राष्ट्र-सघ कुछ कम हानिवाले अधिकारो पर राजी होगया और तत्कालीन वैदेशिक मत्री सर सेम्युअल होर ने सघ के सिद्धान्तो की व्याख्या करते हुए एक भाषण दिया, जिसमे सामूहिक सुरक्षितता की कसम खायी गयी। इस तकरीर की उचित दाद दीगयी। इग्लैण्ड ने इसपर अपने आपको बडा पुण्यवान् और मन-ही-मन खुश समझा—जैसा कि वह हमेशा ही किया करता है जबकि उसके साम्राज्यवादी हितों का मेल ऊँचे दर्जे की नीतिमत्ता से बैठा दिया जाता है। वही सर सेम्युअल साहब बहुत जल्दी अपनी जेनेवा की तकरीर बिल्कुल भूल गये और उन्होने अबीसीनिया की बाबत मो० लेवेल के साथ एक गुप्त समझौता कर लिया। इसका भेद खुल गया और ब्रिटिश जनता को इससे धक्का पहुँचा क्योकि इस नीति-परिवर्तन के मुआफिक बनाने के लिए उसे मौका नही दिया गया था। सर सेम्युअल होर को विदा होना पडा। मि० ईडन मच पर आये।

लेकिन नीति मे कोई बडी तब्दीली नही हुई और इग्लैण्ड की

जनता की नाराजगी और उत्तेजना के बावजूद वैदेशिक-विभाग चुपचाप अपनी पूर्वनिश्चित नीति पर चलता ही रहा। राष्ट्रपति रूजवेल्ट का यह सुझाव कि तेल-सनदो को जारी किया जाये, जिससे इटली की शक्ति कम होगयी होती, नही माना गया बल्कि इसके बजाय अंग्रेजो की ऐंग्लो-ईरानियन तेल-कम्पनी इटली को तेल भेजने मे रात-दिन लगी रही। अबीसीनिया पर आखिर बलात्कार हो ही गया।

इसी बीच हिटलर परिस्थिति का फायदा उठाकर आगे बढा और उसने अपनी स्थिति को मजबूत कर लिया। फ्रास बहुत ज्यादा भयभीत होने लगा, मगर इग्लैण्ड नात्सी जर्मनी के हर-एक कदम पर मुस्कराता ही रहा। हाँ, कभी-कभी नाराजगी भी जाहिर कर देता था।

इसके बाद आया स्पेन-विद्रोह, जिसका इटली और जर्मनी ने उनकी मदद से बडी होशियारी से सचालन किया था। यह कसौटी कडी थी। यहाँ एक जनतन्त्र के आधार पर निर्वाचित सरकार पर एक फौजी गिरोह ने तनख्वाहदारो और विदेशी ताकतो से मिलकर हमला कर दिया था। जैसा कि हाल ही मे मि० लॉयड जार्ज ने पूछा है, अगर रूस स्पेन मे विद्रोह की आग भडका देता तो मि० चेम्बरलेन क्या करते ? क्या वह इसपर मुस्करा देते और स्टालिन के साथ कोई समझौता कर लेते ?

एक मुश्किल और भी थी। इग्लैण्ड के साम्राज्यवादी हितो का सीधा सम्बन्ध यहाँ था और अगर स्पेन दुश्मन के हाथो मे आ जाता, तो 'सल्तनत' के लिए खतरा था। तब यूरप का शक्ति-सतुलन बिलकुल गडबड हो जाता, नात्सियों का तानाशाही दल सबपर हावी हो जाता, फ्रास चारों ओर से घिर जाता, भूमध्यसागर पर शत्रुराष्ट्रो का कब्जा हो जाता, जिब्राल्टर मुकाबला न कर पाता और बडी-बडी व्यापारिक राहें भारी खतरे में पड जाती ? फिर भी चूँकि वैदेशिक विभाग का

प्रजातन्त्र और समाज की उन्नति का विरोध साम्राज्य के लालच से भी कही बढा-चढा था, इसलिए उसकी पुरानी नीति कायम रही। हस्तक्षेप न करने की घोषणा की गयी जिसका मतलब यह हुआ कि इटली और जर्मनी दस्तन्दाजी करे और स्पेन के प्रजातन्त्रीय शासन का गला घोंट दें।

अग्रेजो के जहाज भूमध्यसागर मे डुबो दिये गये और इग्लैण्ड मे चिल्लाहट मच गयी। आखिर वैदेशिक विभाग परेशान हुआ पर सोचने लगा कि शायद यह निकट का खतरा सामाजिक खतरे से बडा होगा। थोडी देर तक उसने दृढता दिखायी और न्योन मे मि० ईडन ने घोषणा की कि इग्लैण्ड इसे बर्दाश्त नही करेगा और अगर यह लूट जारी रही तो वह कार्रवाई करेगा। यह पहला ही मौका था जब कि इग्लैण्ड ने नात्सी और फासिस्ट राष्ट्रो को अपने दाँत दिखाये और स्थिति एकदम सुधर गयी।

मि० ईडन और वैदेशिक विभाग इस नतीजे पर पहुँचे थे कि यह तब्दीली होना जरूरी है और थोडे से अर्से तक उन्होने यह रास्ता अख्तियार किया। लेकिन जल्दी ही मि० नेविल चेम्बरलेन ने कुछ और ही सोचा वह हेर हिटलर और सिन्योर मुसोलिनी की लल्लो-चप्पो करने के लिए पूरी तौर पर तुले हुए थे, और इस नये प्रजातन्त्रीय स्पेन से उसे नफरत थी और इससे भी ज्यादा नफरत उसे रूसी सोवियट-सघ से थी। सो ईडन गये और उनकी जगह लार्ड हैलीफैक्स आये। अन्तरग सभा, जिसमें प्रधान मन्त्री, लार्ड हैलीफैक्स, सर जॉन साइमन और सर सेम्युअल होर थे, इनके विरोध मे कोई आवाज नही उठा सकती थी जिससे इन्हें तकलीफ हो। अब वे अपनी 'सन्तुष्ट करने की नीति' पर बेरोक-टोक चल सकते थे, फिर चाहे उसका अजाम इग्लैण्ड और उसकी सल्तनत के लिए कुछ भी क्यो न हो। इस दुविधा से उन्हें कोई परेशानी नही हुई क्योंकि सबसे जरूरी काम हिटलर अथवा मुसोलिनी को परेशान न करना था।

सिन्योर मुसोलिनी चूंकि स्पेन के प्रजातन्त्र को कुचलने पर उतारू था इसलिए जितनी जल्दी यह हो जाता उतना ही अच्छा था। ब्रिटिश सरकार ने झटपट सिन्योर मुसोलिनी के साथ एक समझौता कर लिया और फ्रांस को अपने स्पेन से मिले हुए सीमांत प्रदेश को बन्द करने पर मजबूर किया। उन्हें बड़ी बेसब्री और उत्सुकता रही कि कब स्पेनिश प्रजातन्त्र खत्म हो, लेकिन उसने तो मिटने से इनकार कर दिया। इससे वे और भी चिढ़े। दरअसल, उसमें तो नयी ताकत आ गयी मालूम पड़ती थी। इंग्लैण्ड-इटली के समझौते के कारण मि० चेम्बरलेन को इसपर हंसी आती थी। और उनको स्पेन के प्रजातन्त्र का खात्मा करने के लिए सब-कुछ करके अपने आपको सही साबित करने में ही अपना सम्मान दीख पड़ा। अगर इंग्लैण्ड के जहाजों को तारपीडो या बमबारी से नष्ट कर दिया जाता था, तो वह इसे भी यह कहकर उचित ही ठहराते थे कि यह तो स्पेन के प्रजातन्त्र की मदद ले जाने का खतरा उठाने का कुदरती नतीजा ही था। स्पेन से सहानुभूति रखने के मामले पर दुनिया में मतभेद था। कट्टर राजभक्ति की भावनाएं पैदा की गयीं। मि० चेम्बरलेन की राजभक्ति किधर को थी इसमें अब शक नहीं रह गया।

सन्तुष्ट करने की नीति चलती रही। झगड़े का केन्द्र हटकर मध्य यूरोप में आ गया था। हिटलर ने आस्ट्रिया को धमकी दी। मि० चेम्बरलेन ने खुले आम कह दिया—मैं आस्ट्रिया के मामले में दखल नहीं दूंगा। यह हिटलर को न्योता देना था और वह फौरन स्थिति का लाभ उठाने से न चूका और घुस आया।

चेको-स्लोवाकिया को धमकी दी गयी। वैदेशिक विभाग ने, शायद मि० चेम्बरलेन को भूलकर, हुक्म दिया कि अगर जर्मनी चेको-स्लोवाकिया पर हमला करे तो ब्रिटिश राजदूत को बर्लिन से हटा लिया जाये। चेको

ने सेनाओं को रातोरात तैयार किया और मार्च १९३८ का सकट टल गया। हिटलर अपनी योजनाओ पर यह रोक लगने पर आगबबूला हुआ। इसी तरह दिखाने को मि० चेम्बरलेन और लार्ड हैलीफैक्स भी हुए। वैदेशिक विभाग ने टुकडा खुद अपने दाँतो मे दबा लिया और आराम से चलती हुई सन्तुष्ट करने की नीति मे गडबड कर दी। यह बर्दाश्त नही किया जा सका और वैदेशिक विभाग के स्थायी अध्यक्ष सर राबर्ट वेन्सिटार्ट को हटाकर उन्हे किसी मामूली ओहदे पर बदल दिया गया। उनकी जगह सर आर्नाल्ड विल्सन को मिली।

सर आर्नाल्ड सन्तुष्ट करने की नीति को प्रोत्साहन देने के लिए उपयुक्त व्यक्ति थे। वह नात्सियो के समर्थक थे और सोवियट के घोर विरोधी। नात्सी जर्मनी की ओर से जो महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली दल इग्लैण्ड मे काम कर रहा था, उससे उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। वहाँ क्लाइवडेन के दल के और 'टाइम्स' के मालिक और सम्पादक और फ्रैको के समर्थक उत्साही व्यक्ति थे। तादाद मे कम होते हुए भी वे सरकार पर हावी थे और मि० नेविल चेम्बरलेन उनके खास लाडले थे। इग्लैण्ड की वैदेशिक नीति पर अब फिफ्थ कॉलम का पूरा कब्जा था।

कदम-ब-कदम मध्ययूरप और स्पेन मे यह नीति चल पडी। चेको की कमर तोडने और नात्सियो को बढावा देने के लिए लार्ड रन्सिमैन भेजे गये। म्यूनिक आया और सन्तुष्ट करने की नीति की पूरी जीत हो गयी। शान्ति-स्थापना करानेवाले वीर मि० चेम्बरलेन ही थे। चेको-स्लोवाकिया के लाखो घरो मे घोर दुःख छाया हुआ था और बागियो से जेले भरी हुई थी। इन बहादुर लोगो से उन लोगो ने दगा की जिन्हे उन्होने अपना दोस्त समझा था। दुनिया इग्लैण्ड और फ्रास मे

नफरत करने लगी। पश्चिम मे हिटलर को सन्तुष्ट करने और उसे सोवियट पर हमला करने को मजबूर करने की पुरानी नीति सन्तोष-जनक रूप से आगे बढ रही थी लेकिन उसकी उन्हे क्या परवा थी ? सोवियट की अवहेलना की गयी और उसे अलग कर दिया गया। इग्लैण्ड हिटलर का सबसे सच्चा दोस्त बन गया और अगर सब काम ठीक चलता रहा तो कुछ अशो मे फासिज्म, प्रजातन्त्र के बुरके मे ही सही, इग्लैण्ड मे भी आ धमकेगा।

लेकिन सब काम ठीक नही चला, हालाकि स्पेन, वह प्रजातन्त्रीय स्पेन जिसने ससार की आजादी की लडाई का बोझ अपने कधो पर उठा लिया था, इग्लैण्ड और फ्रास का छुरा खाकर मरा पडा था। मि० चेम्बरलेन और उनकी सरकार को बडी कीमत चुकानी पडी थी, बडे-बडे खतरे मोल लेने पडे थे और वह घडी आ पहुँची थी जबकि सन्तुष्ट करने की नीति पर डटे रहने का इनाम उन्हे मिलता। वह इनाम था जर्मनी का पच्छिम की तरफ से सन्तुष्ट होकर पूरब को मुडना और रूस के साथ उलझना। लेकिन यह इनाम हटकर दूर चला गया। यूरोप के पूरब और दक्खिन-पूरब मे अब भी ऐसे रसभरे लुकमे मौजूद थे, जिन्हे हिटलर ले सकता था, लेकिन फिर क्या ? अचानक यह साफ हो गया कि जर्मनी का सोवियट-सघ से टक्कर लेने का कोई इरादा नही है। सोवियट के सैनिक तन्त्र के लिए जर्मनी के दिल मे बहुत ज्यादा इज्जत थी और वह सोवियट के विस्तृत प्रदेशो मे उलझ जाना नही चाहता था। ज्यादा आसान यह था कि उन रसीले लुकमो को हडप करके पीठ-पीछे पूर्व का दरवाजा बन्द कर किया जाये और पच्छिम की ओर मुंह फेर लिया जाये।

यह योजना चौकानेवाली थी। सन्तुष्ट करने की नीति की सारी-की-

सारी इमारत डगमगा रही थी। उसकी कीमत न सिर्फ इस तरह चुकानी पडी कि लाखो का खून हुआ और मुसीबते आयी, प्रजातन्त्र की बलि चढ गयी और आदर-प्रतिष्ठा धूल मे मिल गयी, बल्कि युद्ध के महत्व-पूर्ण नाके शक्तिशाली दुश्मनों के कब्जे में चले गये। और बदले मे कुछ भी न मिला। आज इग्लैण्ड और फ्रास के सत्ताधारी लोग बडे रज के साथ चैको-स्लोवाकिया की नष्ट हुई फौजो के साथ स्कोडा के बडे-बडे कारखानो का खयाल करते होगे कि जो उनका काम करते, मगर अब दुश्मन के लिए लडाई का सामान तैयार करेगे। जो कुछ उन्होने स्पेन मे किया उसपर वे बहुत-बहुत पछता रहे होगे।

चेक राष्ट्र का आखिरकार खात्मा हो जाना, मैमेल का जर्मनी में मिल जाना और अलबानिया पर हमला होना—ये घटनाएँ तेजी से एक के बाद एक घटित हुई। इग्लैण्ड मे खतरा बढता ही जा रहा था और टोरी दलवाले तक इसपर गुर्राने लगे और मनाने की नीति के खिलाफ विद्रोह करने की धमकी देने लगे। इस बात की बहुत चर्चा होने लगी कि प्रजातन्त्र खतरे में है—वही प्रजातन्त्र जिसका इन्ही लोगो ने दो जगह (चैको-स्लोवाकिया और स्पेन में) खात्मा कर दिया था। टोरी दलवालो मे अपने प्रजातन्त्र या आजादी के प्रेम के कारण हलचल हुई हो ऐसी बात नही, बल्कि इस डर से हुई कि उनकी सल्तनत छिन न जाये और शायद उन्हीके देश की आजादी हाथ से न चली जाये। वही पुरानी दुविधा अब और जोर के साथ उनके सामने खडी थी कि हम फासिस्टो को रोककर और उन्हे बर्बाद करके अपने साम्राज्य की रक्षा करे या थोडी और रियायते देकर, थोडे और नरम होकर लडाई को हर हालत मे टालने और मनाने की नीति अख्तियार करके अपनी समाज-व्यवस्था की हिफाजत करते रहे। रियायते तो अबतक दूसरे लोगो के

माल मे से दी जाती रही थी, लकिन अब तो ऐसा वक्त आ गया था कि अपने जिस्म मे से गोश्त काट-काटकर देना पडे। म्यूनिक मे और उसके बाद जो कुछ हुआ उसमे इग्लैण्ड और फ्रास बुरी तरह कमजोर पड गये थे और आगे भी सन्तुप्ट करना जारी रहा तो वे इतने कमजोर हो जायेगे कि उन्हे टक्कर लेना भी मुश्किल हो जायेगा। हाँ, अकेला रूस ऐसा राष्ट्र था जो उनको बचा सकता था, मगर वह उदास और नाराज था और किसी फदे मे नही पडना चाहता था।

यह पास का खतरा इतना बडा था कि उसे कैसे दरगुजर किया जाता? और समाज-व्यवस्था बिगडने का दूसरा खतरा इससे कम महत्त्व का समझा गया। इस बात की पुकार इग्लैण्ड मे जोरो पर थी कि सन्तुप्ट करने की नीति छोड देनी चाहिए और सोवियट रूस के साथ मिलकर नात्सी जर्मनी और फासिस्ट इटली के खिलाफ एक मजबूत मोर्चा लेना चाहिए। चेम्बरलेन साहब चतुर राजनीतिज्ञ ठहरे, उन्होने इस हवा को देखकर रुख बदला और नीति-परिवर्तन का ऐलान कर दिया। हर जगह खुशियाँ मनायी जाने लगी और ऐसा जान पडा कि एक भयकर परेशानी मिट गयी।

लेकिन क्या चेम्बरलेन साहब ने नीति बदल दी थी? उन्होने पोलैण्ड और रूमानिया को ऐसे आश्वासन दे दिये थे कि जो बिना सोवियट की सहायता के सफलतापूर्वक पूरे नही हो सकते थे। इसलिए दो मे से एक रास्ता था—या तो सोवियट के पास जाये और उनसे समझौता करे, या फिर जब मौका आये, तब आश्वासन को भूल जायें और विश्वासघात करे।

क्या चेम्बरलेन साहब बदल गये थे? यह होने-जैसा न था। वह एक कठोर आदमी है और विदेशी नीति के सम्बन्ध मे उनके विचार

अटल है और मध्य यूरोप और स्पेन मे जो कुछ हुआ उसके बावजूद वह अपनी उस नीति से नही डिगे हैं। रूस और उसके तमाम सिद्धान्त उन्हे पसन्द नही थे। वे अपनी इस भावना के वश मे थे। क्या वह अपनी भावनाओ और धारणाओ को दूर करके अपनी नीति की हार मजूर करते? यह भी बहुत अनहोना था। और उनके पिछले न निभाये गये आश्वासनो और बार-बार बदल जानेवाली उनकी राज-नीतिक ईमानदारी मे किसी को भरोसा नही रह गया था। उन्होने अपनी नीति मे परिवर्तन करने का ऐलान कर भी दिया था, तो कितने लोग उनका विश्वास करते?

लेकिन उनकी बातो से ज्यादा तो उनकी कारगुजारियाँ ज़ोर-ज़ोर से बोल रही थी और साफ बता रही थी कि वह अब भी पहले की तरह सन्तुष्ट करने की नीति पर कायम हे। अलबानिया की घटना के बाद भी वह इग्लैण्ड व इटली की सन्धि को निभाते रहे। स्पेन का जो भयानक और दुखद अन्त हुआ और उसके शरणार्थी लोग जिसतरह भूखो मरे वह सब होते हुए भी उनके प्रतिनिधि ने मैड्रिड में होनेवाले फ्रैंको के विजयोत्सव में हाजिरी दी थी। सर नेविल हेन्डरसन, जो सन्तुष्ट करने की नीति के नात्सीभक्त समर्थक थे, वापस अपनी राजदूत की जगह बर्लिन भेज दिये गये, वहाँ उनकी वॉन रिबनट्राप ने तौहीन की, क्योकि उसे उनसे मिलने की फुरसत तक नही थी। लन्दन के 'टाइम्स' ने अपने शरारत भरे ढग से यह सुझाया कि डाज़िग कोई ऐसी जगह नही है कि जिसके लिए लडाई लडी जाये, इसलिए जैसा कि पिछले साल सुडेटनलैण्ड मे हुआ, जर्मनी को जाकर उसपर कब्जा करना चाहिए। 'टाइम्स' इस बात के लिए बदनाम है कि ऐसे मामलों मे वह मि० चेम्बरलेन और लार्ड हैलीफेक्स का प्रतिनिधित्व करता है। कामन-

सभा मे चेम्बरलेन साहब इस बात का आश्वासन देने से इनकार कर देते है कि वह बोहेमिया और मोरेविया की विजय को स्वीकार नही करेगे। अखबारो मे बडी सूझवाली खबरे छपती है कि दूसरा म्यूनिक होनेवाला है। फिफ्थ कालम फिर से जोरो से काम कर रहा है और खुश करने की नीति का बोलबाला है।

इसी बीच खतरे की भावना का फायदा उठाते हुए मि० चेम्बरलेन ने सेना की अनिवार्य भर्ती शुरू कर दी है। इसका असली मतलब क्या है? एक अग्रेज सेनापति ने हाल मे ही यह कहा था कि इग्लैण्ड के विरोधी लोगो को दबाने के लिए ऐसी फौजी भर्ती बहुत फायदेमन्द है। लडाई की तैयारियो के बर्के मे चेम्बरलेन साहब इग्लैण्ड मे अन्दरूनी फासिज्म के रास्ते पर जा रहे है और मुमकिन है कि उनको कामयाबी मिल जाये। अखबारो पर सेसर बैठ जायेगा, उनपर कडी देखरेख हो जायेगी और सार्वजनिक जीवन पर पाबन्दियाँ लगादी जायेगी। इग्लैण्ड मे फासिज्म के समर्थक लोग लडाई मे हार जाना तक मजूर कर लेगे, मगर 'सोवियट सघ' और दूसरे प्रगतिशील राष्ट्रो से मिलना पसन्द न करेगे। यह नीति है जिसपर चलने पर चेम्बरलेन साहब उतारू है और दरअसल चल रहे है।

लेकिन इग्लैण्ड मे एक ऐसा शक्तिशाली दल है और उसमे टोरी पार्टी के कुछ नेता शामिल है जो इस नीति के खिलाफ है और नात्सी जर्मनी से लडने के लिए सोवियट से मित्रता कर लेना चाहते है। मि० चेम्बरलेन को उन्हे भी तसल्ली देनी है, और इस मकसद के लिए वह सोवियट से बातचीत चलाते है। उन्होने रूस के आगे जो सुझाव रखे वे बडी खूबी के और किसी की पकड मे न आने-जैसे थे। रूस ने इनकार कर दिया और सारे हमलो के खिलाफ एक वास्तविक सधि का प्रस्ताव किया। अगर

मि० चेम्बरलेन आक्रमणो को रोकने के लिए सचमुच चिन्तित होते तो ऐसी सधि को मजूर करने मे उनको कोई दिक्कत नही होनी चाहिए थी लेकिन उन्हे ऐसी कोई चिन्ता थी ही नही। उनकी तो सारी ताकत इस मकसद के लिए लग रही थी कि फासिज्म के लिए दुनिया निष्कंटक हो जाये और इग्लैण्ड फासिस्ट देशो के साथ हो जाये।

यह हो सकता है कि घटनाओ और उनके ही लोगों के दबाव से मजबूर होकर वह सोवियट के साथ शर्तें करे, लेकिन इतने पर भी उनका विश्वास करे कौन? वह अपनी सतुष्ट करने की परमप्रिय नीति को नहीं छोडेगे और पहले की तरह अपने दोस्तों और साथियो को धोका देंगे। भले ही युद्ध छिड़ जाये और मि० चेम्बरलेन के नेतृत्व मे इग्लैण्ड को उसमे पडना भी पडे, तो भी इस बात का निश्चय नही है कि सन्तुष्ट करने की नीति का अन्त हो जायेगा। उस युद्ध मे म्यूनिक भी आ सकता है। कुछेक लायक दूरदर्शियो का मत है कि बहुत ज्यादा मुमकिन है कि कुछ हफ्तो के नरसहार के बाद जब कि लोगो की नसें ढीली पड जाये, मि० चेम्बरलेन से कोई फायदे की पृथक् सधि करने के लिए कहा जाये और वह शायद मजूर कर ले जिससे देश में और विदेश में फासिज्म सुरक्षित रहे। लडाई से अन्दरूनी फासिज्म के साज-सामान जमाने मे मदद मिलेगी।

आज फ्रास मे फौजी डिक्टेटरशाही (अधिनायकत्व) का राज है और चेम्बर ऑव डिप्टीज की कोई ज्यादा कीमत नही है। जनतन्त्रात्मक आजादी की चद बाते बनी रहने दीगयी है, लेकिन वे भी अधिकारियो की महरबानी पर है। वह फ्रास, जिसने एक दिन स्पेन के प्रजातन्त्र को अस्त्र-शस्त्र तो क्या खाना तक देने से इनकार कर दिया था, आज फ्रेको के पास हथियार-पर-हथियार भेज रहा है। वे सब-के-सब हथियार जिन्हे

प्रजातन्त्र की फौजें फ्रांस में छोड गयी थी, फ्रैंको को दिये जा रहे हैं। वह स्पेन का सोना भी, जो पेरिस में था और प्रजातन्त्र को नही दिया गया था, फ्रैंको को सौंपा जा रहा है और फ्रैंको का ताल्लुक रोम-बर्लिन धुरी से है। क्या यह सन्तुष्ट करने की नीति का परित्याग है? क्या जनतन्त्रात्मक ढग पर शान्ति का मोर्चा तैयार करने का यही तरीका है?

यह बात हमारे दिमाग में साफ होजाये। सन्तुष्ट करने की वही पुरानी नीति जारी है और वही पुरानी धोखेबाजियाँ अब भी चलती रहेंगी क्योंकि इग्लैण्ड और फ्रांस पर हुकूमत करनेवालो के दिमाग मे दूसरा कोई डर इतना ज्यादा नही है जितना सामाजिक परिवर्तन होने का डर है। जबतक चेम्बरलेन साहब के हाथ मे ताकत है, तबतक कोई खास तब्दीली होनेवाली नही है और घटनाएँ उनको तब्दीलियाँ करने को मजबूर करे तो भी वह अपने पुराने तरीके से ही पीछे लगे रहेंगे और जब मौका मिलेगा तब उनपर चलने लगेंगे।

लेकिन इग्लैण्ड के शासकवर्ग के दिमागो मे भी यह दुविधा है कि हम फासिस्ट हमलो को रोककर और फासिज्म को बर्बाद करके अपने साम्राज्य की रक्षा करे या थोडी और रियायतें दे-दिलाकर थोडे और नरम हो-हाकर लडाई को हर तरह से टालने और सन्तुष्ट करने की नीति अख्तियार करके अपनी समाज-व्यवस्था की हिफाजत करले। इसके जवाब मे मि० चेम्बरलेन को कोई शक नही है। वह तो समाज-व्यवस्था और फासिज्म पर अडे हुए है।

हम हिन्दुस्तानियो के लिए ऐसी कोई दुविधा नही है, क्योंकि हम उस सल्तनत और उस समाज-व्यवस्था दोनो का अन्त चाहते है। और इस-लिए, चाहे लडाई अभी शुरू हो चाहे देर मे, हम उसमे हिस्सा नही ले

सकते, बशर्ते कि हमको स्वतन्त्र राष्ट्र माना जाये और स्वतन्त्रतापूर्वक वास्तविक जनसत्ता और शान्ति चाहने का अधिकारी समझ लिया जाये। मि० चेम्बरलेन के नेतृत्व या अंग्रेजी साम्राज्यवाद के चंगुल में रहकर न तो जनसत्ता मिल सकती है, न शान्ति। वह रास्ता तो फासिज्म और जनतन्त्र के साथ विश्वासघात करने का है। वह रास्ता तो भारत के अधिकाधिक शोषण और उसे अपमानित करने का ही है।

यह भाग्य का एक व्यंग है कि फासिज्म में विश्वास रखते हुए भी और जनतन्त्र का शायद किसी भी व्यक्ति से अधिक नुकसान करनेवाले होते हुए भी आज मि० नेविल चेम्बरलेन अंग्रेजी प्रजातन्त्र के नेता बनते है, मो० दलैदिये फ्रांस के डिक्टेटर हैं और लार्ड हैलीफैक्स और नात्सी-भक्त मो० बोनेट इग्लैण्ड और फ्रांस के वैदेशिक मन्त्री है। क्या इन्ही लोगो से जनतन्त्रवाद प्रेरणा पायेगा या मोक्ष की आशा करेगा? रूज-वल्ट जैसी महान् जनतन्त्रात्मक मूर्ति के आगे ये सब लोग कितने नगण्य लगते है!

लेकिन जनतन्त्र के इन ढोंगी मसीहाओ के भुलावे में हम न आवे। हमारे लिए तो जनसत्ता का अर्थ है—हमारी जनता की आजादी। यही हमारी कड़ी कसौटी है।

३१ मई, १९३९

: ६ :

युद्ध और शान्ति के ध्येय

१

कांग्रेस की कार्य-समिति ने जो वक्तव्य दिया है, उससे जनता का ध्यान युद्ध-स्थिति के कुछ पहलुओं की तरफ गया है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उन्हें दरगुजर किया गया था। एक तरफ तो यह मनोवृत्ति थी कि बिना किसी विचार, ध्येय या उद्देश्य के हिन्दुस्तान के लड़ाई में कूद पड़ने की बात की जाती थी और दूसरी तरफ कहा जाता था कि लड़ाई का बिना सोचे-समझे प्रतिरोध होना चाहिए। ये दोनों रुख निषेधात्मक रुख थे, और इनमें न तो मौजूदा स्थिति की असलियत पर और न दुनिया और हिन्दुस्तान में हो चुके बहुत-से रद्दोबदल पर ध्यान दिया गया था। दोनों में से एक भी रुख रचनात्मक राजनीतिज्ञता का नहीं था। अपने इस रचनात्मक मार्ग-दर्शन से कार्यसमिति ने राष्ट्र की महान् सेवा की है। वह सेवा हिन्दुस्तान की ही नहीं है बल्कि उन सबकी भी है जो स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र और नयी व्यवस्था की बात सोचते हैं और ऐसे लोगों की तादाद आज दुनिया में बहुत ज्यादा है। परिणामस्वरूप कार्य-समिति ने दुनियाभर की प्रगतिशील शक्तियों का नेतृत्व किया है। हम नहीं जानते कि हिन्दुस्तान की यह आवाज लड़ाई के और सम्पर्क बनाये रखने की कठिनाई के इन दिनों में कितनी दूर पहुँचेगी और हिन्दुस्तान के बाहर कितने लोग उसे सुनेंगे? लेकिन हमें यकीन है कि जिनतक यह आवाज पहुँचेगी वे इसका स्वागत ही करेंगे

और इस बात का समर्थन करेंगे कि युद्ध और शान्ति के ध्येयो की स्पष्ट व्याख्या हो जानी चाहिए।

कार्यसमिति के प्रस्ताव मे जरूरी तौर कुछ उसूलो पर विचार किया गया है। मगर इन सिद्धान्तो को स्थूल रूप मे देना होगा और हमको यह मुनासिब मालूम होता है कि इस मामले पर सार्वजनिक विचार होना चाहिए। इस विकट सकट मे हममे से कोई भी विरोध द्वारा या कोरे नारे लगाकर बच नही सकता, चाहे उनकी आवाज़ कितनी ही भली क्यो न लगती हो। अगर उन नारो का असलियत से कोई सम्बन्ध है तो वे वर्तमान परिस्थिति मे अमल मे आने लायक होने चाहिएँ। उसी अमल के लिए हमें अपनी ओर मुखातिब होना चाहिए। हो सकता है हमारी कोशिशे बेकार रहे और वह अमल आज न हो सके। भूतकाल की विरासत और इस ज़माने की जोरदार माँग से हम सघर्ष और उसके तमाम बदकिस्मत नतीजो की ओर बढ़ते जा रहे है। यह हिन्दुस्तान और दुनिया के लिए दुर्भाग्य की बात होगी, खासतौर से इस वक्त जबकि दुनिया भर के लोगों के दमन और अत्याचार और शोषण से छुटकारा दिलाने के लिए निडर राजनेतृत्व की माँग है। रास्ता मुश्किल है। फिर भी रास्ता तो है ही भले ही रुकावटे बहुत-सी है और सब-की-सब हमारे हाथो पैदा नही हुई है पर एक दरवाजा भी है जिसमे होकर हम भविष्य के बाग मे जा सकते है, लेकिन उस दरवाज़े पर बेवकूफी का, पुराने ज़माने के विशेषाधिकारो का और स्थापित स्वार्थो का पहरा लग रहा है।

युद्ध के और शान्ति के उद्देश्यों पर विचार करने से पहले हम यह स्पष्ट कर दे कि इस समस्या पर हम किस तरह से विचार करेंगे? हिन्दुस्तान के लिए आज लडाई एक दूर की बात है, वह काफी भडकानेवाली चीज़

है लेकिन हममे कुछ अलग है। हमपर उसका असर पडता ही नही। यूरप मे और दूसरी जगह ऐसा नही है क्योकि वहा तो वह लडाई असख्य लोगो के लिए एक लगातार दु:ख और मुसीबत के रूप मे है, सर पर मँडरानेवाला खतरा है, मौत है, बरबादी है और दिल को तोड डालनेवाला तनाव है। यूरप मे एक भी घर ऐसा नही है जो इस दिल को दहलानेवाली घबराहट और पस्तहिम्मती से बचा हुआ हो, क्योकि जिस दुनिया को वे जानते है, उसी का अन्त आगया है और उनपर खौफ छा गया है—ऐसा खौफ कि जिसकी उनके, उनके प्रियजनो और उस सबके लिए कि जिसका मूल्य उनके लिए बहुत रहा है, कोई हद नही है। बहादुर आदमी और औरते उन तात्त्विक शक्तियो के हाथ के मोहरे बने हुए है जिन्हे वे काबू मे नही रख सकते। वे इस मसले का दिलेरी के साथ मुकाबिला करते है, लेकिन जिस एकमात्र आशा मे उनके मन थोडी देर के लिए चमक उठते है, वह है दुनिया के एक बेहतरीन भविष्य की आशा, ताकि उनके त्याग और बलिदान बेकार न चले जाये।

हम इन जुदा-जुदा मुल्को के रहनेवालो के बारे मे, चाहे वह पोलैंड हो या फ्रास हो या इग्लैण्ड हो या रूस हो या जर्मनी हो, इज्जत और पूरी हमदर्दी के साथ खयाल करे, उनकी मुसीबत का मजाक उडाने की कल्पना न करे, या बे-सोचे-समझे ऐसा कुछ न कहे जिससे उन लोगो को चोट लगे, जिन्हे वह भारी बोझ उठाना है। इग्लैण्ड से हमारा पुराना झगडा चला आता है, हालाँकि वहाँ के लोगो से नही। हमे आजादी मिल जाये, तो उसके साथ वह झगडा भी खत्म हो जायेगा। तभी हम इग्लैण्ड के साथ बराबरी की शर्त पर दोस्ती कर सकते है। लेकिन दूसरे देशो की तरह अग्रेजो के साथ भी उनकी मौजूदा मुसीबत मे

हमारी सहानुभूति और सद्भावना ही है। हम यह भी जानते हैं कि उनकी साम्राज्यवादी सरकार ने चाहे कुछ भी किया हो, या आगे करे, अंग्रेजों मे आज भी आजादी और प्रजातन्त्र के लिए बडी हमदर्दी है। इन्ही आदर्शो के लिए वे लडते है। यही आदर्श हमारे भी हैं; हालाँकि हमे डर है कि सरकारे अपने शब्दो और कथनो को झूठा कर सकती है। दुनिया के बहुत से हिस्सो मे, खासकर हिन्दुस्तान में, अब भी साम्राज्यवाद का बोलबाला है। फिर भी १९३९ कोई १९१४ नही हैं। इन पच्चीस बरसो मे दुनिया मे और हिन्दुस्तान मे बडी-बडी तब्दीलियाँ हो चुकी हैं—तब्दीलियाँ जिन्होने बाहरी ढाँचे को उतना ही पलटा है जितना कि लोगो के दिमागो को पलटा है और उनमे इच्छा पैदा कर दी है कि इस बाहरी ढाँचे को बदलकर उस व्यवस्था का खात्मा कर दे जिसकी बुनियाद हिंसा और सघर्ष पर है।

हिन्दुस्तान मे भी सन् १४ मे हम जैसे थे, उससे अब बहुत बदल चुके है। हममे ताकत आ गयी है, और आ गयी है राजनीतिक सजगता और मिलकर काम करने की ताकत। अपनी बहुत-सी मुश्किलो और समस्याओं के बावजूद आज हमारा राष्ट्र कमजोर नही है। हम जो कहते है उसकी अन्तर्राष्ट्रीय मामलो तक मे कुछ हदतक कीमत है। अगर हम आजाद होते तो शायद इस लडाई को रोकने तक मे कामयाब हो गये होते। कभी-कभी हमारे सामने आयरलैण्ड की मिसाल रखी जाती है। यह ठीक है कि आयरलैंड और उसकी आजादी की जद्दोजहद से हम बहुत-कुछ सीख सकते है, पर हमे यह याद रखना चाहिए कि हमारी हालत जुदा है। आयरलैण्ड तो एक छोटा-सा मुल्क है, जो भौगोलिक और आर्थिक रूप से इग्लैण्ड से बँधा हुआ है। आयरलैण्ड आजाद हो तो भी वह दुनिया के मामलों मे कोई ज्यादा फर्क नही पैदा कर सकता। हिन्दुस्तान

के साथ यह बात नही है। आज़ाद हिन्दुस्तान अपने बडे-बडे साधनो के के कारण दुनिया और मानव-जाति की बडी भारी सेवा कर सकता है। हिन्दुस्तान हमेशा दुनिया को बदलनेवाला मुल्क रहेगा। तकदीर ने हम बडी चीजों के लिए बनाया है। जब हम गिरते है, तो नीचे गिर जाते है; जब हम ऊपर उठते है तो लाजिमी तौर से दुनिया के नाटक मे भाग लेते है।

जैसा कि कार्यसमिति ने कहा है, यह लडाई उन सब तरहके विरोधो और सघर्षो की उपज है जो मौजूदा राजनैतिक और आर्थिक ढाँचे मे पाये जाते है। लेकिन लडाई का तात्कालिक कारण तो फासिज्म और नात्सीवाद की तरक्की और उसके हमले है। जबसे नात्सी जर्मनी का जन्म हुआ है, तबसे काग्रेस ने सच्ची गहरी निगाह से देखकर फासिज्म की निन्दा की है और उसने देखा है कि साम्राज्यवाद के उसूल ही घने होकर फासिज्म बन गये है। काग्रेस मे लगातार जो प्रस्ताव हुए है उनसे इस फैसले का सबूत मिलता है। इसलिए यह साफ है कि हमे फासिज्म का विरोध करना चाहिए और उसपर विजय पाना हमारी भी विजय होगी। लेकिन हमारे लिए इस विजय का मतलब केवल यह होगा कि साम्राज्यवाद का ज्यादा विस्तार होगा। अपनी आजादी और उसे पाने की कश्मकश को तिलाजलि देकर हम फासिज्म के ऊपर विजय नही पा सकते।

अगर हम बाजारू तरीके से सौदा करेगे तो उसमे न तो हमारा मकसद ही पूरा होगा न विश्वव्यापी सकट के वक्त वह हिन्दुस्तान की शान के लायक ही होगा। हमारी आजादी इतनी कीमती है कि उसके लिए सौदा नही किया जा सकता। बल्कि दुनिया के टेढे रास्ते पर जाने की वजह से भी उसकी कीमत इतनी ज्यादा है कि उसे दरगुजर किया या एक तरफ डाला नही जा सकता। दुनिया भर की जिस आजादी की

घोषणा की जा रही है, उसका आधार और नीव ही यह आजादी है। अगर उस आजादी के लिए सयुक्त प्रयत्न करने मे हमे हिस्सा लेना है, तो वह प्रयत्न वास्तव मे मिलकर ही होना चाहिए, और उसका आधार स्वतत्र और बराबरवालो की रजामदी पर होना चाहिए, नही तो उसका कोई मतलब न होगा, कोई कीमत न होगी। लडाई मे जीत होने के खयाल से भी यह महत्त्व की बात है कि आजादी के साथ मिलकर लडाई मे शामिल हुआ जाये। लडाई मे जिन उद्देश्यो का पूरा होना माना जाता है उनके व्यापक दृष्टिकोण से भी हमारी आजादी जरूरी चीज है।

हम समझते है कि युद्ध और शान्ति के ध्येयो की समस्या पर किसी तरह का विचार करने की पृष्ठभूमि यही है।

२१ सितम्बर, १९३९.

२

लडाई का अजाम क्या होगा ? वह कबतक चलती रहेगी ? सोवियट रूस क्या करेगा ? क्या पोलैण्ड को कुचलने के बाद हिटलर सुलह चाहेगा ? इन और इन जैसे दूसरे सवालो का जवाब देने का हम दावा नही करते, और जो जवाब देने की कोशिश करते है, उन्हे शायद वैसा करना मुनासिब नही है। मगर हमारा यकीन है कि अगर यह लडाई आधुनिक सभ्यता का सत्यानाश नही करती, तो वह इन मौजूदा राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था मे रद्दोबदल तो ला ही देगी। लडाई के बाद पुराने तरीको पर साम्राज्य और साम्राज्यवाद चले इसकी हम कल्पना नही कर सकते।

दुनिया की जो स्थिति है उसमे इस वक्त सोवियट रूस का हिस्सा बडा रहस्यभरा है। यह तो साफ है कि रूस जो कुछ भी करेगा, उसके

परिणाम महत्त्वपूर्ण और दूरगामी होंगे। लेकिन चूँकि हम नही जानते कि वह क्या करेगा, इसलिए अपने मौजूदा हिसाब मे से उसे छोड देते है। रूस और जर्मनी के बीच जो समझौता हुआ, उससे बहुतो को धक्का लगा और अचरज हुआ। जिस तरीके से समझौता किया गया और उसके लिए जो मौका चुना गया, उसे छोडकर उसमे कोई बात अचरज की नही थी। किसी दूसरे वक्त रूस की विदेशी नीति के साथ वह कुदरतन् मेल खा सकता था। लेकिन इसमे शक नही कि उस खास अवसर पर उसमे रूस के बहुत से दोस्तो को अचम्भा हुआ। ऐसा लगा कि उसमे उसकी बहुत बडी ज्यादती, शरारत और मौके से फायदा उठाने की वृत्ति थी। यह आलोचना हिटलर पर भी लागू होती थी, जिसने रातो-रात अपना उग्र साम्यवाद-विरोध छोड दिया और जाहिरा तौर पर रूस के साथ दोस्ती कर ली। एक शरारती आदमी ने ताने के साथ कहा कि रूस ने कामिन्टर्न-विरोधी समझौता कर लिया है, दूसरे ने कहा कि हिटलर साम्यवादी और यहूदियो का हामी होता जा रहा है। यह सब हमको वाहियात मालूम होता है, क्योंकि हिटलर और स्टेलिन के बीच कोई असली समझौता नही हो सकता और न होने जा रहा है। बल्कि दोनो सत्ताधारी राजनीति के खेल खेलना चाहते है। रूस ने इग्लैण्ड के हाथो इतनी बेइज्जती सही है कि वह इसकी कडी मुखालफत करेगा ही।

सोवियट के पूर्वी पोलेण्ड मे घुस आने से एक धक्का और लगा, लेकिन अभी यह कहना मुश्किल है कि आया ऐसा जर्मन फौज का मुकाबिला करने के लिए या पोलेण्डवालो को कमजोर करने के लिए या एक राष्ट्रवादी दृष्टि-बिन्दु से किसी खास मौके से फायदा उठाने के लिए हुआ था। बहरहाल जो थोडी-बहुत खबर हमे मिली है, उससे पता चलता है कि रूस के पोलैण्ड मे बढने से निश्चित ही जर्मनी के इरादो में रुकावट हुई है। उससे जर्मनी

के पूर्वी पौलेण्ड को ले लेने मे भी रोक लगी और जर्मन फौज को रुकना पडा। इससे भी ज्यादा महत्त्व की बात सोवियट फौज का पालिश रूमानियन सीमा को ले लेना है। इससे यह निश्चित हो गया है कि जर्मनी रूमानिया के तेल के इलाको पर कब्जा नही कर सकता कि जिसपर उसकी घात थी और शायद रूमानिया की गेहूँ की भारी रसद भी नही हथिया सकता। बाल्कन राज्य जर्मनी के हमले से बच गये है और तुर्की ने तसल्ली की साँस ली है। भले ही आज इस सबका मतलब कुछ न हो, लेकिन आयन्दा ज्यो-ज्यो लडाई आगे बढेगी, त्यो-त्यो इसका बहुत ही महत्त्व होता जायेगा। इस तरह सोवियट रूस ने पश्चिमी मित्र-राष्ट्रो के काम मे भारी मदद की है और बर्नार्ड शॉ के इस कथन मे कुछ सचाई है कि स्टालिन ने हिटलर को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया है।

हेर हिटलर ने अपने डान्जिग के भाषण मे डराया है कि उसके पास एक भयकर गुप्त हथियार है और अगर स्थिति ने मजबूर किया तो वह भले ही वह कितना ही हैवानियत भरा हो उसे इस्तेमाल करने मे नही हिचकिचायेगा। कोई नही जानता कि यह अनोखी भयकर चीज क्या है ? मौत की फॉस है या वैसी ही कोई चीज ? हो सकता है कि यह कोरी डीग ही हो। हरेक ताकतवर राष्ट्र के शस्त्रागारो मे आज मानवजाति के लिए काफी भयकर अस्त्र-शस्त्र है, और ज्यो-ज्यो लडाई बढेगी, त्यो-त्यों उस भयकरता मे भी बढती होगी और विज्ञान की सारी शक्तियाँ युद्ध की न बुझनेवाली खूनी प्यास को बुझाने के लिए जुटायी गयी हैं। हम नही कह सकते कि इस भयानक चढा-ऊपरी मे किस पक्ष को लाभ रहेगा ?

काफी सहार करनेवाले और बर्बादी ढानेवाले होते हुए भी हवाई जहाज अबतक एक महत्त्वपूर्ण चीज नहीं रहे, जैसा कि कुछ लोग उम्मीद

रखने थे। शायद अभी हमने इससे पूरा-पूरा लाभ उठाया जाता देखा नही है। लेकिन स्पेन और चीन मे जो अनुभव हुआ है, उससे और हवाई जहाजों के हमले से बचाव के साधनो में जो उन्नति हुई है उससे पता चलता है कि हवाई अस्त्र निपटारा करनेवाली चीज न होगे।

कहा जाता है इस बात का मौका है कि शायद हिटलर अपने पोलैण्ड की लडाई खत्म होजाने के बाद सुलह करने की कोशिश करे या मुसोलिनी इस बारे मे उसकी तरफ से कुछ करे। लेकिन शान्ति तब भी नही होगी, क्योंकि शान्ति का मतलब तो है हिटलर की जीत होना और उसकी ताकत के आगे इग्लैण्ड और फ्रास का झुकआना और इग्लैण्ड या फ्रास मे सतुष्ट करने की नीति के कुछ हामी भले ही हों, लेकिन वहाँ के लोगो का स्वभाव उन्हे वैसा करने न देगा। कुछ-कुछ सम्भावना इस बात की भी है कि जर्मनी मे अन्दरूनी कठिनाई उठ खडी हो जो लडाई को जल्दी खत्म करा दे। लेकिन युद्ध की इस शुरू की अवस्था मे उसके आसरे रहना भी खतरे से खाली नही है। इसलिए ऐसा दीखता है कि लडाई लम्बी, दो-तीन बरस तक, चलेगी।

इस लडाई में बहुत ज्यादा अनिश्चित बाते है जिनकी वजह से कोई भविष्यवाणी नही की जा सकती। लेकिन फिर भी आदमी के दिमाग को आगे देखना चाहिए और भविष्य के परदे मे झाँकने की कोशिश करनी चाहिए। भविष्य तो यही बताता दीखता है कि लडाई का क्षेत्र बढेगा और अधिक-से-अधिक राष्ट्र उसमे खिच आवेगे। फलस्वरूप यह युद्ध विश्व-व्यापी युद्ध हो जायेगा, जिसमे तटस्थ रहनेवाले देशो की कोई गिनती न होगी और बरबादी ढाता हुआ, हत्याएँ करता हुआ, दुनिया को उजाडता और मिटाता हुआ साल पर साल यह युद्ध चलता रहेगा; और तब युद्ध से जर्जर मानव-जाति को समझ आयेगी और वह

उसके खिलाफ बगावत करके उसका अन्त करेगी।

इस लम्बी लडाई मे फायदे सभी पश्चिमी मित्र-राष्ट्रो को है। उनके आर्थिक साधन जर्मनी की बनिस्बत कही बढे-चढे है और वे दुनिया के बहुत बडे हिस्से पर निर्भर रह सकेगे। जर्मनी के पनडुबिया जहाजों की हलचलो और हवाई जहाजो के साधनो के बावजूद समुद्री रास्ते सब करीब-करीब उन्ही के कब्जे मे है। अमरीका, एशिया और अफ्रीका उन्हे बहुत-सी जरूरत की चीजे दे देदेगे, जबकि जर्मनी के साधन जुटाने के स्रोत तो बहुत थोडे-से है। सोवियट रूस क्या करेगा, फिलहाल हम छोडे देते है। सैनिक और आर्थिक दृष्टि से उसका भारी महत्त्व हो सकता है, लेकिन यह तो हम बहुत ही अनहोनी बात दिखायी देती है कि रूस नात्सी जर्मनी को मदद दे।

दूसरे देश अगर लडाई मे शरीक हुए तो सिर्फ इटली और जापान के ही जर्मनी के साथ होने की सम्भावना है। रूस कुछ हद तक जापान की फौजी तैयारियां रोक देगा। चीन पर अपने हमले के सबब से वह सजीदा होगया है। इटली का भूमध्यसागर मे महत्त्व होगा, लेकिन खास नही। एक तटस्थ देश रहकर और खाने की व दूसरी जरूरत की चीजे भेजकर और इस तरह नाकेबन्दी को तोडकर जर्मनी के लिए वह ज्यादा फायदेमन्द भी हो सकता है। कुछ भी हो, इग्लैण्ड और फ्रास के खिलाफ लडाई इटली मे बहुत पसन्द नही की जायेगी। कहा जाता है कि सिन्योर मुसोलिनी का हेर हिटलर से जो प्रेम था वह भी हल्का पड गया है। फिर भी इटली का जर्मनी से मिल जाना मुमकिन है।

अगर सयुक्तराज्य अमरीका पश्चिमी मित्र-राष्ट्रों से मिल गया तो उनको बहुत ज्यादा ताकत हासिल हो जायेगी। फिलहाल तो सयुक्त-राज्य की मनोवृत्ति तटस्थ रहने की है; लेकिन उससे बढ़ी-चढ़ी तो

उसकी हिटलर-नात्सी-विरोधी भावना है। किसी भी हालत मे अमरीका हिटलर की जीत होना बर्दाश्त नही कर सकता। इसलिए बहुत मुमकिन है कि लडाई की बाद की स्थिति मे सयुक्तराज्य इग्लैण्ड और फ्रास के साथ शरीक होजाये। शरीक होने मे पहले वह उनकी लडाई की जरूरत को पूरा करके उनकी मदद करेगा जैसा कि पिछली लडाई में किया था। इस मदद मे ही लडाई मे शरीक होने के लिए उसे मजबूर होना पडेगा।

इस लडाई के और विरोधी साम्राज्यवादो की टक्कर के बुनियादी कारण कुछ भी हो, आखिरी कारण तो नात्सियो का हमला था। पिछले अठारह महीनो से मध्ययूरप मे जो नात्सी आक्रमण बराबर चल रहा है, उसने नात्सी आक्रमण के खिलाफ दुनिया भर के ज्यादातर लोगो के खयाल खराब कर दिये है। उनकी निगाह मे नात्सी आक्रमण अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे बुराई का पुतला है। पश्चिमी मित्र-राष्ट्रो के हक मे यह एक बडी जोरदार मनोवैज्ञानिक बात है। जर्मनी की अन्दरूनी कठिनाइया की जो हाल मे ही खबरे मिली है, उनमे अतिशयोक्ति हो सकती है, लेकिन ऐसी कठिनाई का होना हमेशा मुमकिन है, खासतौर से उस हालत में जबकि लडाई आगे खिचती चले और उससे लोगो पर बोझ और मुसीबते बढती जायें। यह तै है कि बोहेमिया, मोरेविया और शायद स्लोवाकिया मे बराबर मुश्किल बनी रहेगी। चेको-स्लोवाकिया के लोग जो कि अपने दोस्तो के विश्वासघात की वजह से आसानी से हरा दिये गये, अब अपना बदला ले लेगे।

इस सबमे पता चलता है कि इस लम्बी लडाई मे—और उसके लम्बी होने की सम्भावना है—तराजू का पलडा पश्चिमी मित्र-राष्ट्रो की तरफ बहुत झुका रहेगा। लेकिन यह लाभ उनके हक मे तभी रहेगा जब

उनके युद्ध और शान्ति के ध्येय स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय हो जिससे कि दुनिया के राष्ट्र इस बात को जान ले और विश्वास करले कि जिन उद्देश्यो के लिए वे इतनी भारी कीमत दे रहे है वे इस लायक है। साम्राज्यवाद को जारी रखने के लिए वे नही लडेगे, न बलिदान देगे। इसका अन्तिम निर्णय तो दुनिया के हाथो होगा, न कि उन सरकारो के हाथो जो अबतक उन्हें गलत रास्ते पर लेगयी है। अगर सरकारे उनकी मर्जी के अनुसार नही चलेगी तो उन्हे रुखसत होना होगा और उनकी जगह दूसरी सरकार आवेगी।

२१ सितम्बर, १९३९

३

पश्चिमी मित्र-राष्ट्रो के बनाये हुए युद्ध के ध्येय क्या है? हमसे कहा गया है कि वे प्रजातन्त्र और आजादी लाने, नात्सी शासन और हिटलरशाही का अन्त करने और पोलैण्ड को मुक्त कराने के लिए लड रहे है। मि० चेम्बरलेन ने अब इतना और कह दिया है कि चेकोस्लोवाकिया को भी स्वतन्त्र किया जायेगा। माना, लेकिन यही सब काफी नही है। तभी तो कार्य-समिति ने जो ब्रिटिश सरकार से युद्ध और शान्ति के ध्येय पूरे तौर पर बगैर किसी लाग-लपेट के बता देने को कहा है, वह महत्त्वपूर्ण है।

अपनी दलील को हम और आगे लेजाये। अगर हिटलरशाही का अन्त होना है, तो उससे जरूरी तौर पर यह नतीजा निकलता है कि किसी भी फासिस्ट सत्ता से—जर्मनी को छोडकर और किसीसे भी—कोई सुलह या समझौता नही होना चाहिए। इसका मतलब यह है कि जापानियो और इटेलियनो के हमले को हमे मजूर नही करना

चाहिए और हमारी नीति यह होनी चाहिए कि चीन को हम उसकी आजादी की लडाई मे जितनी मदद पहुँचा सके पहुँचाये। इसका मतलब यह भी है कि हमारी जो नीति फासिज्म पर लागू होती है, वही साम्राज्यवाद पर भी लागू होनी चाहिए और इन दोनो का खात्मा कर देना चाहिए। हर हालत मे, अन्तर्राष्ट्रीय रद्दोबदल के अलावा भी हिन्दुस्तान को आजाद और खुदमुख्तार होना चाहिए। लेकिन फिलहाल हिन्दुस्तान की आजादी पर हम विश्वव्यापी साम्राज्यवाद के सिलसिले मे विचार करते है। एक तरफ फासिज्म की निन्दा करके दूसरी तरफ साम्राज्यवाद की हिमायत करने या उसे कायम रखने की कोशिश करना तो बेतुका और वाहियात है। वह दुनिया, जिसमे कि फासिज्म का काफी बोलबाला रहा है, साम्राज्यवाद को बर्दाश्त नही कर सकती। इसलिए फासिज्म के खिलाफ लडाई का लाजिमी नतीजा यह होगा कि साम्राज्यवाद का भी खात्मा होना चाहिए, नही तो उस लडाई का सारा-का-सारा उद्देश्य ही गडबडा जाता है और वह कई प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादो की ताकत हासिल करने का झगडा बन जायेगी।

इस तरह लडाई के ध्येयों के स्पष्टीकरण मे नीचे लिखी बाते होनी चाहिएँ हिटलर ने जो देश ले लिये है उनका छुटकारा, नात्सी शासन का खात्मा, फासिस्ट सत्ता के साथ किसी तरह का सुलह या समझौता न होना, साम्राज्यवादी ढाँचे का खात्मा करके प्रजातन्त्र और आजादी लाना और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर अमल होना। बेशक गुप्त सधियाँ नही होनी चाहिएँ, न दूसरे देशो को जीतना, न मुआवजे और न औपनिवेशिक क्षेत्रो पर सौदा ही होना चाहिए। उपनिवेशो मे भी आत्मनिर्णय का सिद्धान्त लागू होना चाहिए और उनके प्रजातन्त्रीकरण के लिए कदम उठाये जाने चाहिएँ। कौमियत की बुनियाद पर जो भेद-भाव है, सब मिट

जाने चाहिएँ। उपनिवेशो की जनता की लाशों पर हम शान्ति या सन्धि का समझौता नही होने दे सकते।

हम इन सुझावो को सौदे की भावना से पेश नही कर रहे हैं और न दूसरे की मुसीबत से फायदा उठाने की हमारी जरा भी मशा है। उस मुसीबत पर हम तो अपनी हमदर्दी जाहिर करते है। लेकिन उस मुसीबत के आगे हम अपनी मुसीबते और बेबसियाँ थोडे ही भूल सकते है। अगर हम पोलैण्ड या चेको-स्लोवाकिया की आजादी चाहते है, तो उसमे कही ज्यादा हम चीन की आजादी चाहते है। यह कोई सकीर्ण स्वार्थ नही है जो हमे हिन्दुस्तान की आजादी को पहला दर्जा देने के लिए मजबूर करता है। अगर हमारे पास खुद आजादी नही है, तो किसी आजादी का हमारे लिए कोई मतलब नही हो सकता और अगर हम दूर देश की आजादी के लिए तो शोर मचाया करे मगर खुद गुलाम बने रहे तो यह कोरा मजाक ही होगा। लेकिन लडाई के दृष्टिकोण से देखा जाये तो भी उस लडाई को लोकप्रिय बनाने की खातिर वह आजादी जरूरी है, क्योकि ऐसा होने से ही लोगो को एक ऐसे उद्देश्य के लिए हिम्मत और बलिदान करने की प्रेरणा मिलती है जिसे वे अपना समझते है। ज्यो-ज्यो यह लडाई महीने-पर-महीने और साल-पर-साल चलेगी और सब मुल्को के लोगो पर थकान चढ़ेगी तो अपनी गाढी कमाई की आजादी को बचाने की यह प्रेरणा ही अखीर मे काम आयेगी। आर्थिक स्वार्थ-वाली किराये की फौजो से, चाहे वे कितनी ही कुशल क्यो न हो, लडाई मे जीत नही होगी।

हिन्दुस्तान के बारे मे ब्रिटिश सरकार को जो पहला कदम उठाना है वह यह है कि खुले आम यह ऐलान हो जाना चाहिए कि हिन्दुस्तान आजाद और खुदमुख्तार राष्ट्र है और उसको अपना विधान खुद बनाने

का अधिकार है। हमे मानना पडेगा कि इस ऐलान पर एकदम ही पूरी तरह से अमल नही किया जा सकना, लेकिन जैसा कि कार्य-समिति ने बताया है इतना तो जरूरी है ही कि जिस हद तक मुमकिन होसके उस हद तक फिलहाल उसे अमल मे लाया जाये, क्योंकि यह अमल ही तो है जो लोगो के दिमागो और दिलो को छूता है और जिसका असर दुनिया पर पडता है। यही वह तोहफा है जिसके दिये जाने से लडाई की गतिविधि सचालित होने लगेगी और उसे वह ताकत मिलेगी जो बडे कामो मे जनता की इच्छा से है। हम कुछ भी करे, वह हमारी स्वतन्त्र इच्छा व पसन्द का होना चाहिए और सिर्फ तभी सम्मिलित प्रयत्न सचमुच सम्मिलित बन सकेगा, क्योकि वह एक कार्य मे हाथ बँटानेवाले कइयो के स्वतत्र सहयोग पर निर्भर होगा।

बदकिस्मती तो यह है कि ब्रिटिश सरकार ने, जैसा कि उसका कायदा है, ऐसी कारंवाई कर डाली है कि हमारा वाजिब तौर पर उधर बढ़ना मुश्किल हो गया है। हालाँकि वह अच्छी तरह जानती थी कि हम गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट मे सशोधन करनेवाले बिल के बिलकुल खिलाफ थे—तो भी उसने उसे कामन सभा में सब वाचनो मे ठीक ११ मिनटो मे पास कर दिया। इधर हिन्दुस्तान मे उसी तरह कानून और आर्डिनेंस झटपट बना डाले गये। भारत-मन्त्री की कचहरी और हिन्दुस्तान की सरकार अब भी गये-गुजरे जमाने मे रहती है। न तो वह तरक्की करती है, न सीखती है, न याद रखती है, यहाँतक कि लडाई का धक्का लगने पर भी उनको दिमागी तरीके या उनके पुराने ढंग पर कोई ज्यादा असर नही पडा है। वे हिन्दुस्तान को पक्का माने बैठे है—यह नही समझते कि इस कायापलट के जमाने मे कोई चीज पक्की नही मानी जा सकती, फिर हिन्दुस्तान की तो बात ही क्या जो कि ऊपर सतह

से चुपचाप दीखते हुए भी सब तरह की ताकतो और जोरदार जरूरतो से आन्दोलित हो गया है।

तो भी नजदीक आने की मुश्किल के होते हुए भी कार्य-समिति ने, सच्ची राजनीतिज्ञता के साथ अपना हाथ बढाकर अग्रेजो और उन तमाम लोगो को जो आजादी के लिए जद्दोजहद कर रहे है, अपने सहयोग का वचन दिया—मगर हिन्दुस्तान शान और आजादी के साथ ही सहयोग कर सकता है वरना उसके सहयोग की कोई कीमत नही। दूसरा कोई रास्ता है तो जबर्दस्ती का है और उसे सहने की हमे आदत नही रही है।

मौजूदा बात हिन्दुस्तान की आजादी पर लागू करना कैसे और किस हद तक जरूरी है ? यह साफ है कि जो कुछ हम करे हमारी स्वतन्त्र इच्छा मे और अपने फैसले के मुताबिक करेगे। लडाई से ताल्लुक रखनेवाले मामलो मे कारंवाई करने की बराबरी होनी ही चाहिए, भले ही वह कानून की किताब मे न लिखी जा सके। देखने मे हिन्दुस्तान लडाई मे लगा हो, लेकिन इस देश मे युद्ध की हालत है कहाँ ? और इसकी बिल्कुल कोई वजह नही है कि मामूली तौर पर चलनेवाले धारासभाओं और न्यायालयो के कामो के बदले गैरमामूली कार्रवाइयाँ की जायं। इन गैरमामूली कार्रवाइयो का जमाना गया। अब तो उनको गडा मुर्दा ही रहने देना चाहिए और प्रान्तीय धारासभाओ और प्रान्तीय सरकारो के जरिए तमाम जरूरी कदम उठाये जाने चाहिएँ। ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने सशोधन करनेवाला जो कानून पास किया है उसे भी गडा मुर्दा ही रहने देना चाहिए और जहाँ तक प्रातीय सरकारो का ताल्लुक है उनके अधिकारो और उनकी प्रवृत्तियो पर किसी कदर रोक नही लगनी चाहिए। वे मर्यादाएँ और वे किलेबन्दियाँ जैसी कि विधान मे है अमल मे नही आनी चाहिएँ। इस हद तक तो कोई दिक्कत नहीं है।

लेकिन यह जरूरी है कि इस बीच के अर्से मे भी हिन्दुस्तान के नुमाइन्दो का बाहरी मामलो मे हथियारबन्द फौजो और आर्थिक मामलो म केन्द्रीय नीति और हलचलो (प्रवृत्तियों) पर कब्जा होना चाहिए।

यही एक रास्ता है जिससे सर्वसम्मत नीति पर चला जा सकता है। इस काम के लिए कोई आर्जी तरीका सोच निकालना होगा। आजकल के कानून मे सशोधन कर देने से यह काम नहीं हो सकता। जब हिन्दुस्तान का बनाया हुआ विधान बनेगा तो सारे-के-सारे एक्ट को ही रद्द करना होगा। यह हो सकता है कि इस बीच सब की राय से कोई कारगर आर्जी इन्तजाम कर दिये जायें।

यह साफ है कि अगर हिन्दुस्तान की युद्ध-नीति को जनता का समर्थन और मदद दिलाना है, तो जनता के चुने हुए ऐसे प्रतिनिधि ही उसे चलाये जिनमे लोगो को विश्वास हो। यह कोई आसान काम नही है कि पीढ़ियो से जो विचार बने हुए आ रहे है उन्हे दबा दिया जाये और अपने देशवासियो को इसे अपना ही उद्योग समझने को मजबूर किया जाये।

यह तो सिर्फ तभी हो सकता है जबकि उन्हे अपनी नीति समझाकर और उन्हे यह भरोसा दिलाकर कि इससे उनका तो भला होगा ही, दुनिया का भी भला होगा---अपने विश्वास मे लिया जाये। इसी तरीके पर जनतत्र काम करता है। हमे लडाई को चलानेवाली बडी-बडी नीतियो को भी जानना पडेगा, ताकि हम अपने लोगो और दुनिया के आगे उनका औचित्य सिद्ध कर सके।

एक राष्ट्र की युद्ध-नीति में पहले उस देश की रक्षा पर विचार किया जाना लाजमी है। हिन्दुस्तान को यह महसूस होना चाहिए कि वह अपनी ही रक्षा करने मे और अपनी ही आजादी को बचाने और दूसरे देशो मे

हो रही आजादी की जद्दोजहद मे मदद पहुँचाने को अपना हाथ बँटा रहा है।

फौज को भी एक राष्ट्रीय फौज समझना होगा, तनख्वाहदार फौज नही कि जो किसी और मे अपनी भक्ति रखती हो। इसी राष्ट्रीयता के आधार पर भर्ती होनी चाहिए ताकि हमारे सिपाही निरे तोप के गोलो के शिकार न होकर अपने देश और अपनी आजादी के लिए लडनेवाले हो। इसके अलावा यह भी जरूरी होगा कि मिलीशिया के आधार पर बडे पैमाने पर नागरिक रक्षा की व्यवस्था भी की जाये। यह सब काम सिर्फ जनता की चुनी हुई सरकार ही कर सकती है।

इससे भी कही महत्त्व की बात है युद्ध-सबधी और दूसरी आवश्यकताओ की पूर्ति करनेवाले उद्योगो की बढती करना। लडाई के जमाने मे हिन्दुस्तान मे उद्योगो की तरक्की बडे पैमाने पर की जानी चाहिए। उन्हे भाग्य भरोसे ही नहीं छोडकर बढने देना चाहिए बल्कि उनकी योजना बननी चाहिए और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से उनपर कब्जा होना चाहिए और मजदूर-कारीगरो को उचित सरक्षण दिया जाना चाहिए। इस काम मे राष्ट्र-निर्माण-समिति बडी मदद कर सकती है।

ज्यो-ज्यो लडाई बढती और ज्यादा पर ज्यादा सामग्री समेटती जायेगी त्यों-त्यो आयोजना के साथ उत्पत्ति और वितरण की व्यवस्था दुनिया भर मे होगी और धीरे-धीरे विश्वव्यापी अर्थनीति की योजना बनेगी। पूँजीवादी प्रणाली को कोई नही पूछेगा, और हो सकता है कि उद्योगों पर अन्तर्राष्ट्रीय आधिपत्य हो जाये। ऐसे आधिपत्य मे एक महत्त्वपूर्ण उत्पादक देश के नाते हिन्दुस्तान का हाथ होना चाहिए।

अन्त मे शाति-परिषद् मे हिन्दुस्तान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से बोलने देना चाहिए। हमने यह बतलाने की कोशिश की है

कि जो लोग जनतन्त्र की दुहाई दिया करते है उनके युद्ध और शान्ति के उद्देश्य क्या होने चाहिएँ और खासकर उनको हिन्दुस्तान पर किस प्रकार लागू किया जाना चाहिए। यह सूची पूरी नही है, पर यह एक ठोस नीव है जिसपर निर्माण हो सकता है, और उस आवश्यक प्रयत्न के लिए प्रेरणा मिल सकती है। हमने यहाँ युद्ध के बाद नयी विश्वव्यवस्था की समस्या को नही छुआ है, हालाँकि हमारे खयाल से ऐसी पुनर्व्यवस्था बहुत जरूरी और अनिवार्य है।

क्या दुनिया के और खासकर लडाई मे लगे हुए देशो के राजनेता और निवासी इतनी समझ और दूरदृष्टि पैदा करेगे कि हमारे बताये रास्ते पर चल सके ? हम नहीं जानते। मगर यहाँ हिन्दुस्तान मे हम अपने भेदभाव---वाम और दक्षिण पक्ष---को भूल जाये और इन महत्व-पूर्ण समस्याओ पर विचार करे जो हमारे सामने है और अपना हल पाने का आग्रह कर रही है। दुनिया के पेट मे कई सम्भावनाएँ है। कभी उसे कमजोरो, बेकामो और बिखरे हुओ पर रहम नहीं आता। आज जबकि राष्ट्र जीवित रहने के लिए जी-जान से लड-भिड रहे है तब केवल वे ही लोग बनते हुए इतिहास मे हिस्सा बँटायेगे जो दूरदर्शी और अनुशासन मे होगे।

२३ सितम्बर, १९३९

: १० :

अंग्रेज़ जनता के प्रति

['न्यूज़ क्रॉनिकल' (लन्दन) को भेजा गया एक संदेश]

यूरप मे आज हिंसा और अमानुषतापूर्ण युद्ध का तूफान फैला हुआ है और उससे दुनिया भर की सभ्यता का ताना-बाना बिखर जाने का खतरा है। हथियारो की टक्करे तो है ही, मगर उनके पीछे खयालात और उद्देश्यो की गहरी टक्करे भी हो रही है और दुनिया का भविष्य कॉटे पर झूल रहा है। इतिहास न सिर्फ लडाई के मैदानो मे तैयार हो रहा है बल्कि आदमियो के दिमागो मे भी बन रहा है और खास सवाल सामने यह है कि जो इतिहास बनने जा रहा है क्या वह गुजरे हुए ज़माने की तवारीख से मुख्तलिफ होगा ? और क्या इस भयकर लड़ाई का मानवीय स्वतन्त्रता पर भारी असर पडेगा और लडाई के और मानवीय अधोगति के मूल कारणों को ही मिटा देगा ? हिन्दुस्तान को आज़ादी की चाह है और लडाई और हिंसा से वह डरता है। उसके लिए यह सवाल सबसे ज्यादा महत्त्व का है। उसने फासिज्म की फिलासफी और साधनो का, नात्सी हमलो का और हैवानियत का जोरदार विरोध किया है और उनमे उन्ही सिद्धान्तो को नदारत पाया है जिनका वे दावा करते है। हिन्दुस्तान तो विश्वशान्ति का अर्थ करता है स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र हासिल होना और एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र पर हुकूमत का खात्मा होना। इसलिए हिन्दुस्तान ने मचूरिया, अबीसीनिया, चेको-स्लोवाकिया पर हुए हमलो की निन्दा की और स्पेन की घटनाओ और पोलैण्ड पर हुए नात्सियो के हैवानियत से भरे हमले से उसे गहरी चोट पहुँची।

इसलिए हिन्दुस्तान बडी खुशी के साथ ससार मे शान्ति और स्वतन्त्रता की नयी व्यवस्था स्थापित करने मे अपने तमाम साधन जुटायेगा।

अगर इस प्रकार की शान्ति कायम करना ही ध्येय है तो युद्ध और शान्ति के उद्देश्यो की व्याख्या साफ-साफ की जानी चाहिए और आज उन्हीके मुताबिक काम होना चाहिए। वैसा न करना या हिचकिचाना इस बात को जाहिर करना है कि कोई साफ उद्देश्य नही है और जो कुछ अन्धाधुध कह दिया जाता है उसके मानी गम्भीरतापूर्वक नही लगाये जाते। इससे उन सब लोगो को अंदेशा होना वाजिब है कि जिन्होने कडवे तजुर्बे करके यह जान लिया है कि युद्ध उन उद्देश्यो को दबा लेते है और इसका नतीजा यह होता है कि प्रभुत्व हासिल करने और अपने को सुरक्षित रखनेवाला साम्राज्यवाद आ जाता है। यदि यह युद्ध प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय के पक्ष मे और नात्सी हमलो के मुखालफत के लिए लडा जा रहा है तो वह प्रदेशो को कब्जे मे करने, क्षतिपूर्ति (हरजाना) देने या मूल-सशोधन करने, उपनिवेशो के आदमियो को गुलामी मे जकडे रखने और साम्राज्यवादी तन्त्र को बनाये रखने के लिए नही लडा जाना चाहिए।

इसी आवश्यक कारण को लेकर काग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से अपने युद्ध और शान्ति के उद्देश्यो को साफ-साफ शब्दो मे बताने और खासकर इसकी घोषणा करने को कहा है कि वे उद्देश्य इस साम्राज्यवादी व्यवस्था पर और भारत पर किस प्रकार लागू होते है? हिन्दुस्तान साम्राज्यवाद को बचाने के लिए कोई हिस्सा नही ले सकता—हाँ, स्वतन्त्रता के लिए कशमकश करने मे जुट सकता है। हिन्दुस्तान मे मदद पाने के साधन बहुत है, मगर इससे अधिक कीमती है एक समुचित उद्देश्य के प्रति उसका नैतिक समर्थन व उसकी सद्भावना। आज हिन्दुस्तान उसके और इग्लैड

के सदियों के झगडे को मिटाने के लिए जो सुझाव रख रहा है वह कोई छोटी बात नही है,क्योकि वह ससार के इतिहास मे एक युगान्तरकारी घटना होगी जो उस नयी व्यवस्था का सच्चा सूत्रपात करेगा जिसके लिए हम लड रहे है इस काम मे स्वतन्त्र और समकक्ष हिन्दुस्तान ही अपनी मर्जी से सहयोग कर सकता है । जबतक यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नही हो जाता, तबतक हममे से किसीकी भी ताकत नही है कि हिन्दुस्तान के लोगो को ऐसी लडाई के लिए उत्साहित कर सके कि जो उनकी नही है । जनता की मर्जी से लडी जानेवाली लडाई को जनता का समर्थन मिलना चाहिए और लोगो को यह मालूम होना चाहिए कि उनका उससे क्या नफा-नुकसान है ? सिर पर थोपी जानेवाली लडाई का लाज़मी तौर पर विरोध किया जायेगा और जनता की भावना उसके खिलाफ भडकेगी ही ।

हमारी आजादी के लिए चल रही पीढियो की लडाई और कशमकश की सारी-की-सारी पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखना चाहिए । हमारा मौजूदा शासन-विधान तक हमपर लादा गया है, जिसमे विरोध जैसा-का-तैसा बना रहा है । यह विरोध ऐसे गोलमोल आश्वासनों और बेमन से किये जानेवाले उपायो से, जो अपने उद्देश्य तक नही पहुँच सकते, मिट नही सकता । अब इस ऐतिहासिक सुअवसर को हाथ से न जाने देकर हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र राष्ट्र माना जाना और उसे अधिकार मिलना चाहिए कि वह शासन-विधान और स्वतन्त्रता का हुक्मनामा खुद तैयार करले । इससे कुछ भी कम होने का मतलब यह होगा कि यह मौका हाथ मे जाता रहेगा और हिन्दुस्तान और इग्लैण्ड के विरोध और सघर्ष का अभी अन्त नही होगा । इसका एक मतलब यह होगा कि सिर्फ हम हिन्दुस्तानी ही नही, बल्कि दूसरे भी युद्ध और शान्ति के ध्येयो की

सचाई मे सदेह करते ह और दूसरा यह कि जो कुछ कहा जाता है उसमें और जो कुछ किया जाता है उसमे फर्क है ।

इसलिए सबसे पहला कदम यह होना चाहिए कि हिन्दुस्तान के पूर्ण स्वतन्त्र होने की घोषणा करदी जाये । और इसके बाद इसपर अमली कार्रवाई होनी चाहिए—यानी जहाँतक हो सके वहाँतक हिन्दुस्तानियो को हिन्दुस्तान की हुकूमत करने और अपनी तरफ से युद्ध को चलाने के अधिकार मिल जाये । तभी यह मुमकिन है कि ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति उत्पन्न हो जिससे जनता का समर्थन मिल सके । स्वेच्छाचारी और दमनकारी कानूनो की हुकूमत से तो जनता की सहानुभूति जाती रहेगी और टक्कर शुरू हो जायेगी । कठिनाइयाँ तो इस समय ही पैदा हो रही है—सार्वजनिक कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये है और हिन्दुस्तान के कई प्रान्तो मे जनता और मजदूरो की हलचलो पर कडी पाबन्दियाँ लगा दी गयी है । यह वही पुराना तरीका है जो पहले भी सफल नही हो सका और फिर भी नाकामयाब रहेगा ।

हिन्दुस्तान पिछले जमाने के विरोध को भुलाकर अपना दोस्ताना हाथ आगे बढाना चाहता है । लेकिन वह सिर्फ समता के सिद्धान्तो पर स्वतन्त्र देश बनकर ही ऐसा कर सकता है । उसे यह विश्वास होना वाजिब है कि वह पुराना जमाना गुजर गया है और हम सब यूरोप मे ही क्या, एशिया और तमाम दुनिया मे एक नयी व्यवस्था कायम करने जा रहे है । हिन्दुस्तान का यह न्योता ब्रिटिश सरकार को अकेले उसीकी तरफ से नहीं बल्कि शान्ति, स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र मे विश्वास रखनेवाले दुनिया के सब लोगो की तरफ से है । अगर इस इशारे का गहरा अर्थ नही समझा गया और उसकी पूरी-पूरी सुनवाई न हुई—तो यह

हम सबके लिए दुखदायी घटना होगी। लेकिन अगर सुनवाई हुई तो तमाम दुनिया के लोगो को खुशी होगी और मैदाने जग मे जीत जाने से नात्सीवाद को जितनी चोट लगेगी, उससे कही ज्यादा चोट इससे पहुँचेगी।

५ अक्तूबर, १९३९

: ११ :

ब्रिटेन किसलिए लड़ रहा है ?

विजेताओ और मक्कारो ने हमेशा से युद्ध के उद्देश्यो के बारे मे जो भिन्न-भिन्न वक्तव्य दिये है, उन्हे सग्रह करना और पढना इतिहास के विद्यार्थी के लिए एक बडी दिलचस्प और शिक्षाप्रद बात होगी। हमेशा धार्मिक या सामाजिक दृष्टि से ऊँचे-से-ऊँचे नैतिक आधार पर इनका समर्थन किया हुआ मिलेगा। किसी ऊँचे सिद्धान्त की खातिर हरेक आक्रमण उचित और हरेक नृशसता क्षम्य कह दी जाती है। अक्सर उसे पता चलेगा कि अत मे शान्ति स्थापित करने की लगन विजेता और आक्रान्ता को आगे बढने की प्रेरणा देती है। क्या हेर हिटलर तक ने ऐसा ही नही कहा है? हाल ही मे युद्ध के घोषित उद्देश्यो का एक लुभावना सग्रह इग्लैण्ड मे प्रकाशित हुआ था। उसमे दो हजार वर्ष पीछे तक की बाते थी। पढकर अचरज होता था। वही भाषा, वही शान्ति के लिए जोशीला प्रेम सौ या हजार बरस पहले दिये गये उन लडाई आरम्भ करनेवाले बादशाहो और सम्राटो के वक्तव्यो मे था कि जैसा आजकल हम पढते है। हर किसीको करीब-करीब ऐसा खयाल हो सकता था कि कुछ जबानी हेर-फेर के साथ मि० नेविल चेम्बरलेन ही बोल रहे है, कोई मध्यकालीन शासक नही।

इस सग्रह मे पश्चिमी देशो के बारे मे बाते थी; लेकिन हमे सन्देह नही कि वैसा ही सग्रह पूर्वीय शासको के वक्तव्यों मे भी तैयार किया जा सकता है। उम्दा शब्दो और पवित्र सिद्धान्तो की आड मे अपने असली ध्येयो को छिपाना इसान का दोष है, जो पूर्व और पश्चिम दोनो मे

पाया जाता है। शायद ही ऐसे शासक हुए हों जिन्होंने इस तरीके से अपने दुष्कर्मों को छिपाने की कोशिश न की हो। दो हजार वर्ष पहिले हिन्दुस्तान में राजाओ मे बेमिसाल एक राजा था अशोक महान्। जब वह खूब देश जीत रहा था तब उसने युद्ध की भयकरता अनुभव की और अपना हृदय खोलकर रख दिया था।

जब हम इन वक्तव्यो और औचित्यो का पिछला लेखा देखते है तो हममे थोडी-सी मायूसी भर आती है या हम चिडचिडे हो उठते है। क्या मानवता हमेशा एक ही तरह की धोखेधडी से गुजरने के लिए है और क्या मुँहबोले शब्दो और खोटे कामो के बीच हमेशा ही इतनी चौडी खाई बनी रहेगी? फिर भी जब-जब ये बहादुराना वक्तव्य दिये जाते है, तब-तब हममे आशा भर आती है और अपने पुराने सभी अनुभवो के खिलाफ हम यह विश्वास करने की कोशिश करते है कि कम-से-कम इस बार तो शब्दो को अमल मे लाया जायेगा। १९१४ और उसके बाद यही हुआ। लाखो ने विश्वास किया—और फजूल किया—कि युद्ध युद्ध का अन्त करने के लिए है और वह हमारी इस अभागी धरती पर शान्ति और आजादी कायम करेगा। लडाई ने क्या विरासत छोडी यह हम जानते है। राजनीतिज्ञो का छल,कपट और विश्वासघात भी हम जानते है और यह भी हम अच्छी तरह से जानते है कि उसके बाद से कितना खतरा हमारे पीछे लगा है।

और अब २५ वर्ष बाद फिर वही शब्द दोहराये जा रहे है, उसी तरह के पवित्र वक्तव्य दिये जा रहे है और बहुत से मुल्को के युवक जो पुरानी धोखे-धडियो को नही जानते या उन्हे भूले हुए है, पर जो श्रद्धालु और बडे जोशीले है, मृत्यु के मुँह मे जा रहे है। लेकिन क्या हमको वही चक्कर फिर से काटना जरूरी है? अब नही, हम सब कहते है, कभी

नहीं। शायद मानवता राजनीतिज्ञों और उन लोगो के ओछे छल-कपटो मे जो जरूरत से ज्यादा वक्त से हमारे भाग्य-निर्णायक रहे है, ऊँची उठेगी। लेकिन इस बारे में हमें बहुत अधिक भरोसा नही करना चाहिए, क्योकि इसान जो चाहते है उसपर भरोसा करने की उनमें बेहद शक्ति होती है और इसलिए वे धोखे मे आ जाते है।

जबसे यूरोप मे मौजूदा लडाई छिडी, तबसे आम जनता मे लेकिन अस्पष्ट रूप से यह बात चल पडी थी कि लडाई के उद्देश्य क्या है? और अधिकारी व्यक्तियो ने स्पष्ट रूप से ही उसका जवाब भी दे दिया था। उसके बाद १४ सितम्बर की कांग्रेस की कार्य-समिति का वक्तव्य आया और पहले-पहल एक ऐसे सगठन ने, जिसका दुनिया भर मे नाम है, कोशिश की कि लडाई के उद्देश्यो की साफ-साफ परिभाषा बतायी जाये। वक्तव्य हिन्दुस्तान के बारे मे जरूर था, लेकिन उनमे दुनिया भर के सामने आये हुए खास मसले पर विचार किया गया था, जो कि हर जगह के चतुर और भावुक लोगो के दिमागो मे चक्कर लगा रहा था। यह एक ऐसा मार्गप्रदर्शन था जिसके लिए दुनिया इन्तजार करती मालूम होती थी और लाखो आदमियो पर इग्लैण्ड और अमरीका में भी उसकी प्रतिक्रिया हुई। हमे यह साफ मालूम होना चाहिए कि हम किसलिए लड रहे है और हमे अपने राजनीतिज्ञो और नेताओ को घेर लेना चाहिए कि वे मसलो को स्पष्ट करे। कांग्रेस की कार्य-समिति ने स्पष्ट और निश्चित सवाल पूछे थे। उन्हे टालना मुमकिन नही था, क्योंकि टालमटूल खुद जवाब के समान थी।

अब जितना हमने पहले महसूस किया था, उससे भी ज्यादा हम महसूस करते है कि कार्यसमिति ने हिन्दुस्तान और विश्व-शान्ति और स्वतन्त्रता के लिए कितने गजब का काम किया है। कारण कि उसमे

महत्त्वपूर्ण मसले दुनिया की राजनीति मे आगे आगये और ब्रिटिश सरकार के लिए अपने उद्देश्यो और ध्येयो को लडाई के कुहरे मे छिपाये रखना मुश्किल होगया। उन्हे स्पष्ट और निश्चित किया जाना लाजिमी होगया। जिस सकट मे उन्होने अपने को पाया, उसके लिए हम उनसे अपनी हमदर्दी जाहिर करते है।

और अब हमे ब्रिटिश सम्राट की सरकार के एक ऊँचे अधिकारी से अपने सवाल का जवाब मिल गया है। वाइसराय का लम्बा वक्तव्य हमने पढ लिया है और जितना उसे पढते है उतना ही हमारा अचरज बढता जाता है। वाइसराय ने कहा है कि "विश्व-राजनीति और इस मुल्क की राजनीतिक सचाइयो को ध्यान मे रखकर परिस्थिति का सामना करना चाहिए।" वैसा करने की हमने कोशिश की है और हम सिर्फ इसी नतीजे पर पहुँच सकते है कि वाइसराय और ब्रिटिश सरकार हमारी दुनिया से बिल्कुल दूसरी ही दुनिया मे रहते है कि जिसकी राजनीति और जिसके ध्येय हमे कोरी दिमागी कल्पनाएं मालूम होती है, जिनका उस दुनिया की असलियतों से कोई मतलब नही है जिसमें हम रहते है। क्या हिन्दुस्तान और दुनिया मे पिछले २० बरसो मे कुछ भी नही हुआ है जो हमसे २० बरस पीछे देखने के लिए कहा गया है? इस प्रगतिशील और तेजी से दौड़ती हुई दुनिया में रोज बडे-बडे परिवर्तन हो रहे है और गुजरा हुआ एक साल बहुत पुराना इतिहास दीखता है। फिर २० वर्ष की तो बात ही क्या?

वाइसराय जो कहते है वह काफी महत्त्वपूर्ण है; जो-कुछ वह नही कहते हैं वह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। उनके तमाम वक्तव्य में कही भी आत्म-निर्णय का, जनतन्त्र का, स्वतन्त्रता का जिक्र नही है। फिर भी इन तमाम या कुछ शब्दो के साथ ब्रिटिश राजनीतिज्ञो ने खूब

खिलवाड किया है। अब हम जानते है कि ब्रिटिश सरकार क्या नापसन्द करती है ?

हमसे कहा गया है कि युद्ध की इस शुरू की हालत मे युद्ध के उद्देश्यो की घोषणा करना सम्भव नही है। यह कथन उस हालत मे एक पूरा स्पष्टीकरण होता जबकि युद्ध मे लगा हुआ देश फतह करने पर कमर कसे हुए हो और उस समय तक न बता सकता हो कि वह कितना बढेगा जबतक कि जीत के बारे मे उसे भरोसा न होजाये। लेकिन आत्म-रक्षा या आक्रमण से बचाव या कुछ ध्येयो को कायम करने के लिए किये जानेवाले युद्ध से इसका कोई वास्ता नही है। हिन्दुस्तान को एक आज़ाद मुल्क स्वीकार करने, या उपनिवेशो मे दूसरी तरह की नीति अमल मे लाने या साम्राज्यवादी ढॉचे को मिटा देने पर लडाई की प्रगति का असर ही किस कदर पड सकता है ?

वाइसराय ने ब्रिटिश प्रधान मन्त्री के शब्द लिये है और इनसे वह भेद प्रगट होता है। युद्ध से वह कोई भौतिक लाभ नही उठाना चाहते है कि एक बेहतरीन अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति अमल मे आये जो युद्ध को रोके और जो यूरोप मे शान्ति कायम करने का एक जरिया पैदा करे। उनके वक्तव्य का सार यही है। वह यूरोप तक ही महदूद है, दूसरे महाद्वीपो का उसमे नाम तक नही है। जनतन्त्र या वैसी ही खयाली बातो के बारे मे उसमे कोई चर्चा नही है। ब्रिटिश साम्राज्य अपना और विस्तार नही करना चाहता। उसके पास तो काबू रखने लायक से ज्यादा पहले से ही है। लेकिन जो कुछ वह कर सकता है, उसीपर डटा रहकर वह शान्ति स्थापित करना चाहता है ताकि उसके व्यापक साम्राज्य मे कोई विघ्न-बाधा न पडे। इस प्रकार युद्ध का उद्देश्य है ब्रिटिश साम्राज्य को सुरक्षित बनाये रखना, एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति का निर्माण करना

जो कि उसे सुरक्षित बनाये रख सके और हिन्दुस्तान को जबतक सम्भव हो तबतक चगुल मे बनाये रखना ।

हम फिर कहते है कि हिन्दुस्तानियों को सतुष्ट करने के लिए ऐसी बात कही जाना और उनसे उस साम्राज्यवादी प्रणाली को मजबूत करने के काम मे मदद देने के लिए कहा जाना कि जिसके वे इतने दिनो से शिकार रहे है, एक अचरज की बात है। सिर्फ वही आदमी ऐसी दलील दे सकता है जिसे न हिन्दुस्तान का कोई ज्ञान हो, न जो हिन्दुस्तानियो के स्वभाव के बारे मे कुछ भी जानता हो ।

दुनिया आगे बढ रही है और उसके साथ हिन्दुस्तान भी आगे बढ़ रहा है, और एक पीढी पहले के तौर-तरीके और भाषाएँ हर जगह पुरानी पड गयी है । हिन्दुस्तान मे वे जितनी पुरानी पडी है, उतनी और कही भी नही । हमारे मुँह आगे की तरफ है, पीछे की तरफ नही और हम आगे ही बढेगे । न तो 'हिटलर की जय !' के नारे लगाने का हमारा इरादा है और न 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद जिन्दाबाद !' ही चिल्लाने का विचार है ।

१८ अक्तूबर, १९३९

: १२ :

बीस बरस

महायुद्ध खत्म हुआ और विजेता राष्ट्रो के बडे-बडे लोग वार्साई के शीश-महल मे दुनिया को फिर से गढने के लिए बैठे। उनमे से अटलांटिक-पार से आये हुए एक साहब ने प्रजातन्त्र और आत्मनिर्णय की और एक ऐसे राष्ट्र-सघ की बढ-बढकर बाते की कि जिससे शान्ति स्थापित होने का भरोसा हो सके। लेकिन दूसरे लोगो को, जो कि अब विजय पाने के कारण सुरक्षित होगये थे, आम लोगो से सम्बन्ध रखनेवाली इस आदर्शवादी बात मे आगे कोई फायदा नही दीखता था। जनता मे जोश पैदा करने का अपना काम वह कर चुकी थी और अब मजबूत दिमाग-वाले यथार्थवादी लोगो के योजना बनाने के काम मे उसे दखल न देने देना चाहिए था। पाँचो बडे-बडे राष्ट्रो के प्रतिनिधि जमा हुए और फिर तीन बाद मे शामिल हुए और उनकी मेहनतो से वार्साई की सधि निकल पडी। इस सन्धि से युद्ध की सारी उम्मीदे और आदर्शवाद उस ज़मीन मे गहरे दफना दिये गये जिसमे न जाने कितने बहादुर जवान आदमियो के नश्वर अस्थिपञ्जर पडे होगे। इस सधि से उनके साथ दगाबाजी हुई।

वार्साई की सधि के इस युग मे हम बीस बरस रह लिये है और हरेक नया साल दुनिया-भर के लोगो के लिए लडाई और क्रान्ति, आतक और मुसीबत लाया है, मगर फिर भी इन पुराने राजनीतिज्ञ पहरेदारो की, जिनकी वजह से लडाई हुई थी और जिन्होने यह सुलह की थी, हुकूमत जारी ही रही और वे निहायत इतमीनान से उन्ही

पुराने तरीको से चिपटे रहे जिनकी वजह से बार-बार ऐसी बरबादियाँ हुई है। लेकिन सब जगह ऐसा नही था, क्योकि एक लम्बा-चौडा भूखण्ड ऐसा भी था जहाँ एक नयी व्यवस्था आगयी थी और जो लगातार पुरानी को चुनौती दे रही थी।

इटली मे मुसोलिनी उठा और दुनिया ने फासिज्म का नाम सुना। यूरप के बहुतेरे देशो मे तानाशाहियाँ कायम हुई। अभी तक कभी न देनेवाली महँगाई ने जर्मनी के मध्यम-वर्गों को कुचल डाला। इसी बीच जेनेवा मे या किसी दूसरी जगह समझदार आदमी जमा हुए और निहायत फुरसत के साथ उन्होने नि'शस्त्रीकरण के फायदो या मुआवजों के सवाल पर चर्चाएँ की।

अचानक एक भारी आर्थिक मदी ने दुनिथा का गला दबा लिया। धनी और अभिमानी इग्लैण्ड के कान खडे होगये और वैभवशाली अमरीका हिल उठा। साल-पर-साल वह मन्दी फैलती ही गयी, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बिलकुल रुक गया और धधकते हुए अक्षरो मे उसने लिखा कि पूँजीवादी ढाँचे का खात्मा होकर रहेगा।

हिटलर आया जो वार्साई का बच्चा था पर उससे बदला लेने को उतारू था। उसने हैवानियत और बेरहमी से भरे दमन का एक नया नमूना पेश किया। अपनी जनता की राय तक को ठुकरा इग्लैण्ड ने उसकी पीठ ठोकी और आशा बाँधी कि वह सोवियट के बढनेवाले तूफान को रोकनेवाला सूरमा साबित होगा। घटना-चक्र और भी तेजी से घूमता गया। एक घटना दूसरी से आगे बढने लगी और आक्रमण पर आक्रमण होने लगे। इग्लैण्ड इन सबका विरोध करते हुए लेकिन फिर भी अपनी कार्रवाइयो से बढावा-सा देते हुए पास खडा रहा। यही मचूरिया में और बाद मे अबीसीनिया मे हुआ। बहुत-कुछ ब्रिटिश सरकार के इशारे पर

ही आस्ट्रिया पर कब्जा कर लिया। उसके बाद सितम्बर १९३८ में चेको-स्लोवाकिया की दुखद घटना घटी।

यह सब बीता हुआ इतिहास है। मगर हम उसकी ओर फिर ध्यान देते हैं, क्योंकि उसे भूलने में खतरा है। वाइसराय ने हमें बीस बरस पीछे ले जाकर अच्छा ही किया है। कम से कम इसकी वजह से हम इतिहास के पन्नों में दबी पड़ी हुई घटनाओं से अपने दिमागों को ताजा करेंगे और उनसे सबक सीख लेंगे। हम चीन में अंग्रेजों की नीति को याद करेंगे जिसने हमले की तरफ से आँखें फेर ली थी। साथ ही हम म्यूनिक की भी याद करेंगे, जो दुनिया के इतिहास की धारा को पलटनेवाली घटना थी। और स्पेन को और उसके साथ किये गये विश्वासघात की बेहद डरावनी बातों को तो भूल ही कौन सकता है? हमें याद आयेगा कि म्यूनिकवाले आदमी ही अब भी इंग्लैण्ड के काम-काज के सर्वेसर्वा हैं और वही उसकी नीति को चला रहे हैं। इसमें ताज्जुब ही क्या है कि उन्होंने हिन्दुस्तान में उसी ब्रिटिश नीति का नया वक्तव्य दिया, जोकि खुद ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बराबर बूढ़ी हो चुकी है। यह नीति तो तमाम नरम और आजादी को चाहनेवाले लोगों को कुचलने, यूरप व हिन्दुस्तान दोनों जगहों के प्रतिगामियों को खुश करने, अपने साम्राज्य को सुरक्षित करने और अपने आर्थिक व दूसरे स्थापित हितों की हिफाजत करने के ही लिए है।

क्या यह सच नहीं है कि जर्मनी के पोलैण्ड पर हमला कर देने के बाद भी मि० नेविल चेम्बरलेन जर्मनी को सन्तुष्ट करने और उसकी शक्ति और शस्त्र-बल को रूस की तरफ मोड़ने के सपने देख रहे थे? लड़ाई की घोषणा के पहले ब्रिटिश पार्लमेण्ट की जो निपटारा करनेवाली बैठक हुई, उसमें इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री अटक-अटक और सँभल-सँभलकर बोले

और अपने कंजर्वेटिव (अनुदार) साथियों तक मे उन्होंने ऐसा गुस्सा भडका दिया कि वे चिल्लाकर इस लेबर-नेता से कहने लगे कि वह राष्ट्र के पक्ष मे बोले। मि० चेम्बरलेन ने जनमत की शक्ति को भाँप करके उसी रात जर्मनी को अपनी आखिरी चेतावनी भिजवा दी।

हमले के खिलाफ और जनतन्त्र के पक्ष मे लडी जानेवाली इस लडाई के नेता ये है। म्यूनिक और स्पेन के भूत जैसे दुनिया के पीछे पडे है, वैसे ही उनके पीछे भी पडे हुए है और शान्ति और आजादी को ये नेता लोग नही ला सकते। क्या हिन्दुस्तान, जो कि नाराजी और जिद के साथ उनकी विदेशी नीति के खिलाफ रहा है, अब उन्हींके हाथ की कठपुतली बनने पर राजी हो सकता है? लेकिन इस सवाल का जवाब तो वाइसराय पहले ही दे चुके है।

बीस बरस बीत गये है और याददाश्त के बाहर जा चुके है। वाइसराय का कोई वक्तव्य भी उन्हे वापस नही बुला सकता। हिन्दुस्तान ने उनसे बहुत-कुछ सीखा है, अपनी ताकत बढायी है और बहुत से भेद-विभेदो के होते हुए भी उसने ध्येय की एकता पैदा की है। वह पीछे नही हटेगा और वह कमजोर होगा, उसे रास्ता बतानेवाले खराब होगे तो भी दुनिया उसे ऐसा नही करने देगी, क्योंकि आज दुनिया मे सबसे महत्त्व की बात है पुरानी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था का खात्मा होना और इन टूटे अण्डो को फिर मे नही जोडा जा सकता। नष्ट होती हुई इस व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करनेवाला ब्रिटिश साम्राज्य कूच करेगा और मौजूदा आर्थिक प्रणाली की जगह दूसरी आकर रहेगी।

हम पीछे नही हट सकते और न इस गतिशील दुनिया मे एक जगह खडे ही रह सकते है। और वे लोग जो इस बात को नहीं समझते या घटनाओ से कदम मिलाकर नही चल सकते, उनकी पहले से ही कोई

पूछ नही रह गयी है और वे उसी तरह से अलहदा हो जायेंगे कि जैसे कूच करती हुई फौज मे से आवारागर्द आदमी हो जाते है।

कांग्रेस ने इंग्लैण्ड की सरकार और जनता के आगे दोस्ती और सहयोग का हाथ बढाया था और चाहा था कि हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड के बीच जो लम्बा झगडा है वह खत्म हो जाये। यह एक बहादुरी का प्रस्ताव था जो कि इन एकमात्र सम्भवनीय शर्तों पर किया गया था कि हिन्दुस्तान को आजादी दी जाये और बराबरी की भावना से किसी भी सम्मिलित कार्रवाई मे एक दूसरे को सहयोग मिले। कांग्रेस ने कोई अधिकार या सत्ता अपने लिए नहीं माँगी थी। वह तो हिन्दुस्तानियो के लिए यह अधिकार चाहती थी कि वे अपनी राष्ट्रीय पंचायत चुनकर उसके द्वारा अपना विधान बनाये और सत्ता प्राप्त करे। इस समस्या का यही एकमात्र जनतन्त्रात्मक हल था। यह सबके लिए भला था और मुमकिन था कि उसकी वजह से इंग्लैण्ड से मित्रता का सम्बन्ध कायम हो जाता।

वह प्रस्ताव ठुकरा दिया गया है। लेकिन समय-चक्र चलता जा रहा है और जल्दी ही ऐसा मौका आ सकता है कि उस प्रस्ताव को भी अमल मे लाने का वक्त न रह जाये। हिन्दुस्तान के लाखो करोडो आदमियो को अब पीछे रोककर नही रखा जा सकता और अगर उनके लिए एक दरवाजा रोक भी दिया गया है तो वे दूसरे दरवाजे खोल लेगे।

१९ अक्तूबर, १९३९

: १३ :

१९१९-३९

पिछले अध्याय मे हमने बहुत थोडे मे यूरप के पिछले बीस बरसों पर नजर डाली है। हिन्दुस्तान की परिस्थिति को समझने की खातिर भी ऐसा करना जरूरी था, क्योकि यूरप दुनिया भर के तूफानो का केन्द्र रहा है और उसके भीतरी मघर्ष और विरोध के धक्के बहुत दूर-दूर पहुँचे है। हिन्दुस्तान ने इस चलते-फिरते और दुखभरे नाटक को बडी फिक्र और दिलचस्पी के साथ देखा है और उसके सम्बन्ध मे अपनी राय जोरदार शब्दो मे व साफ-साफ जाहिर करदी है। चूँकि हिन्दुस्तान साम्राज्यवाद का विरोध करता आ रहा था, इसलिए लाजमी तौर पर उसकी सहानुभूति हमलो के शिकार होनेवाले मुल्कों से रही और खुद अपने हित के लिए भी वह फासिज्म और नात्सीवाद की बढती हुई लहर का मुकाबला करने को प्रेरित हुआ। चीन, अबीसीनिया, आस्ट्रिया, फिलस्तीन, चेको-स्लोवाकिया और स्पेन की घटनाओ मे हिन्दुस्तानियो को गहरा धक्का पहुँचा और इनके बारे में इंग्लैण्ड की जो साम्राज्यवादी नीति है उसपर उन्होने नाराजगी और निन्दा जाहिर की। हिन्दुस्तान को भविष्य का और उस लडाई का खयाल आने लगा जो आये बिना न रहनेवाली जान पडती थी और इस सम्बन्ध मे उसने अपनी नीति तय की। ज्यों-ज्यो जमाना बदलता गया हिन्दुस्तान के विचारो मे विकास होता गया और उसने अपने आपको बदलती हुई परिस्थितियो मे ढाल लिया।

१९१९ का साल हिन्दुस्तान के लिए दिशा-परिवर्तन का समय था।

मांटेग्यू आकर लौट गये थे और उनकी रिपोर्ट प्रकाशित होगयी थी। जैसी कि हमेशा हिन्दुस्तान में अंग्रेजों की नीति में रहा है, उसके लिए वक्त नहीं रह गया था। हिन्दुस्तानियों ने भारी बहुमत से उसको और उस कानून को जो इसके मातहत बनाया गया था, ठुकरा दिया। कुछ नामी हिन्दुस्तानी, जो कि अबतक कांग्रेस में थ, दूसरी तरह सोचते थे, और उन्होंने कांग्रेस को छोडकर नरम दल बना लिया। लेकिन उनका अलग होना ही इस बात को, जाहिर कर रहा था कि राष्ट्र कहाँ है ? क्योंकि मुट्ठीभर लोग ही उस भारी बहुमत के खिलाफ थे। १९१९ की प्रस्तावित सुधार-योजना को जो अंग्रेज सरकार आज हमें दे रही है, हमने उसी साल बडी हिकारत के साथ ठुकरा दिया था। १९१९ में भी तो वह जैसी चाहिए वैसी न थी।

रौलट ऐक्ट आया और हिन्दुस्तान के राजनैतिक मंच पर महात्मा गांधी के रूप में एक बडी जबर्दस्त तात्त्विक शक्ति प्रकट हुई जो हमारे राजनैतिक जीवन में एक क्रान्ति लायी। पंजाब का मार्शल लॉ, जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड, खिलाफत-आन्दोलन और असहयोग—बस हिन्दुस्तान की जनता में एक हलचल मच गयी, कि जैसी अबतक कभी नहीं देखी गयी थी। स्वराज हमारा ध्येय था और उसीके लिए हम लड रहे थे, इस प्रस्तावित विधान या उस वायदे के लिए नहीं जो कि ब्रिटिश मंत्रीगण हमसे खुशी-खुशी करलें।

इन हाल की घटनाओं पर नजर डालने की हमें जरूरत नहीं है, हालाँकि घटना-चक्र इतनी तेजी से घूमता रहा है कि ये हाल के वाकयात आज बहुत पुराने-से पड गये जान पडते हैं और आज की पीढ़ी के बहुत-से लोगों को उनका पता तक नहीं है। उनकी याददाश्त कमजोर है। लेकिन इन बरसों में हिन्दुस्तान का नक्शा बदल गया है और खेतों

के गरीब और नाचीज़ किसान तक की आज पहले से बहुत काफी कायापलट हो चुकी है।

बारह बरस पहले मद्रास मे काग्रेस ने स्वतन्त्रता की बात कही थी और दो बरस बाद रावी-तट पर हमने उसकी प्रतिज्ञा ली और उसे पाने का पवित्र सकल्प किया। उसके बाद सविनय आज्ञा-भग आया और हिन्दुस्तान के नर-नारियो ने मिल-जुलकर तकलीफो और कुर्बानियो के बीच फिर से वह प्रतिज्ञा ली। एक साम्राज्य ने अपनी ताकत से उन्हे कुचल देने और उनमे फूट पैदा कर देने की कोशिशे की और थोड़े दिनों के लिए उसे ऊपरी कामयाबी मिली भी, लेकिन आजादी की उस तेज ज्योति को जो हमारे दिलो मे जोश भर रही थी और मन मे रोशनी कर रही थी—कौन कुचल सकता था, कौन बुझा सकता था?

फिर गोलमेज़ परिषद् का सूना-सूना सिलसिला शुरू हुआ और अग्रेजो की कुटिल राजनीति ने हिन्दुस्तान के उन सब लोगो को, जो उसके आजाद होने की इच्छा के विरोधी और प्रतिगामी थे, इकट्ठा और सगठित करने की कोशिश शुरू की। उसके बाद आया १९३५ का ऐक्ट और हमने उसे नामजूर किया। तो भी लम्बे बहस-मुबाहिसे के बाद हमने मत्रि-मण्डल बनाने का फैसला किया। इसका निर्णय तो इतिहास ही करेगा कि तब हमने ठीक किया था या गलत; मगर हम उस ऐक्ट के खोखलेपन को और उसमे हमारे चारों ओर जो खाइयाँ होगयी थी उन्हे तो जान ही चुके है। पीढियो से साम्राज्यवादी और धौस जमानेवाली स्वेच्छाचारी हुकूमत के फलस्वरूप हम बडे-बडे मसलों में घिर गये। अपने-अपने इलाके मे मनमानी करनेवाले देशी राजाओं की अग्रेज अधिकारियो ने हिमायत और मदद की। एक पुराने ज़माने की भूमि-पद्धति जनता पर भारी बोझ बन रही थी। हमारे शासको की विदेशी हितों

और उद्योगो को सरक्षण देने और अपने सरक्षण और विशेषाधिकार की नीति के कारण न तो हमारा व्यापार ही तरक्की कर सकता था और न उद्योग-धन्धे ही । हमारी आर्थिक नीति ऐसी बनायी गयी थी कि वह लन्दन शहर का ही भला कर सके । ब्रिटिश हितो की खातिर हमारी मालगुजारी को बडे पैमाने पर गिरवी रखकर नौकरियाँ सुरक्षित की गयी थी । यह था वह 'प्रान्तीय स्वराज' जो हमे मिला । इसमे हालाँकि जनता के चुने हुए मत्री लोग हुकूमत की कुर्सियो पर बैठाये गये थे, लेकिन शासन का साज-सामान तो वही पुराने ढग का, तानाशाही और नौकरशाही का था । उसे वे नयी-नयी बाते बिल्कुल पसन्द न आती थी और वह उसमे रोडे अटकाने मे अपनी तरफ से कोई कसर नही रखती थी । इसमे भी बदतर बात जो थी वह यह थी कि देश मे विच्छेदकारी वृत्तियो और प्रतिगामी दलो को बढावा देने की उनकी कोशिश लगातार जारी थी ताकि उसी शासन की जड कमजोर पड जाये जिसमे सहयोग देने का वे दम भरते थे ।

इतना होते हुए भी, प्रान्तीय सरकारो ने बहुत-कुछ अच्छे-अच्छे काम किये और जनता के बोझ को थोडा-बहुत हल्का किया । लेकिन तकलीफे उनकी हमेशा बढती ही रही और साफ नजर आने लगा कि हिन्दुस्तान की समस्या तबतक सुलझ नही सकती, जबतक कि जनता के हाथ मे सच्ची ताकत न आ जाये । स्वेच्छाचारी और गैरजिम्मेदार सरकार तो हथियारो के बल पर देश को कब्जे मे करके उसपर हुकूमत चला सकती थी, लेकिन जनता की चुनी हुई और जिम्मेदार सरकार ऐसा तभी करेगी जबकि उसके पास असली ताकत होगी और उसमे भी जनता की राय होगी । बीच की कोई भी स्थिति अस्थायी होती और ज्यादा अर्से तक नही चल सकती, क्योकि ताकत तो मिली

थी, पर उत्तरदायित्व नही दिया गया था।

तो, त्रिपुरी-काग्रेस मे इन पिछली घटनाओ के अनिवार्य और आवश्यक फलस्वरूप 'राष्ट्रीय माँग' पेश की गयी। 'प्रान्तीय स्वराज'—जैसा भी वह था—अपने आप खत्म हो चुका था और उसकी जगह हिन्दुस्तान का ही बनाया हुआ शासन-विधान—भारतीय स्वराज का हुक्मनामा—आना जरूरी था। यह माँग कोई नयी न थी, क्योकि काग्रेस विधान-पचायत की माँग बरसो से करती आ रही थी। काग्रेस ने १९३५ का शासन-विधान कभी मजूर नहीं किया था। तमाम प्रान्तीय धारासभाओ का सबमे पहला प्रस्ताव इसी अस्वीकृति पर जोर डालने और विधान-पचायत की माँग करने के बारे मे था। तो यह माँग नयी नही थी। हाँ, उसमे अब लाजमीपन और जुड गया था। सघर्ष को छोडकर अब दूसरा कोई रास्ता नही रहा था।

युद्ध बीच मे आ पडा और सब कुछ अस्तव्यस्त हो गया और हम नये तौर-तरीको मे सोचने के लिए मजबूर हुए। हिन्दुस्तान की उस वक्त की व्यवस्था निहायत गैरवाजिब और आगे न चल सकनेवाली हो गयी। हमारे सामने दो रास्ते थे और उनमे से किसी एक को हमे पसन्द करना था—या तो आगे बढकर स्वतन्त्रता को हासिल करे और राष्ट्र को आजाद बनाये या फिर प्रान्तीय स्वशासन के अँधेरे की छाया की तरफ लौट जाये, जहाँ हमपर प्रभुतावादी केन्द्रीय सरकार का कब्जा रहे। युद्ध से और दूसरे मसले भी उठ खडे हुए, मगर फिलहाल तो हम अपनी अन्दरूनी हालत को ही ले।

पीछे हटने की तो हिन्दुस्तान सभावना और कल्पना तक नही कर सकता था। मौजूदा परिस्थितियो मे काम चलना मुश्किल हो गया था। इसलिए लाजमी तौर पर हिंदुस्तान ने अपनी पुरानी 'राष्ट्रीय-

माँग' दुहरायी और स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में अपना सहयोग देने का अभिवचन दिया। इस बात पर भी हिन्दुस्तान ने जोर नहीं दिया कि उसे बिना उसकी राय लिये और उसके अपनी घोषणा कर चुकने पर भी वह लड़ाई में शरीक देश मान लिया गया। कोई भी आत्म-सम्मान रखनेवाला देश उसकी जैसी स्थिति में इससे बढ़कर सुन्दर, स्पष्ट और उदारता का अभिवचन नहीं दे सकता था। इसमें सौदा पटाने की बाजारू भावना बिल्कुल नहीं थी।

फिर भी इसको हिकारत के साथ ठुकरा दिया गया है और हमसे कहा गया है कि हम मुड़कर २० साल पहले उस चीज की तरफ देखें, जिसे हमने उसी वक्त यह कहकर अलग फेंक दिया था कि वह विचार करने लायक नहीं है। वे सोचते हैं कि हम हिन्दुस्तान की पिछली पीढ़ी के इतिहास को भूल जायें, वर्तमान को न देखें, सारी दुनिया में जो कुछ हो रहा है उसपर ध्यान दें, अपनी गम्भीर प्रतिज्ञाओं को तोड़ दें और अपने साम्राज्यवादी शासकों के इशारे पर उन सपनों और आदर्शों का गला घोंट दें, जिनसे हमें जिन्दगी मिली है, ताकत हासिल हुई है।

वक्त गुजरता जा रहा है दुनिया बदलती जारही है और कल की राष्ट्रीय माँग इतिहास की पुरानी घटना हो चुकी है। कल शायद वह भी नाकाफी हो जाये।

२० अक्तूबर, १९३९

: १४ :

आज़ादी ख़तरे में है !

लन्दन की अनगिनती दीवारो और घरो पर और इग्लैण्ड-भर मे मोटे-मोटे अक्षरो मे ये वाक्य लिखे हुए है—**"आजादी खतरे में है। अपनी पूरी 'ताकत' लगाकर उसे बचाओ"** यह ब्रिटिश सरकार की अपनी जनता से अपील है कि वे लडाई मे शरीक हो और आजादी के लिए अपनी जाने कुर्बान कर दें। किसकी आजादी के लिए ? हिंदुस्तान की आजादी के लिए नही, यह हम जानते है, क्योकि ऐसा हमसे कहा गया है। ब्रिटिश और दूसरे साम्राज्यवादो के गुलाम देशों के लिए भी नही, क्योकि हमारी मॉग के बावजूद इग्लैण्ड के सम्राट् उस बारे मे समझदारी के साथ खामोश है। क्या इग्लैण्ड यूरप की आजादी के लिए लड रहा है, जैसा कि मि० चेम्लरलेन ने कहा है ? यूरप के किस देश के लिए और कौनसी जनता के लिए ? हमे खयाल आता है एक छोटे से देश का कि जो किसी दिन था और जिसे चेको-स्लोवाकिया कहते थे। हालैण्ड के प्रधानमन्त्री ने साल भर पहले जिसके बारे मे कहा था, "वह दूर-दराज का देश जिसके बारे मे हम कुछ नही जानते" और फिर उसीका खात्मा करने चले थे। एक दिन स्पेन में भी एक बहादुर जनसत्तात्मक प्रजातन्त्र था, लेकिन उसको उन लोगो ने मटियामेट कर दिया जो कि उसके दोस्त बनने का ढोग रचते थे और जनतन्त्र की लल्लो-चप्पो करते थे।

एक दिन पोलैण्ड भी था। पर अब नही है ? क्या पुराना पोलैण्ड फिर उठेगा ? क्या मि० चेम्बरलेन यह मानते है या इसके लिए लडते है ? आधा पोलैण्ड आज उस आजादी से भी ज्यादा पा गया है

जो उसे पहले भी मिली होगी और आज मास्को की पार्लमेण्ट मे उसके प्रतिनिधि उसकी तरफ से बोलते है। यह अजीब सी बात है कि जबकि हम हिन्दुस्तान मे राष्ट्रीय पचायतो और विधानो पर लगातार बात ही किये जाते है, तब युद्ध मे पडा एक देश कुछ हफ्तो मे ज्यादा आजादी-वाला विधान लेकर उठ खडा होता है।

इग्लैण्ड किसलिए लड रहा है ? मि० चेम्बरलेन किसकी आजादी के लिए इतने उतावले है ? अगर वह अग्रेजो की आजादी है तो उन्हे अपने आदमियो से अपील करने का पूरा हक है। लेकिन बर्नार्ड शॉ और दूसरे लोगो ने हमे बताया है कि किस तरह इग्लैण्ड के हरे-भरे और मनोरम प्रदेशो से आजादी युद्ध-कालीन कानूनो की वजह से तेजी के साथ हवा होती जा रही है। जर्मनी के जिस फासिज्म और प्रभुतावाद की अग्रेजो ने निन्दा की है, वे ही धीरे-धीरे इग्लैण्ड मे घुसे आ रहे है और अग्रेजो की जनतत्रात्मक क्षमताओ को मार रहा है। इग्लैण्ड आज जनतत्रात्मक देश नही है और जिस साम्राज्यवाद का उसने बाहर लालन-पालन किया था, वही फासिज्म के बाने मे उसके पास वापस लौट रहा है।

जब हमारे पूछने पर भी अग्रेज हमे बताते नही, तो हमे कैसे मालूम हो कि इग्लैण्ड किसलिए लड रहा है ? लेकिन दिखावटी खेल जो हो रहा है, उससे हमे रोशनी मिल सकती है और हमारे सवालो का जवाब मिल जाता है। भले ही सरकारी अफसरो के ओठ सिले हुए हो, मगर उनके कामो से उनकी मशा साफ दिखाई दे जाती है। शाति के समय जैसा हमने साम्राज्यवाद का पूरा बोलबाला देखा, वैसा ही युद्ध के जमाने मे भी हम देख रहे है। और ब्रिटेन का शासकवर्ग अपने साझे के हिस्से और स्थापित स्वार्थों से चिपका हुआ है। दूसरो की कीमत पर अपने हिस्सों को बढाने की जो आजादी उसे इस समय मिली हुई है, उसे गँवा

देने का उसका इरादा नही है । यही आजादी है कि जिसके लिए ब्रिटेन के शासक लड रहे हैं । इसी आजादी की रक्षा के लिए वे अपने देश के पौरुष और यौवन का आवाहन कर रहे है और हमारे पौरुष को भी चुनौती देना चाहते हैं ।

लार्ड जेटलैण्ड हमसे कहते है—**"सम्राट की सरकार इस स्थिति को कबूल करने में असमर्थ है ।"** और वह 'स्थिति' यह है कि काग्रेस ने माँग की है कि हिन्दुस्तान को 'स्वतन्त्र देश' घोषित कर दिया जाये और उसे अधिकार हो कि बिना किसी बाहरी दखल के ऐसी राष्ट्रीय पचायत के जरिये वह अपना विधान बना ले कि जो व्यापक-से-व्यापक मताधिकार पर चुनी गयी हो । साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के बारे मे वह समझौते से काम ले और समझौते से ही अल्पसख्यको के अधिकारो को सरक्षण दे । यह उससे हो नही सकता । इस प्रकार एक सीधा जवाब पाकर हमारा भी बोझ हल्का हो गया है ।

जेटलैण्ड साहब आगे कहते है—**'इतने दिनो से इगलैण्ड का हिन्दुस्तान के साथ जो सबध रहा है, उससे सम्राट की सरकार की हिन्दुस्तान के प्रति कुछ जिम्मेदारियाँ हो जाती है । इसलिए हिन्दुस्तान के शासन के स्वरूप को तैयार करने में कोई भी दिलचस्पी न दिखाकर वह उसे यो ही छोड नहीं सकती ।'** हमने खुद स्पष्ट रूप से सोचा था कि सम्राट् की सरकार के आर्थिक या औद्योगिक या दूसरे हितो के प्रति जो जिम्मेदारियाँ है, उन्हे वह भूल या दरगुजर कर नही सकेगी और उनका आजादी मे जो प्रेम है, वह जब इन जिम्मेदारियो के साथ टकरायेगा तो सरकार कडाई के साथ उसको दबायेगी । उन उदारमना मार्क्विस के इस बचाव और इस सफाई के लिए हम उनके मशकूर है । अब इसकी चर्चा न की जाये कि हिन्दुस्तान की आजादी की घोषणा के रास्ते मे साम्प्रदायिक

मामलो से रुकावट आती है। रुकावट डालनेवाला तो लदन का नगर है और हे वे सब, जिनका कि वह प्रतिनिधित्व करता है। लार्ड और कॉमन-सभा वाले तो उसकी मर्जी पर चलनेवाले हे।

लम्बे बहस-मुबाहमो और इनायतभरी सलाहो और मुलाकातो और साम्राज्यवाद के फौलादी पजो को ढकने और छिपाने के खिलवाड से हम कुछ उकना-से गये हे। अब तो हम असलियत को देखना और उसका सामना करना ज्यादा पसन्द करते हे। हिन्दुस्तान मे स्वेच्छाचारी हुकूमत करते रहना और विधान को बिल्कुल रोक देना आजादी के साथ होनेवाले इस मजाक से कही अच्छा है। हमारे लिए भी दफ्तरो की कुर्सियो मे बॅधे रहने और हमारे ऊपर थोपे गये विधान के कैदी बने रहने से बेहतर यह है कि हम बयाबान मे बसे।

सम्राट् की सरकार हमारी स्थिति को कबूल करने मे असमर्थ है। हमारे लिए भी यह असभव है कि हम उनकी स्थिति को या स्वतत्र राष्ट्र को छोडकर और किसी भी स्थिति को कबूल करे। इस प्रकार दोनो आमने-सामने खडे हे और बीच मे है एक चौडी खाई जिसे पाटा नही जा सकता। अब तो भविष्य—लडाई का और क्रातिकारी तब्दीलियो का भविष्य—ही हमारे बीच फैसला करेगा। हम भविष्य का महज इन्तजार ही नहीं करेगे, बल्कि उसे बनाने मे मदद देंगे। इस वक्त तो हम दो खुली बेबसियो की टक्कर को मजूर करे और भविष्य के बारे में सोचे और उसके लिए अपने को तैयार करे।

लेकिन तबतक हम कम-से-कम एक बार ब्रिटिश सरकार के आदेश को कबूल कर ले और अपनी जनता को याद दिला दे कि—

"आजादी खतरे में है! अपनी पूरी ताकत लगाकर उसे बचाओ!!"

८ नवम्बर, १९३९

: १५ :

रूस और फ़िनलैण्ड

रूस और फिनलैण्ड का झगडा युद्ध मे बदल गया है। किसी ऐसे छोटे देश के साथ हमारी सहानुभूति होना स्वाभाविक ही है जिसपर एक बडी ताकत ने हमला किया है। लाजिमी है कि नात्सी हमलो की हाल की मिसालों के साथ हम रूस के अकारण किये गये आक्रमण की तुलना करे। क्या हम भूल सकते है कि बरसो से सोवियट रूस ने ऐसे सब आक्रमणो की निन्दा की है और ऊँची आवाज से हमला-वर राष्ट्र के खिलाफ कारंवाई करने की माँग की है?

ये प्रतिक्रियाएँ अनिवार्य है। मगर फिर भी हम यह याद रखे कि हम युद्ध के दिनो मे रह रहे है और हमारे चारों तरफ एक-तर्फा खबर और प्रोपेगैण्डा का जाल फैला है। अगर हम इन खबरो और प्रोपेगैण्डा की कमजोर और फिसलानेवाली नीव पर अपनी आखिरी राय कायम कर लेगे, तो ऐसा करना न सिर्फ असुरक्षित ही होगा बल्कि हम उससे गलत रास्ते पर जा सकते है। हमारे लिए घटनाओ को सही दृष्टिकोण से देखना और पक्षपातपूर्ण प्रोपेगैण्डा से बहक न जाना उतना जरूरी पहले कभी न था, जितना कि आज है। फिनलैण्ड के साथ हमारी सहानुभूति है, लेकिन उन सत्ताओं के साथ नही जो मतलब के लिए फिनलैंड से बुरा फायदा उठा रही है। फासिस्ट इटली तक पुकारकर कहता है—'हाय, बेचारा नन्हा-सा फिनलैण्ड!' और रूस द्वारा फिनलैण्ड पर किये गये आक्रमण पर बडी गभीरता के साथ भय प्रकट करता है।

हम ऐसे जमाने में रह रहे है कि जो बहुत ही हल्ले-गुल्ले और

आक्रमणमूलक सत्ता-राजनीति का जमाना है। आज मनुष्य के व्यवहारों और अन्तर्राष्ट्रीय कानून मे हिंसा और हिंसा की धमकी का बोलबाला है और जहाँतक सरकारो का सम्बन्ध है, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य रहे ही नही है। दुनिया मे 'मीन कैम्फ' का सिद्धान्त नात्सियो के बल या चालो के बनिस्बत कही अधिक प्रभावशाली रूप मे फैला हुआ है। यह सिद्धान्त कोई नया नही है, हालाँकि इतनी स्पष्टता और बेहयाई के साथ शायद ही कही बतलाया गया होगा जितना नात्सी दुनिया के इस धर्म-ग्रंथ मे बताया गया है। पुराने साम्राज्यवादो ने तो ठिकाने लगकर इज्जत की बाहरी पोशाक पहन ली और मीठी और नरम भाषा मे बोलने लगे, लेकिन वह नीति जिसने गुजरे जमाने मे उनपर अधिकार रखा और इस जमाने मे भी रखती है 'मीन कैम्फ' की नीति है, क्योंकि वह साम्राज्यवाद का भी उसी तरह सार है, जिस तरह वह नात्सीवाद का सार है। दोनो मे फर्क यह है कि नात्सीवाद इस नीति को घर-बाहर दोनो जगह लागू करता है। साम्राज्यवाद उसे खासकर बाहर लागू करता है और घर पर जनतन्त्र का दिखावा करता है। लेकिन जब फासिज्म की प्रतिक्रिया और रीति-नीति पुराने साम्राज्यवादो के घरो मे घुस आती है तो वह फर्क कम हो जाता है। युद्धकालीन परिस्थितियो के बुर्के मे फ्रास आज सैनिक तानाशाही शासन मे रह रहा है, इंग्लैण्ड ज्यादा-से-ज्यादा प्रतिगामी होता जा रहा है।

सोवियट रूस की इंग्लैण्ड और फ्रास ने बरसो से अवहेलना और बेइज्जती की, तो वह भी उनपर चढ बैठा है और उसने उन्हे दिखा दिया कि वह भी सत्ता-राजनीति का खेल सफलतापूर्वक खेल सकता है। दुनिया भौचक रह गयी और यूरोप मे सारा सतुलन ही एकाएक बदल गया। रूस एक ताकतवर राष्ट्र बन गया और उसकी इच्छा की भी वकत होने

लगी। लोग तेजी से क्रेमलिन के महल मे कदमबोसी के लिए जाने लगे। रूस ने अवसरवादी का खेल खेला और पश्चिमी देशो की कूटनीति का जो नमूना था, उसीके मुताबिक आश्चर्यजनक होशियारी के साथ खेला। उसने कहा कि क्रियात्मक रूप से वह भी यथार्थवादी है। और यथार्थवाद के नाम पर जो कुछ उसने किया, उससे हमे बहुत दुख पहुँचा है और यूरोप और सुदूर पूर्व मे हाल मे उसकी जो नीति रही है, उसे समझना बहुत मुश्किल है।

हमारा विश्वास है कि वास्तविक राजनीति मे सोवियट रूस ने जो ये दुस्साहसपूर्ण कार्य किये उनसे उसके उद्देश्य को नुकसान ही हुआ है, चाहे सत्ता-राजनीति की भाषा मे उसकी ताकत बढ़ गयी हो। कारण यह है कि रूस की शक्ति तो उन आदर्शवादो और सिद्धान्तो मे थी जिनका कि वह समर्थन करता था। वे सिद्धान्त भले ही आज भी वहाँ हो—कौन जानता है ?—लेकिन आदर्शवाद तो कमजोर पडता जा रहा है और दुनिया इस हानि से बहुत-कुछ खो बैठी है। हम दावे के साथ कह सकते है कि लडाई के इन दिनो मे भी निरे अवसरवाद से मिलनेवाली ऐसी कामयाबी से जिसमे कोई नैतिक सिद्धान्त नही है कोई भी देश बहुत दूर नही जा सकता।

लेकिन रूस के बारे मे फैसला करते समय हमे याद रखना चाहिए कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने उसके साथ जो कुछ किया है, उसीका बदला वह उन्हे चुका रहा है। ये राष्ट्र आज अगर डरके मारे हाथ जोड रहे है, क्योकि उनके साथ चालाकियाँ चली गयी है और उन्हे हराया गया है, तो इससे हमारे हृदय में उनसे सहानुभूति होना जरूरी नहीं है।

इग्लैंड और कुछ दिन पहले फ्रास की बुनियादी नीति सोवियट की नीति के खिलाफ रही है। उन्होंने इस आशा से नात्सी जर्मनी के आगे

समर्पण कर दिया कि हेर हिटलर पूर्व की ओर बढेगा और सोवियट को खतम कर देगा। उन्होने रूस के साथ ऐसे वक्त मे भी, जबकि खतरा उनके सिर पर खडा था, सुलह करने से इनकार कर दिया। अपनी साजिशो मे ये नाकामयाब रहे। अब भी जबकि लडाई चल रही है हर वक्त अन्दर-ही-अन्दर यह कोशिश जारी है कि उसे सोवियट-विरोधी युद्ध बना दिया जाये। पिछले तीन महीनो मे जो कुछ हुआ है उसके बावजूद अब भी यह मुमकिन समझा जाता है कि घटना-चक्र एकदम पलटे और पश्चिमी राष्ट्र रूस के खिलाफ सयुक्त हमला करने के लिए जर्मनी और इटली के साथ मिल जाये। फ्रेंच सरकार आज जितनी सोवियट-विरोधी है, उतनी और कोई सरकार नही है। हाल ही मे रूस के पोलैण्ड पर हमला करने से भी पहले ब्रिटिश, अमरीकन और फ्रेंच अखबारो मे रूस पर जोरो के हमले हुए है। खबर है कि इटली फिनलैण्ड को हथियार, हवाई जहाजो की मशीने और गोला-बारूद भेज रहा है। इटली के वाल्टियर भी वहाँ भेजे जायेगे, ऐसी सभावना है।

साफ है कि यह मामला रूस और फिनलैण्ड के बीच का ही नही है, बल्कि उससे बहुत-कुछ ज्यादा है। इस सबसे यही पता चलता है कि उस सोवियट-विरोधी मोर्चे ने जिससे रूस के राजनेता बरसो से डरते आरहे है, ऐसी अजीब शक्ल अख्तियार की है। इस बात से डरकर इस खतरे का मुकाबिला करने के लिए रूस ने अपने चारो तरफ किलेबन्दी करने की कोशिश की है और बाल्टिक राज्यो मे उसकी जो नीति रही है, वह भी इसी बात को जाहिर करती है। फिनलैण्ड का डर उसे नही है, बल्कि डर उसे यह है कि कही फिनलैण्ड के प्लेटफार्म पर कूद-फाँदकर दूसरे राज्य उसपर हमला न कर दे।

कुछ बरसो से यह बात सब जानते है कि नात्सियो ने कूटनीति से

फिनलैण्ड मे होकर रूस पर हमला करने की योजनाएँ बनायी थी। नकशे पर निगाह डालने से पता चलेगा कि यह कितना व्यावहारिक है और किस प्रकार फिनलैण्ड की सरहद से लेनिनग्रेड के बडे नगर तक आसानी से फौज जा सकती है। इस बात को ध्यान मे रखते हुए सोवियट सरकार की अपने इस महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध केन्द्र को बचाने की उत्सुकता समझ मे आ सकती है।

जबसे इग्लैण्ड-फ्रास-जर्मनी की यह लडाई शुरू हुई है, तभी से सोवियट की नीति सभावित हमले से अपने को बचाने और अपनी स्थिति को मजबूत करने की रही है। यह नीति (सधि के बावजूद भी) नात्सियों और अग्रेजो के दावो के खिलाफ रही है। असल मे वह स्वार्थपूर्ण रूप से सोवियट-समर्थक रही है। हाल ही मे रूस ने जो-कुछ किया है, उससे हम सहमत नही है, लेकिन दुश्मनो के सभावित मेल के खिलाफ अपने बचाव की उसकी हार्दिक इच्छा को हम पूरी तरह से समझ सकते है। नतीजा यह हुआ है कि इस नीति से मित्र-राष्ट्र जितने कमजोर हुए है, उससे ज्यादा नात्सी जर्मनी कमजोर हुआ है। जर्मन सत्ता उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व मे शिकजे मे आ गयी है और अगर सोवियटो को नही हटाया जायेगा, तो उन दिशाओ मे नात्सियों के बढने के तमाम सपने खत्म हो जायेगे।

हम फिर इस बात को याद रखे कि ब्रिटिश और फ्रेंच साम्राज्यवाद को जितनी घृणा नात्सीवाद से है, उससे कही ज्यादा सोवियट रूस से है। इस बात की सभावना है, और इसको हम दरगुजर नही कर सकते कि कुछ राष्ट्र आपस मे मिल जाये और सोवियट के खिलाफ खडे होकर उसे नष्ट करने की धमकी दे। हम नही सोचते कि इतने पर भी उनकी जीत हो सकती है। लेकिन रूस का जो महान् प्रयोग चल रहा है, उसमे

कोई रुकावट आ गयी या वह खत्म हो गया, तो यह बडे दुःख की घटना होगी। यह जरूर है कि इस प्रयोग मे बहुत-सी अवाछनीय बाते भी हुई है, जिनपर हमने बहुत अफसोस किया है, लेकिन फिर भी लाखो-करोडो सर्व-साधारण लोग उसपर आशा बाँधे हुए है।

सोवियट रूस ही था जिसने खुशी के साथ फिनलैण्ड को आजादी द दी और सिर्फ कुछ ही दिन गुजरे फिनलैण्ड के प्रधान मन्त्री ने खुद कहा था कि सोवियट की माँगो मे फिनलैंड की आजादी को कोई खतरा नही हुआ। लेकिन फिनलैण्ड के पीछे छिपकर तो दूसरी ताकते वार करने लगी और आज फिनलैण्ड मे जो कशमकश चल रही है, वह इसी सघर्ष का फल है।

इसलिए हम होशियार रहे और एकतर्फा व पक्षपातपूर्ण खबरो पर समय से पहले निर्णय न करे। लेकिन जहाँतक हिन्दुस्तान के हम लोगो का सम्बन्ध है उनके लिए तो नसीहत स्पष्ट है। आज दुनिया के हरेक देश को अपने बचाव का उपाय करना होगा और हरेक आदमी को अपनी ही ताकत पर भरोसा करना होगा। हम भी अपनी शक्ति का अपने ही अहिसात्मक लेकिन प्रभावशाली ढग मे निर्माण करे, जिससे हम साम्राज्यवाद के हर तरह के हमलो का मुकाबला करके हिन्दुस्तान की आजादी हासिल कर सके।

३ दिसम्बर, १९३९

: १६ :

अब रूस का क्या होगा ?

पिछले कुछ महीनो मे बहुत-से हेर-फेर हुए है, बहुतेरी मुसीबतें आयीं है और दुनिया और भी गहरे दलदल मे फँसती जा रही है। भविष्य अनिश्चित और अन्धकारपूर्ण है और वह ज्वलन्त आदर्शवाद जो कि तीस बरसों के सघर्षो और विश्वासघातो मे भी किसी तरह बच रहा था, आज गायब होता नजर आता है। दुनिया मे लडाई और हिंसा, आक्रमण और कूटनीति और विशुद्ध अवसरवाद का बोलबाला है और आगे आनेवाली चीजों की शक्ल और भी अस्पष्ट और विरूप होती जाती है। राजनीतिज्ञो की लच्छेदार भाषा की कोई परवा नही करता, न उनपर कोई भरोसा करता है और न उनके वायदो पर ही किसीको यकीन आता है। नयी आनेवाली व्यवस्था और सच्चा होनेवाला सपना अब कहाँ चला गया ? किसके पेट से वह पैदा होगा ? क्या इस बढती हुई बदअमनी के आकाश मे विश्वबन्धुता और स्वतत्रता के उज्ज्वल भाग्य-नक्षत्र का उदय होगा ?

शायद हमारा निराश होना उचित नही है, और हम श्रद्धा और साहस खो बैठे है। भविष्य ऐसा अन्धकारपूर्ण नही है जैसा आज की दुनिया हमे सोचने को मजबूर कर रही है। मगर उस भविष्य की जडे वर्तमान ही मे है और वह उसी जमीन पर पनपेगा भी, जिसपर आज हम खडे हुए है। इसीसे आज हम हिम्मत छोडे बैठे है। लडाई और उसके साथ आनेवाले आतक से भी हम उतने निराश नही होते जितने उन आदर्शों की कमजोरी से कि जिन्होंने अबतक हमे ताकत दी है। वे

आदर्श मौजूद जरूर है, लेकिन अन्देशे पैदा हो गये हैं और वे मन को डगमगा रहे है। क्या मानव-जाति इन आदर्शों को प्रत्यक्ष करने के लिए तैयार है ? क्या वह निकट भविष्य में ही उन्हे पा सकती है ?

करीब-करीब सभी जगह (हालाँकि हिन्दुस्तान में उतनी नही) प्रगतिशील शक्तियो का कमजोर पड जाना आज सब बातो से अधिक महत्व या दुख की बात है। धक्के-पर-धक्के लगने से वे चकनाचूर होकर गिर पड़े है और उस अस्त-व्यस्त और मायूस फौज की तरह हो गये है जो नही जानती कि अब किधर मुडना है ? आशाओ और आकाक्षाओ का उनका प्रतीक सोवियट रूस उस ऊँचे सिहासन से उतर आया है, जहाँ उसके उत्कट बहादुरो ने उसे बिठा दिया था और दिखावटी राजनीतिक लाभ के लिए उसने अपनी नैतिक प्रतिष्ठा और मित्रता को बेच डाला है।

रूस के बारे मे उदासीन रहना किसीके लिए कभी आसान नही रहा, या तो उसकी खूब तारीफ की गयी है और उसे बढावा दिया गया है या फिर उससे निहायत नफरत की गयी है। ये दोनो ही रवैयें लाजमी तौर पर गलत थे, लेकिन फिर भी दोनो समझ मे आ सकते थे। जो लोग स्थापित स्वार्थो और पुराने विशेषाधिकारो को छाती से लगाये हुए थे और देखते थे कि रूस उन दोनो की जडे उखाड फेकेगा, उनमे उसके लिए घृणा होना स्वाभाविक था और जो लोग पुरानी व्यवस्था मे होनेवाले सघर्षो और मुसीबतो से ऊब गये थे, उनके दिमाग मे एक अधिक उपयुक्त और अधिक वैज्ञानिक आर्थिक प्रणाली पर खडी हुई एक नयी व्यवस्था के लिए उत्साह भर आया था। इस बडे भारी कार्य से वे जोशीले लोग इतने खुश हो गये कि उसके साथ जो बहुत-सी बुराइयाँ आयी, उनको उन्होने दरगुजर या माफ कर दिया वह ठीक ही था, सबसे ज्यादा वकत तो रूस मे हुए बुनियादी हेरफेर की थी, फिर

भी यह उसके साथ कोई उपकार नही था कि जो भी चीज़ उसकी तरफ से होती, उसे बिना सोचे-समझे मजूर कर लिया जाता। अगर कोई राष्ट्र या जनता आत्म-तुष्ट हो जाती है और तमाम आलोचनाओ को अनसुना कर देती है तो वह कभी खुशहाल नही हो सकती।

रूस ने जो योजनाएँ बनायी और कई दिशाओ मे जो अद्भुत उन्नति की, उससे उसकी प्रतिष्ठा बढी। तब आयी ढेर की ढेर आपत्तियाँ, जिन्होने उसकी आशाओ पर अँधेरा छा दिया। भले ही वे सब या अधिकाश आपत्तियाँ उचित भी ठहरती, लेकिन इतने बडे पैमाने पर ऐसे षड्यन्त्र और बिगाड ऐसे देश मे होने ही क्यो चाहिएँ कि जो एक महान् क्राति मे से निकल चुका हो? अन्दरूनी हालत अच्छी नही थी। हिसा होने लगी और आलोचनाओ को दबाया जाने लगा। लेकिन चोटी पर होनेवाले सघर्षो का आम जनता के ऊपर कोई असर नही पडा और वह तरक्की करती रही। यह आर्थिक व्यवस्था अपने आपमे मुनासिब ही थी।

रूस की अन्दरूनी हालतो के बारे मे चाहे कुछ भी शकाएँ रही हों, लेकिन बाहरी नीति के बारे मे किसीको कोई शक न था। हर साल वह नीति शान्ति पर, सामूहिक सुरक्षितता पर और आक्रमण का विरोध करनेवाले लोगो को सहायता और बढावा देने पर टिकी रही। उस समय जबकि नात्सी और फासिस्ट ताकते खुले आम लेकिन निर्लज्जतापूर्ण आक्रमण करती जा रही थी और इग्लैण्ड और फ्रास अपनी विदेशी नीति से उनकी मदद पहुँचा रहे थे, तब सोवियट रूस अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्पष्ट और सगठित नीति का प्रतीक बना हुआ था। चूँकि उसने पश्चिमी यूरोपियन ताकतो की धोखेभरी साजिशों में उनका साथ नही दिया, इसलिए उसकी अवहेलना की गयी, उसका अपमान किया गया और उसे नीचा दिखाया गया।

एक बडे राष्ट्र के लिए इस कडवी गोली को निगल जाना मुश्किल था। उससे नाराजगी हुई और बदला लेने की इच्छा भी। गोली तो दूर फेंक दी गयी, लेकिन इस कार्रवाई मे रूस बहुत ज्यादती कर गया, क्योंकि दुनिया की नजर मे जिस उद्देश्य के लिए उसका अस्तित्व था, उसीको खोकर उसने अत्यन्त सस्ते अवसरवाद की नीति ग्रहण कर ली।

रूस-जर्मन सधि मे एक भारी धक्का लगा और जिस तरीके से और जितने वक्त मे वह हुई, उससे इस अवसरवाद की खास तौर से गध आती थी। लेकिन उसका कारण समझ मे आ सकता था और थोडा-बहुत समझाया भी जा सकता था। बाद को बाल्टिक प्रदेशों मे जो नीति चली, वह तो हमे एक कदम और आगे ले गयी। इसकी भी सफाई थी—कि सोवियट अपनी उत्तरी-पश्चिमी सरहद को हमले से बचाना चाहता था और हर कोई जानता था कि वह एक खतरेवाला इलाका था भी। फिर भी हमारे शक बढते ही गये।

उसके बाद फिनलैण्ड पर हमला हुआ। फिनलैण्ड से जो माँगे की गयी वे रूस की आइदा की हिफाजत के खयाल से कुछ-कुछ मुनासिब थी। पर यह भी याद रखना चाहिए कि हरएक बडा राष्ट्र हिफाजत का बहाना लेकर अपनी सरहद बढाना चाहता है। लडाई के जमाने मे और ऐसे वक्त मे जब कि यूरोप मे झगडे की सभावना होती जिससे रूस पर सयुक्त हमला किया जा सकता, तब तो सरहद और लेनिनग्रेड के बडे और महत्त्वपूर्ण नगर को बचाने की इच्छा समझ मे आ सकती थी। लेकिन फिनलैण्ड पर जो फौजी हमला हुआ वह तो इन सीमाओ को भी पार कर गया, और रूस हमलावर राष्ट्रो की कतार मे आ खडा हुआ। इससे उसने उन परम्पराओ को धोखा दिया जिनका उसने खुद इतने बरस पालन किया था। इस भारी गलती के लिए उसे बडी भारी कीमत ऐसे

सिक्के मे चुकानी पडी कि जिसका हिसाब नही लग सकता; क्योंकि वह बना हुआ है असख्य मानव प्राणियो की इच्छा और आदर्शों से। कोई भी आदमी या राष्ट्र इस अमूल्य वस्तु के साथ खिलवाड करेगा, तो उसे भारी नुकसान हुए बिना नही रह सकता। फिर उसका तो कहना ही क्या जिसे अपने बुनियादी सिद्धान्तो और आदर्शो पर गर्व रहा हो ?

शायद यह सच है कि सोवियट रूस कभी इस बात की उम्मीद नही करता था कि फिनलैण्डवाले इतने जोर-शोर से उसका मुकाबला करेगे। उसको भरोसा था कि वे लडाई का खतरा उठाने की बनिस्बत अपने को उसके हवाले कर देगे, जैसा कि बाल्टिक राज्यो ने किया था। मुमकिन है कि सोवियट सरकार यह आशा करती हो कि फिनलैण्ड के कार्यकर्त्ता और किसान लाल सेना के हमले का स्वागत करेगे। इन दोनो खयालो मे वह गलती पर था। इस बात मे कोई सदेह नही है कि फिनलैण्ड की मदद इटली, फ्रास और इग्लैण्ड कर रहे थे और अब भी कर रहे है और इस तरह वह सोवियट-विरोधी सगठन का केन्द्र बन गया था। यह भी सच है कि जो खबरे हमे मिलती है वे बहुत ही बिगडी हुई और एकतरफा होती है। हम उनपर ज्यादा भरोसा नही कर सकते। लेकिन इसमे जरा भी सन्देह नही है कि फिनलैण्ड के लोग राष्ट्रीय दृष्टि से एक होकर इस हमले का मुकाबला कर रहे है और वहाँ के ट्रेड-यूनियन और किसान लोग दोनो उनकी पीठ पर है। एक छोटा-सा जनतन्त्रीय राष्ट्र बहादुरी के साथ अपनी आजादी की खातिर हमले के मुकाबले मे लड रहा है और यह लाजिमी है कि सबकी सहानुभूति उसकी ओर हो।

फिनलैंड मे होनेवाली यह लडाई हर जगह की विरोधी शक्तियो के लिए विधाता का एक विशेष वरदान बनकर आयी है। इसकी आड

में वे अपने आक्रमणो और विश्वासघातो को छुपाकर, जिन लोगों पर दमन किया जा रहा है उनके हिमायती बनकर, इस आक्रमण के विरुद्ध उठ खडे होने का दिखावा करने लगे है। समाजवाद और सोवियट रूस के साम्यवादी राष्ट्र के प्रति उनको जो घृणा थी उसे काम करने के अनुकूल वायुमण्डल अब मिल गया है। जो राष्ट्र-सघ आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया पर बलात्कार होने के वक्त मजे से चैन की नीद सोता रहा था, जिसने म्यूनिक के समझौते को बडा तत्त्वज्ञानी बनकर मजूर कर लिया था, जिसने स्पेन के मामले मे दस्तन्दाजी न करने की बदनाम नीति की तरफ से आँखे मूँद ली थी और पोलैंड पर जो नात्सी हमला हुआ उसके बारे मे जिसने एक शब्द तक नही कहा था, वह अकस्मात् जाग पडा है और सोवियट रूस पर चोट करने का एक हथियार बन रहा है।

लेकिन हर जगह—यूरप, अमरीका और एशिया मे—प्रगतिशील विचारो पर जो इसका असर पडा है, दुख की बात दरअसल वही है। जिनके हाथ मे आज रूस की सरकार है जिन्होने अपने उद्देश्य पर इतनी गहरी चोट की है कि जितनी एक या बहुत से दुश्मन भी मिलकर नही कर सकते थे। सद्भावनाओ की जो बडी पूँजी उनके पास थी, उसे उन्होने खो दिया और उसके साथ हमले को जोडकर उन्होने समाजवाद तक के उद्देश्य को हानि पहुँचायी। उन दोनो मे कोई जरूरी वास्ता नही है और उन्हे दूर-दूर रखना ही अच्छा है। लेकिन सोवियट के आक्रमण की हिमायत और तरफदारी करना या चुपचाप रहकर उसे मजूर कर लेना समाजवाद के साथ बुरा करना है। कुछ ऐसे लोग भी है, जिन्होने सोवियट सरकार की हरेक प्रवृत्ति का समर्थन करना धर्म बना लिया है और जो कोई ऐसी प्रवृत्ति की आलोचना या निन्दा करता है, उसे वे विधर्मी और बागी करार देते है। यह अन्ध-विश्वास है, जिसका विवेक से कोई

सम्बन्ध नही है । क्या इसी बुनियाद पर हम यहांपर या किसी और जगह आजादी की इमारत खडी कर सकेगे ? दिमाग़ की सलामती और अपने मकसद की सचाई छोड देने से खुद हमे और हमारे उद्देश्य को भी खतरा ही हो सकता है । दूसरी किसी जगह हमारे लिए किये गये फैसलो से हम बँधे हुए नही है । हम अपने निर्णय आप करते है और अपनी नीति खुद बनाते है ।

रूस के खिलाफ जो बिगडे और इकतरफा प्रचार की बाढ इधर आ रही है, उससे हमे होशियार होना चाहिए । विदेशों मे या हिन्दुस्तान मे रूस पर जो बेदर्दी के आक्रमण हो रहे है, उनसे हमे सतर्क रहना पडेगा । अगर हमे समाजवाद मे श्रद्धा है तो उसको कायम रखना होगा और भरोसा रखना होगा कि समाजवादी व्यवस्था ही दुनिया की बुराइयो को दूर कर सकती है । हमे यह याद रखना होगा कि बहुत-सी बुराइयो के होते हुए भी सोवियट रूस ने इस आर्थिक पद्धति को कायम करके बहुत बडा काम किया है और अगर इस योजना का, जो भविष्य के लिए बहुत आशाप्रद है, अन्त हो जाये, या वह कमजोर हो जाये, तो वह बडे दुख की बात होगी । हम उसमे हिस्सेदार न बनेगे ।

लेकिन हमे यह भी समझ लेना चाहिए कि सोवियट सरकार ने बहुत से मामलो मे बहुत ज्यादा गलती की है और हिंसा का, अवसरवाद का और सत्तावाद का बहुत आसरा लिया है । अपने साधनो को उसने बुराइयो से बरी रखने की कोशिश नही की, और इसलिए इन साधनों के साथ मेल बैठाने के लिए उनके उद्देश्यो को इधर-से-उधर किया जा रहा है । साधन तो उद्देश्य नही है । हाँ, वे उनपर काबू रखते है । लेकिन साधनो का उद्देश्य के साथ मेल होना चाहिए, नही तो उद्देश्य का रूप बिगड जायेगा और उस ध्येय से बिल्कुल भिन्न हो जायेगा जो हमारे लक्ष में था ।

सलिए हिन्दुस्तान की ओर से हम अपनी दोस्ताना हमदर्दी रूस के समाजवाद के प्रति दिखाते है। अगर उसे तोडने की किसी भी प्रकार की कोशिश की जायेगी तो उसको हम बहुत नापसन्द करेगे। लेकिन रूस की सरकार की राजनीतिक चालो और आक्रमणो से हमारी सहानुभूति नही है। फिनलैण्ड के खिलाफ जो लडाई हो रही है, उसमें हमारी सहानुभूति फिनलैण्ड के लोगो के साथ है कि जिन्होने अपनी आजादी को कायम रखने के लिए इतनी बहादुरी से लडाई लडी है। अगर रूस इसमे हठ किये जाता है तो इसका परिणाम उसके और दुनिया के लिए घातक होगा।

और यह भी हमे याद रखना होगा कि सक्रमण और परिवर्तन के इस क्रान्तिकारी युग मे जब कि हमारे पुराने आदर्श गडबड हो गये है, और हम नये मार्ग की खोज मे है, तो हमे अपने मन को स्वस्थ और ध्येय को दृढ बनाये रखना चाहिए और उन साधनो और तरीको पर भी अटल रहना चाहिए कि जो उचित हो और हमारे आदर्शों और ध्येयो के अनुरूप हो। इन ध्येयो की प्राप्ति हिंसा या सत्तावाद या अवसरवाद से नही होगी। हमे अहिंसा का पालन करना होगा। उचित कर्तव्य मे डटना होगा और इस प्रकार उस आजाद हिन्दुस्तान का निर्माण करना होगा कि जिसके लिए हम पसीना बहा रहे है।

१६ जनवरी, १९४०

: १७ :

लड़खड़ाती दुनिया

पिछले कुछ हफ्तो में हिन्दुस्तान को अचानक अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ और उसकी हिन्दुस्तान मे होनेवाली प्रतिक्रिया के बारे मे गभीर होकर सोचना पडा है। हममे से कुछ लोग कई बरसो से अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में टॉग अडाते रहे है और कभी-कभी देश के बहुतेरे लोगों में अबीसीनिया, फिलस्तीन, चेको-स्लोवाकिया, स्पेन और चीन के बारे मे थोडी देर को दिलचस्पी पैदा होती रही है। मगर बुनियादी तौर पर तो हम एक राष्ट्र के नाते अपने ही राष्ट्रीय मसलो मे बहुत ज्यादा मशगूल रहे। यूरोप मे लडाई छिड जाने से लाजमी तौर पर विदेश की घटनाओं मे और भी ज्यादा दिलचस्पी पैदा होनी चाहिए थी। पर यह सब होते भी आखिर वह लडाई तो दूरदराज की ही थी और हमारी उत्सुकता एक दर्शक की-सी थी। १० मई हिन्दुस्तान के इतिहास मे मशहूर है। इस दिन पश्चिमी यूरोप के निचले देशो, हालैण्ड और बेलजियम, पर हमला हुआ। बाद में जो घटनाएं एक के बाद एक तेजी से घटित हुई उन्होने हमारे दिमागो मे थोडी देर की सरगर्मी पैदा करदी है और लडाई मे हो सकनेवाले नतीजो को हमारे पास ला दिया है। नयी समस्याएँ अचानक हमारे सामने आ गयी है, और हमे एक दम नयी परिस्थितियो का सामना करना है।

ऐसी विकट परिस्थितियो मे काग्रेस कार्य-समिति की पिछली दो बैठके हुई और समिति ने उनसे अपना मेल बैठाने की कोशिश की। जनता ने कार्य-समिति के प्रस्ताव देखे है और उनके बारे मे दलीले भी

हुई है। अगर हम उस अजीब और बदलनेवाली दुनिया को, जिसमें हम रहते है, समझना चाहते है तो यूरप मे जो-कुछ हुआ उसपर और आगे उसके क्या-क्या नतीजे निकलेंगे इसपर निष्पक्ष होकर विचार कर लेना अच्छा होगा। किसी इच्छा के साथ सोचना-विचारना ही तो कभी काम का नही होता, लेकिन आज तो वह खतरनाक है। आज भले ही और सारी चीजे इतना बदल गयी हो कि पहचानी भी न जा सके, लेकिन हम सबो की पुरानी लीक पर चलते जाने की, पुराने नारे बुलन्द करते रहने की और पुरानी बातो को ही सोचते रहने की बहुत ज्यादा आदत पड गयी है। बुनियादी सिद्धान्तो और उद्देश्यो मे एक खास स्थायित्व और सिलसिला होना चाहिए, लेकिन दूसरी तरफ असलियत चाहती है कि हम अपने आपको उनके साथ निभाले।

क्या-क्या हो चुका है? यूरोप का नकशा बिलकुल पलट गया है और बहुत-से राष्ट्र अब नही रहे है। पोलैण्ड गया, डेनमार्क और नार्वे ने सर झुका दिया, हालैंड की हार हुई, बेलजियम ने घुटने टेक दिये और फ्रास का पतन हुआ—एक दम और पूरी तौर से। ये सब जर्मन-साम्राज्य के पेट मे समा गये। बाल्टिक देशो और बसरेबिया को करीब-करीब सोवियट रूस ने हडप लिया।

ये उलट-फेर बहुत बडे-बडे है मगर फिर भी दिन-पर-दिन यह अधिक-से-अधिक दिखाई देता जारहा है कि यह तो जो-कुछ होनेवाला है, उसकी भूमिका भर है। हम महज एक बडी दूर-दूर फैली लडाई और उससे होनेवाली भयकर बरबादियो को ही नही देख रहे है, बल्कि आज हम एक बडे महत्वपूर्ण क्रान्ति-युग मे रह रहे है—जो आज तक के इतिहास के प्रश्नो मे आये हुए युग से भी अधिक व्यापक और विस्तीर्ण है। इस युद्ध का परिणाम-कुछ भी हो, यह इन्किलाब तो

अपना काम पूरा करके ही रहेगा। जबतक यह होता रहेगा, तबतक हमारी इस धरती पर शांति और संतुलन कायम नही हो सकता।

हमे यह समझ ही लेना चाहिए कि पुरानी दुनिया बीत चुकी है—चाहे वह हमे पसन्द हो या नही। जो लोग उसके सबसे ज्यादा प्रतीक रहे हैं, उनका कोई अस्तित्व नही रहा। वे तो उस गये-गुजरे कल के भूत मात्र बनकर रह गये हैं।

अगर अन्त मे नात्सी लोग जीते—जैसा कि अच्छी तरह मुमकिन है—तो वे यूरप और दुनिया की क्या हालत कर डालेगे इसमे कोई शक नही रह गया है। वे जर्मनी के नेतृत्व और कब्जे मे एक नये ढग का यूरोपीय सघ बना डालेगे—यूरोप को एक नात्सी साम्राज्य बना डालगे। छोटे-छोटे राष्ट्र नही रहेगे और न रहेगा प्रजातन्त्र—जैसा कि हमने उसे समझा है—और न पूँजीवादी व्यवस्था रहेगी जैसी कि अबतक चली आरही है। एक प्रकार का राष्ट्रीय पूँजीवाद यूरप मे फूले-फलेगा और बडे-बडे उद्योग जर्मनी के प्रदेश मे केन्द्रित हो जायेगे और दूसरे बडे बडे देश—जिनमे फ्रांस भी शामिल होगा—करीब-करीब खेतिहर देश रह जायेगे। इस प्रकार की प्रणाली एक सामूहिक महा-राष्ट्रीय अर्थनीति पर खडी की जायेगी और उसपर सत्ताधारियों का कब्जा होगा। नात्सी साम्राज्य के उपनिवेश, खासकर अफ्रीका मे, हो जायेगे, मगर वह दूसरे गैर-यूरोपियन देशो की अर्थनीति को भी कब्जे मे करने और उनके निवासियों की श्रम-शक्ति का उपयोग करने की कोशिश मे रहेगा। इस तरह के शक्ति-शाली सत्ताधारी सघ का आर्थिक भार भयकर हो जायेगा और रही-सही दुनिया को अपने-आप उसके साथ निबाह करना और चलना पडेगा।

तो ऐसी है नात्सियो की योजना। अगर यह पूरी हुई तो इंग्लैण्ड का

क्या होगा ? अगर जर्मनी की पूरी-पूरी विजय हुई तो इंग्लैण्ड मे ऐसा कोई राष्ट्र नही रह जायेगा—जिसकी कोई पूछ हो। यूरप में उसका कोई असर बाकी नही रह जायेगा, साम्राज्य उसका छिन जायेगा। फिर चाहे वह जर्मनीकृत यूरोपीय सघ मे शामिल हो चाहे न हो, इसका कोई मूल्य न होगा। अंग्रेजी राज्य का केन्द्र हटकर दूसरी जगह, बहुत मुमकिन है कनाडा मे, चला जायेगा और वे लोग अमरीका के सयुक्त-राष्ट्र से निकट सम्पर्क स्थापित कर लेगे या उसी-मे मिल भी जायेगे।

यह बहुत-कुछ सोवियट रूस पर निर्भर रहेगा। इसम शक नही कि रूस को नात्सियो की ताकत का इतनी तेजी से बढना कतई नापसद है, क्योकि वह आगे जाकर उसके लिए खतरनाक हो सकता है। फिर भी चाहे जो हो वह इस परिवर्तन के मुआफिक हो जायेगा, बशर्ते कि लडाई बहुत अर्से तक न चलती रही और लडनेवाले थक न गये।

जर्मनी की तेजी से जीत होती गयी तो इस तरह नात्सी साम्राज्य यूरप मे कायम हो जायेगा, जिससे उसके कब्जे मे बडे-बडे प्रदेश आ जायेगे। पूरब मे उसका सम्बन्ध जापान से हो सकता है। दो और सघ कायम रहेगे—सोवियट रूस और सयुक्तराज्य अमरीका—जो दोनो के दोनो खासकर जर्मनी के दुश्मन हैं। भले ही लडाई खत्म हो चुके मगर इन शक्तिशाली साम्राज्यो मे भी भविष्य मे होनेवाली लडाई के बीज बने रहेगे।

और अगले ही कुछ महीनो मे अगर नात्सियो की जीत न हुई तो क्या होगा ? शायद एक अर्से तक लडाई चलेगी, जिसमे दोनो पक्ष बुरी तरह थक जायेगे और दोनो को भारी नुकसान बैठेगा। इग्लैण्ड और यूरप का आर्थिक ढाँचा बिखर जायेगा और उसका एक ही मुमकिन नतीजा

यह होगा कि एक मुख्तलिफ आर्थिक प्रणाली की बुनियाद पर राष्ट्रो का सघ या विश्व-सघ कायम होगा—और उत्पत्ति, निर्यात और वितरण पर ससार का कडा नियन्त्रण रहेगा। आज की पूँजी-वादी प्रणाली मिट जायेगी। ब्रिटिश साम्राज्य का खात्मा हो जायेगा। छोटे-छोटे राष्ट्र स्वतन्त्र इकाई बनकर नही रह सकेगे। हो सकता है कि धन का अर्थ भी बदल जाये।

इसलिए हर हालत मे इस युद्ध मे मूलभूत राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन होगा जो कि मौजूदा हालत के ज्यादा मुआफिक होगा, जिनमे राष्ट्रो के बीच निकटतर सम्बन्ध स्थापित हो जायेगा और अन्तर्राष्ट्रीय रुकावटे मिट जायगी। जर्मनी की ताकत आज उसकी अदम्य शक्ति और बडी फौजो मे नही है जितनी इस बात मे है कि शायद आप ही आप वह ऐतिहासिक घटनाओ का निर्माता हो गया है। वह इतिहास को बुरी दिशा मे ले जाने की कोशिश मे है, थोडी देर को वह उसमे सफल भी हो सकता है। फ्रास और इग्लैण्ड की कमजोरी का खास कारण यही हुआ कि वे ऐसी प्रणालियो और ढाँचो से चिपटे रहे, जो बर्बाद होनेवाले थे। उनके साम्राज्य मे या उनकी आर्थिक प्रणाली मे कोई चीज ऐसी थी जो नष्ट होनी थी। उनको पिछले बीस बरसो मे बार-बार मौका मिला था कि वे अपने आपको इतिहास की परिस्थि-तियो के अनुकूल बना ले और सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता पर टिकी हुई एक वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था कायम करने मे नेतृत्व करे। वे पिछले जमाने मे मिले अपने लाभो को न छोड पाये और स्थापित स्वार्थों और साम्राज्य से चिपटे रहे और आज जब वे सबसे हाथ धो बैठे है, तो अब क्या हो सकता है ?

कुछ समय के लिए फ्रास तो मिट ही गया, लेकिन इग्लैण्ड ने अब

भी सबक नही लिया। वह अब भी साम्राज्य की बात कर रहा है और अपने खास हितो व स्वार्थो को बनाये रखना चाह रहा है। आज यह देखकर अफसोस है कि एक महान् जाति इतनी अन्धी हो गयी है कि उसे और कुछ नही सूझ रहा है। सूझता है तो सिर्फ यही कि एक वर्ग के सकुचित हित कायम रहे। वह सारा खतरा उठाने को तैयार है, लेकिन ऐसा कार्य करने को तैयार नही जिससे वह दुनिया के साथ हो जाये और बडे-बडे कदम से चलनेवाली महान् ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के अनुकूल बन सके।

१६ जुलाई, १९४०

: १८ :

हमारा क्या होगा ?

जर्मनी की हार होगी कि जीत ? इससे यूरोप और दुनिया के भविष्य मे बेशक बडा फर्क पडेगा। फिर भी दोनो मे से कोई एक बात होने से ही ऐसी खास तब्दीलियाँ होगी जिनका असर काफी गहरा होगा। छोटे-छोटे राष्ट्र मिट जायेगे और उनकी जगह या तो विश्व-सघ कायम हो जायेगा, या तीन या चार सघ-राज्य कायम हो जायेगे। अगर दूसरी बात हुई तो भीतरी और बाहरी दोनो तरह के लडाई-झगडे चलते रहेगे। अन्दरूनी झगडे इस कारण रहेंगे कि साम्राज्य मे उन दूसरे राष्ट्र या देश-वासियो पर जबरन शासन होता ही है, जो अपने आपको आजाद करने की कोशिश करते है। बाहरी झगडे इस कारण रहेगे कि दूसरे सघ-राज्यो या साम्राज्यो से उनका मुकाबला रहेगा। हरेक शायद कोशिश करे कि उसके प्रदेशो मे स्वावलम्बी अर्थनीति (autarchy) कायम हो, परन्तु इसमे सन्तुलन या स्थायित्व पैदा नही हो सकता और शाति से या फिर लडाई से एक अकेला विश्व-सघ स्थापित होकर रहेगा। अनिवार्य रूप से ऐसा होकर रहेगा क्योकि इसको छोडकर दूसरा रास्ता तो आपस मे बडी-बडी बरबादियाँ करते रहने और जगली हालत मे चले जाने का है। आजाद राष्ट्रो के सच्चे सगठन से ही ऐसा विश्व-सघ बन सकेगा। जबरन थोपी हुई व्यवस्था के मानी तो यह होंगे कि जिसे सघ कहा जाता है वह तो एक ऐसा सघ-राज्य होगा, जिसके अन्दर उसीकी बरबादी के बीज मौजूद होगे।

युद्ध का नतीजा कुछ भी हो, यह साफ दिखाई देता है कि अंग्रेजी

साम्राज्य का खात्मा हो जायेगा। इसके लिए काफी कारण है कि ऐसा क्यों होना चाहिए, मगर युद्ध-चक्र ने यह बात स्पष्ट करदी है। भले ही कई सघ-साम्राज्य बन जाये, लेकिन आज ब्रिटिश साम्राज्य की जैसी बनावट है, उस शक्ल मे तो वह नही रहेगा। हो सकता है कि इग्लैण्ड-अमरीका का सम्मिलित सघ बन जाये और दूसरे देश भी उसमे शरीक हो जाये या एक सघ-साम्राज्य कायम हो जाये। ऐसे सघ या साम्राज्य मे इग्लैण्ड का दर्जा निचला रहेगा। आज इग्लैण्ड के पास जो दूर-दूर फैला हुआ साम्राज्य है उस किस्म का साम्राज्य आइदा न रहेगा, भले ही सभाव्य विश्वव्यापी सघ-साम्राज्य मे उसकी कोई जगह रहे तो रहे। ऐसी दूर-दूर बिखरी हुई सल्तनत के लिए यह भी लाजमी है कि समुद्रो और दुनिया के व्यापारिक रास्तो पर कब्जा हो, साथ ही हवाई ताकत भी काफी बढी-चढी हो। दुनिया भर पर हावी होसके ऐसी ताकत आज न कोई देश हासिल कर सकता है, न राज्यो का कोई गुट। अगर साम्राज्य कायम रहे, तो वे खास तौर पर सघिबद्ध साम्राज्य होगे और मुमकिन है उनके कुछ दूर बसे हुए उपनिवेश भी रहे जिनमे कोई खास फर्क न पडनेवाला हो।

लडाई शुरू होने के करीब एक बरस पहले कई राष्ट्रो का एक सघ स्थापित होने की सम्भावना पर बहस हुई थी। क्लेरेन्स स्ट्रेट के '**अब संघ**' लेख ने बहुत ध्यान खीचा था। दूसरे कई प्रस्ताव भी थे। करीब-करीब सबमे एक खास बडी खामी यह थी कि वे दुनिया को ऐसी निगाह से देखते थे, मानो उसमे सिर्फ यूरप और अमरीका ही हो। चीन, हिन्दुस्तान और पूरब के दूसरे मुल्को की बिल्कुल उपेक्षा की गयी थी। इन प्रस्तावो पर हालांकि बहुत बहस हुई और उनका स्वागत भी हुआ, मगर लडाई के पहले की दुनिया मे उनपर अमल न हो सका। उनकी मुखाल्फत

करने की किसी भी बडे देश की जरा भी मर्जी न थी। तो जबकि इससे बड़ा भारी परिवर्तन हो सकता था, वह समय अब गुजर गया। और आज कुछ देश और सरकारे इस खोये हुए मौके पर बुरी तरह पछता रहे है। जबकि फ्रास का प्रजातन्त्र तडफडा रहा था, इग्लैण्ड की सरकार ने तात्कालिक खतरे से मजबूर होकर फ्रास से मिलकर सघ बनाने का अजीब प्रस्ताव पेश किया। तब इसके लिए वक्त कहाँ रहा था ? और इग्लैण्ड के मामले मे भी वक्त नही रहा है। लेकिन इससे बिजली की तरह पता चल गया कि स्वतन्त्र राष्ट्रो के पुराने विचार और ब्रिटिश साम्राज्य के विचार भी अब काम के नही रहे।

और फिर भी कुछ लोग अब भी 'औपनिवेशिक स्वराज' की या उस-जैसी बात करते है। यह नही समझते कि यह खयाल अब मुर्दा हो गया है, उसे फिर जिन्दगी नही दी जा सकती। और कुछ लोग कहते है कि हिन्दुस्तान का बँटवारा कर दो और उनकी बुनियाद बडी अजीब और बेहूदी है। वे भूल जाते है कि दुनिया के अब और ज्यादा टुकडे करने की जरूरत नही। जरूरत है एकीकरण की, राष्ट्रो का सघ बनाने की। दुनिया अब छोटे-छोटे राज्यो को ज्यादा बर्दाश्त नही कर सकती।

तब, हमारी आजादी का क्या होगा ? क्या उससे आज के राष्ट्रो का सगठन नष्ट न होगा ? और विश्व-सघ मे उसका कैसे निबाह होगा ? यह तो बिल्कुल सही है कि हम ब्रिटिश साम्राज्य का खात्मा इस कारण चाहते है कि साम्राज्यवाद से किसी सच्चे सघ की पैदायश होना नामुमकिन है। और किसी भी हालत मे हिन्दुस्तान इस साम्राज्य मे रहनेवाला नही है। लेकिन जिस आजादी को हम हासिल करना चाहते है, वह दूसरे राष्ट्रो के झुण्ड से अलग या उसके अलावा एक राष्ट्र के रूप मे नही समझी जा रही है। हमने तो हमेशा

यही समझा है और उसीको पाना हमारा मकसद है कि दुनिया का घनिष्ठ सगठन बन जाये और सघ या सम्मेलन के जरिये काम चले और उससे मिलकर हमे खुशी होगी। लेकिन हमसे यह कहा जाना कि हम औपनिवेशिक दर्जा मजूर कर ले और हमारी मर्जी के खिलाफ किसी खास तरह का सघ हमपर लादना तो आज की दुविधा के हालत मे बडी बेहूदा बात है और किसी भी हालत मे हम उसे बर्दाश्त करनेवाले नही है—चाहे उसका नतीजा कुछ भी क्यो न हो ?

लडाई का तीसरा लाजिमी नतीजा यह भी हो सकता है कि मौजूदा पूँजीवाद खत्म हो जाये और विश्वव्यापी आर्थिक प्रणाली मे सुन्दर व्यवस्था और नियन्त्रण लाया जाये। इसके साथ-ही-साथ पूँजीवादी प्रजातन्त्र भी बदल जायेगा, क्योकि यह सम्पन्न और समृद्ध राष्ट्रो की शान-शौकत की प्रणाली है। आइन्दा आनेवाले बुरे दिनो मे वह नही चल सकती। इस तरह का प्रजातन्त्र तो अभी से ही लडाई के वजन से चूर-चूर हो गया है।

यह बडे दुर्भाग्य की बात होगी कि प्रजातन्त्र खुद ही मिट जाये और डिक्टेटरशाही कोई शक्ल उसकी जगह आ जाये। यह खतरा है और हमे इससे अपनी रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए। लेकिन आज पश्चिम मे जिस किस्म का प्रजातन्त्र नष्ट होते हुए हमने देखा है उससे कही अधिक योग्य और कुछ अशो मे भिन्न प्रकार का प्रजातन्त्र ही आज जीवित रह सकता है।

आज जो घटनाचक्र घूम रहा है उसमे हम कहाँ है, हिन्दुस्तान कहाँ है ? यह काफी स्पष्ट हो चुका है। हम नात्सीवाद के बिल्कुल खिलाफ है और हमारे खयाल से सारी दुनिया पर नात्सी जर्मनी का हावी हो जाना एक दुखदायी घटना होगी। लेकिन हम तो इस बात से उकता गये और घबडा गये है कि हमपर ब्रिटिश साम्राज्यवाद थोपा जाये, भले ही वह

अब आखिरी घड़ियाँ गिन रहा हो—और हम इस या किसी दूसरे साम्राज्य-वाद के औजार बनने के पहले बर्बाद हो जाना मजूर कर लेगें।

यह बडे अचम्भे की बात है कि अब भी हिन्दुस्तान की आजादी ब्रिटिश सरकार के गले मे अटकी हुई है और अचरज है कि वे अब भी पुराना शाही तरीका काम में लाते है और हमसे उम्मीद करते है कि हम उनके हुक्मो को माने। अब भी वे हमको तकलीफ और नुकसान पहुँचाकर धमकियाँ देते है। अब भी वे हमे अपनी नसीहते सुनाते है। जो कुछ हो रहा है उसे वे अब भी नही देखते। क्या उनका खयाल है कि वे जो नीति हिन्दुस्तान मे अख्त्यार कर रहे है उससे वे इस लडाई के लिए ताकत हासिल कर लेगें? क्या उनका खयाल है कि धमकियाँ देने और मजबूर करने से हिन्दुस्तान का दिल वे जीत लेगे और उसकी मदद पा लेगे? इस तरीके से थोडा पैसा उन्हे मिल सकता है, लेकिन इससे सोने-चाँदी से भी जिसकी वकत कही ज्यादा है ऐसी रकम वे अपने नाम लिखा रहे है। हिन्दुस्तान मे जो कुछ हो रहा है उसपर और छुटभैयों के कारनामो पर नाराजगी है।

हम लोगो के लिए जोकि महीनो से धीरज के साथ इन्तजार कर रहे है और जान-बूझकर कोशिश नही कर रहे है कि अग्रेजो को उनके इस मुसीबत के वक्त हैरान करे यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद का काम करते रहना एक दैवी प्रकाश है। हममे से बहुत-सो की हमदर्दी अग्रेज लोगो से है। मगर यह देखे बिना हम नही रह सकते कि अग्रेजो का लडाई का एक मोर्चा हिन्दुस्तान मे है और वह हमारे खिलाफ है। अगर ऐसा है तो चाहे अजाम कुछ भी हो, हम उसका मुकाबला करेगे। एक बात तो तैशुदा है ही। किसीको यह अधिकार नही है कि हमपर हुकूमत चलाये।

१७ जुलाई, १९४०

: १६ :

एशियाई संघ

जो कोई व्यक्ति घटनाओं के क्रम को देखता रहा है और भविष्य के परदे के भीतर झाँक सकता है, वह इस नतीजे पर पहुँचेगा कि हम एक युग के सिरे पर आचुके हैं। वह युग जिससे हमारी अबतक जान-पहचान थी, मर चुका है या हमारे सामने मरने के लिए तडप रहा है। लेकिन वास्तव में इसके मानी यह नहीं है कि दुनिया अब न रहेगी। इसका यह भी मतलब नहीं है कि सभ्यता बरबाद हो जायेगी। लेकिन इसका इतना मतलब जरूर है कि उन बहुतेरी चीजों की—जिन्हें हम जानते हैं—जैसे राज-नैतिक स्वरूपों, आर्थिक ढाँचों, सामाजिक सम्बन्धों और इनसे सम्बन्धित हमारी तमाम बातों में एक बडी भारी कायापलट होनेवाली है। अगर कोई सोचता हो कि दुनिया इसी रूप में चलती रहेगी, जिसमें कि हम उसे देखते आ रहे हैं, तो उसका ऐसा सोचना फजूल है।

यह मानी हुई बात है कि छोटे-छोटे देशों के दिन लद गये। यह भी पक्की बात है कि अपने-आप अकेले खडे रहनेवाले बडे देशों तक का जमाना भी गुजर गया। सोवियट-संघ (रूस) या संयुक्तराष्ट्र अमरीका जैसे बडे-बडे देश भले ही अकेले रह सके, मगर सम्भव है उन्हें भी दूसरे देशों के समूहों के साथ शामिल होना पड जाये।

इसका एक ही बुद्धिसम्मत हल है और वह है स्वतन्त्र देशों का एक विश्व-संगठन। शायद हममें इतनी समझ नहीं है कि उस हल को ढूंढ निकाले या इतनी ताकत नहीं कि उसे प्रत्यक्ष कर सके।

अगर निकट भविष्य में कोई विश्व-संघ न बननेवाला हो और अगर

एकान्त राष्ट्रों का जमाना न रहा हो, तो ऐसी हालत में क्या होने की सम्भावना है ? हो सकता है कि राष्ट्रों के समूह या बड़े संघ बन जायें। इसमें बड़ा भारी खतरा है, क्योंकि इससे एक-दूसरे के विरोधी जमाव होने की और इसलिए बड़े पैमाने पर लड़ाइयाँ चलते रहने की सम्भावना है।

यह भी मुमकिन है कि इन समूहों के बनने से एक बड़े विश्वव्यापी राष्ट्र-समूह की नींव तैयार हो।

यूरप में लोग यूरपीय संघ या संगठन की बात करते हैं, कभी-कभी वे उसमें संयुक्तराष्ट्र अमरीका और ब्रिटिश उपनिवेशों को भी मिला लेते हैं। पर वे हमेशा चीन और भारत को छोड़ देते हैं। वे समझते हैं कि इन दोनों महादेशों की अवहेलना की जा सकती है। हिन्दुस्तान या चीन की अवहेलना के आधार पर कोई विश्वव्यापी व्यवस्था नहीं हो सकती और न हम यूरपीय और अमरीकन शक्तियों का एशिया और अफ्रीका का यह शोषण ही कभी बर्दाश्त कर सकते हैं।

अगर फेडरेशन बनने को हों तो हिन्दुस्तान का निबाह किसी यूरपीय संघ से नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ वह अर्ध-औपनिवेशिक दर्जे के भरोसे पड़ा रहेगा। इसलिए यह साफ है कि इन परिस्थितियों में एक पूर्वीय (एशियाई) संघ होना चाहिए जो पश्चिम का विरोधी न हो, बल्कि इतना होते हुए भी अपने ही पैरों पर खड़ा हो, आत्मनिर्भर हो और उन सबसे संबन्धित हो जो विश्वशान्ति और विश्वसंघ के लिए प्रयत्नशील हों।

ऐसे एशियाई संघ में अनिवार्यतः चीन और भारत, बर्मा और लंका होंगे और नेपाल और अफगानिस्तान को उसमें मिलाना चाहिए। इसी प्रकार मलाया को भी। और कोई वजह नहीं कि स्याम और ईरान भी क्यों न शामिल हों और कुछ दूसरे राष्ट्र भी। वह स्वतंत्र राष्ट्रों का एक ऐसा

शक्तिशाली समूह होगा जिससे न केवल उनका अपना ही बल्कि ससार भर का हित होगा। केवल भौतिक शक्ति ही शक्ति नही होगी बल्कि कुछ और भी होगी जिसके कि वे इतने युगो से प्रतीक रहे है इसलिए यह मौका है कि हम एशियाई सघ की बात सोचे और इसके लिए जान-बूझ-कर प्रयत्न करे।

इस एशियाई सघ का औरो से भी बढकर दो राष्ट्रो से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध होगा। वे राष्ट्र होगे सोवियट रूस और अमरीका।

पश्चिमी सभ्यता के पतन की बहुत चर्चा है। जहाँतक पश्चिम के आर्थिक साम्राज्यवाद और पूँजीवादी व्यवस्था का प्रश्न है, यह शायद ठीक भी है। लेकिन अन्त मे जाकर यूरोपीय सभ्यता मे जो कुछ सबसे अच्छा है उसे तो रहना ही चाहिए। यह सब होते हुए भी मेरे खयाल से यह सच है कि आज की सभ्यता खत्म हो रही है और उसकी राख मे से एक नयी सभ्यता का निर्माण होगा। मुझे आशा है कि पूर्व और पश्चिम की अच्छी से अच्छी बाते नही मिटेगी। पश्चिम ने जिस विज्ञान का नेतृत्व किया है उसके बिना किसी राष्ट्र का काम नही चल सकता। वह विज्ञान, और वह वैज्ञानिक स्पिरिट और तौर-तरीके आज जीवन के आधार बन गये है। विज्ञान मे जहाँ एक ओर सत्य की खोज है, वहाँ दूसरी ओर मानव जाति की उन्नति की चाह है। लेकिन उस विज्ञान का उपयोग जिस बुरे उद्देश्य के लिए किया गया है उसने पश्चिम को बरबादी मे डाला है। यही भारत और चीन अपने नियत्रणकारी प्रभाव और सस्कृति और सयम के लम्बे इतिहास लेकर सामने आते है।

इसलिए हम भविष्य की ओर देखे और पूर्वीय (एशियाई) सघ के लिए प्रयत्न करे और यह न भूले कि विराट् विश्वसघ की दिशा मे यही एक कदम है।

: २० :

चीन और भारत

भारत और चीन युग-युगान्तर से दो पृथक् और पुरातन सभ्यताओ और सस्कृतियो के प्रतीक रहे है। वे दोनों एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हुए भी अनेक बातो मे समान है। सब पुराने देशो की तरह, उन्होने अपने चारो ओर अपनी पुरानी रूढियो और परम्पराओ के रूप मे तरह-तरह के खण्डहर जमा कर रखे है। इनसे उनकी प्रगति मे अड-चन पडती है लेकिन इस बेकार मलबे के ढेर के नीचे खरा सोना भी दबा पडा है जो उन्हे इन सब युगो मे नष्ट होने से बचाता रहा है। भारत और चीन दोनो को जिस अवनति और दुर्भाग्य ने आ घेरा है, उनसे भी भीतर का वह सोना पिघल नही पाया है—जिससे कि वे भूतकाल मे महान् बने थे और जिससे आज भी उनकी एक विशेष स्थिति है। कवि इकबाल के शब्दो मे भारत की भाँति चीन के विषय मे भी यह कहा जा सकता है :

यूनानो मिस्रो रोमाँ सब मिट गये जहाँ से
अबतक मगर है बाक़ी नामोनिशाँ हमारा;
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
सदियो रहा है दुश्मन दौरे जमाँ हमारा।

बरसो से और विशेषकर पिछले तीन या कुछ ज्यादा बरस से चीन अग्नि-परीक्षा मे से निकल रहा है। चीन की जनता के उस बेहिसाब सकट का अन्दाजा हम कैसे लगाये, जिनपर एक साम्राज्यवादी राष्ट्र ने चढाई और हमला किया है; जिनपर अपने नगरो मे हर रात बम बरसाये जाते

है और जिन्हे एक प्रथम श्रेणी के शक्तिशाली राष्ट्र की लायी हुई आधुनिक भयकरता का सामना करना पडा है। पिछले दो-तीन महीनो मे लदन को बमबारी से बहुत भारी नुकसान हुआ है, लेकिन उस चुगकिंग का खयाल कीजिए जो बरसो से बमबारी सहकर भी अबतक जी रहा है। हम उस मुसीबत का अन्दाज नही लगा सकते, और न हम उस दृढ सकल्प और चिरस्मरणीय साहस को नाप सकते हैं जिससे उन्होने इन विपत्तियो और सकटो का बिना विचलित हुए और बिना झुके मुकाबला किया है। इतिहास के उषाकाल से आजतक चीनवासियो के गौरवशाली इतिहास मे कई गौरवशाली युग आये और अच्छे-अच्छे काम हुए हैं। लेकिन निश्चय ही पिछले तीन साल तो इस महान् इतिहास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगे।

इन वर्षों मे भूतकाल बड़े वेग से वर्तमान मे बदला है और आनेवाले युग की तैयारी हो रही है। राष्ट्र के सकट की आग मे तलछट और खण्डहर जल रहे है और शुद्ध धातु निकल रही है। भारत मे भी हमने इन सकटो और परीक्षणो मे अपना भाग लिया है और निकट भविष्य मे और भी लेने की बहुत कुछ सभावना है। तो, जो राष्ट्र सो रहे थे, या गुलामी मे पडे हुए थे उनका अब पुनर्निर्माण हो रहा है, चीन और भारत मे नवयौवन आ रहा है।

भविष्य मे दोनो को बहुत बडा कार्य करना है। इसलिए दोनो को साथ रहना चाहिए और एक दूसरे से सीखना चाहिए।

नवम्बर, १९४०

चीन और स्पेन



प० जवाहरलाल नहरू · चीन म मार्शल च्यागकाई शेक और मेडम च्याग के साथ

: १ :

नया चीन

खबरों की एजेंसियाँ हमें यूरप की खबर देती हैं और बताती हैं कि हिटलर क्या कहता है या नेविल चेम्बरलेन किस बात से इनकार करते हैं, मगर चीन के बारे में हमें कोई खबर ही नहीं मिलती। हाँ, कभी-कभी इतना जरूर सुन लेते हैं कि हवाई हमला हुआ और उसमें सैकड़ों-हजारों लोग मारे गये। यह भी हमारी बहुत-सी बदकिस्मत बेबसियों में से एक है कि विदेशों की खबरें पाने के लिए हमें करीब-करीब एकदम ब्रिटिश एजेंसी पर निर्भर रहना पड़े, जो खबरों को हमारे दृष्टि-कोण से न देखकर निश्चय ही ब्रिटिश साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से देखती है। उसके लन्दन के दफ्तर तै करते हैं कि क्या (खबर) पाने में हमारी भलाई है, और उसका थोड़ा-सा कटा-छँटा हिस्सा रोज़-ब-रोज़ हमारे पास भेज दिया जाता है। लार्ड ज़ैटलैण्ड या और कोई साहब जो कुछ कहते हैं, वह मजेदार हो सकता है, लेकिन दुनिया की खबर महज़ वही तो नहीं होती। मगर रायटर का अब भी खयाल है कि हम भारत-मंत्री के दफ्तर के बड़े अफसरों के मुँह से निकले सुनहले शब्दों की उत्सुक होकर बाट जोहा करते होंगे, और उधर दुनिया की वह असली खबर जिसके जानने को हम उत्सुक होते हैं, हमें दी नहीं जाती।

जो कोई आदमी पूरब में मलाया या जावा गया है, वह जानता है कि वहाँ और हिन्दुस्तान में मिलनेवाली खबरों में जमीन-आसमान का फर्क है! वहाँ क्या चीन, क्या सुदूर पूर्व, क्या अमरीका और क्या यूरप—सबकी ताज़ी खबरें ही क्यों, नया दृष्टिकोण भी पहुँचाया जाता है और

रायटर से खबरे पाते रहने के बाद यह तबदीली अच्छी लगती है। वे ताजा खबरे अमरीका की एजसियो के जरिये मिलती है जो बदकिस्मती से हिन्दुस्तान मे नही पहुँचने पाती।

इसलिए चीन के बारे मे हिन्दुस्तान मे हमे खबरे मिलती ही नही। दरअसल खबरो की कमी नही है बशर्ते कि हम उन्हे पा सके। आज चीन हर मानी मे 'समाचार'-रूप बना हुआ है।

चीन स्वय समाचार इसलिए भी है कि जो-कुछ वहाँ हो रहा है उसका दुनिया के लिए, एशिया के लिए और हिन्दुस्तान के लिए बडा महत्त्व है। चीन दुनिया के खास मुल्को मे से एक है और तमाम दुनिया को देखते हुए यूरप के छोटे-छोटे लडाका देशो की बनिस्वत उसका महत्त्व ज्यादा है। हर हालत मे एशिया और हम हिन्दुस्तानवालो के लिए चीन और उसके भविष्य का विशेष महत्त्व है।

चीन इसलिए भी समाचार है कि वहाँ जापान की फौजो ने बडी खौफनाक बरबादी ढायी है। क्या हम समझते है कि हम जो छोटी-मोटी खबरे पढा करते है उनका असली मतलब क्या होता होगा ? उनका मतलब होता है बडे-बडे शहरो पर रोजाना बमबारी, लाखो का खून और मौजूदा लडाई के तरीको की बेरहमी और हैवानियत।

लेकिन सबसे ज्यादा समाचारवाला देश वह अपने वीरतापूर्ण मुकाबले की वजह से है और इसलिए भी है कि उसने अपनी मुश्किलों को बडी बहादुरी के साथ हल किया है। सिर्फ एक महान् राष्ट्र ही ऐसा कर सकता था—महान् राष्ट्र इसलिए नही कि उसने भूतकाल मे बडे-बडे काम किये है, बल्कि इसलिए कि उसने भविष्य मे अपना दावा कायम कर दिया है। इस बदलती हुई दुनिया में भविष्य-वाणी करना मुश्किल है; लेकिन हरेक बात यही जाहिर करती है कि मौजूदा सकट मे चीन की

जीत होगी। जहाँतक फौज का ताल्लुक है, चीन दो बरस की लडाई के बाद भी आज लडाई शुरू होने पर जितना मजबूत था उससे कही ज्यादा ताकतवर है। वह मजबूत हो गया है, सगठन उसका बढ गया है और उसकी साधन-सामग्री भी अच्छी हो गयी है। लडाई के कुछ ऐसे तरीके भी उसने निकाल लिये है जो उसके लडाई मे कमजोर होने और बडी-बडी खाली पडी हुई जगहो ही के खयाल से मुनासिब है। चीनी लोगों में हौसला बहुत ज्यादा है और सिपाही और किसान एक मकसद लेकर साथ-साथ आगे बढते है। बहुत-से पुराने सेनापति, जो डरपोक, समझौते के लिए तैयार व अयोग्य थे, उनकी जगह तजुर्बेकार जवान लोग आ गये है। शुरू मे ये पुराने लोग राजनीतिक दृष्टि से हटाये जाने लायक नही थे, लेकिन जब बरबादी हुई और उनकी नाकाबिलीयत जाहिर हुई तो उन्हे हटना पडा। आज विदेश के फौजी हल्को मे यह बात सब अच्छी तरह से जानते है, और ऐसे लोगो मे जर्मन सेनापति भी शामिल है, कि अगर कोई गैरमामूली बात न हो गयी तो चीन की जीत होगी—देर भले ही उसमे लग जाये। चीनी लोग और उनके नेता काम को कम मानकर नही रह जाते, वे तो दूरदेशी से कहते है कि जहाँतक उनका सबध है लडाई तो अभी शुरू ही हुई है।

ऐसी कौनसी असाधारण घटना हो सकती है जो चीन की कामयाबी के मौको को खतरे में डाल दे? यह तो बहुत ही नामुमकिन है कि चीन के प्रतिरोध को कुचलने मे जापान अकेला रहकर ही कामयाब हो सके, लेकिन अगर सयुक्तराष्ट्र अमरीका या इग्लैण्ड जानबूझकर चीन-विरोधी नीति अख्तियार करते है तो उससे फर्क पड सकता है। लेकिन सयुक्तराष्ट्र ऐसा नही करेगा, क्योकि ऐसा करने से वह अपनी तमाम सुदूर पूरब की नीति के खिलाफ जावेगा। और इग्लैंड? मि० नेविल चेम्बरलेन

का यह इंग्लैंड कुछ भी कर सकता है ! कुछ भी हो, आज तो वह निश्चित रूप से चीन के पक्ष मे है । कल वह क्या हो जायेगा, यह सिर्फ मि० चेम्बरलेन ही जानते है ।

इस लड़ाई, इस हैवानियत और इस मारकाट के पीछे चीन मे कुछ ऐसा हो रहा है जिसका महत्त्व है । एक नये चीन का निर्माण हो रहा है जिसकी जड़े उसकी अपनी ही संस्कृति मे जमी हुई है और सदियों के आलस और कमजोरियो को दूर करके अब एक मजबूत, सुसंगठित और आधुनिक चीन उठ रहा है, जिसकी दृष्टि मनुष्यता की होगी । संकट के इन बरसो मे चीन ने जो एकता प्राप्त करली है, वह आश्चर्यजनक और प्रेरणा देनेवाली है । वह एकता सिर्फ अपने बचाव के लिए ही नही है, बल्कि वह एकता काम करने और अपना निर्माण करने के लिए भी है । लड़ाई के मोर्चो के पीछे चीन के समुद्री किनारे के पिछले प्रदेशो मे बड़ी-बड़ी योजनाएँ अमल मे आ रही है जो देश की सूरत ही बदले डाल रही है । हवाई जहाजो से बमबारी के लगातार खतरो के होते हुए भी उद्योग-धन्धो मे बढ़ती हो रही है और खास दिलचस्पी की चीज तो यह है कि तोपो की कान फोड़ डालनेवाली आवाजो के बीच भी छोटे-छोटे और घरेलू उद्योगो के लिए सहकारिता की योजना बनने जा रही है । इन घरेलू और छोटे उद्योगो से एक बड़ा फायदा यह है कि वीरान हिस्सो मे उन्हे जल्दी से चालू किया जा सकता है और खतरे के मौके पर उन्हे हटाया भी जा सकता है ।

यह है नया चीन जिसका लड़ाई के धुएँ और बरबादी के बीच बेमिसाल पैमाने पर निर्माण हो रहा है । हमे उससे बहुत-कुछ सीखना है ।

१५ जून, १९३९

: २ :

चीन में

कुछ महीने हुए एक मित्र ने मुझसे कहा कि तुम हमेशा गयी-गुजरी बातो मे फँसे रहते हो। उनसे अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर चर्चा चल गयी थी और उन्हे बीती हुई बातो से मेरा लगाव होना पसन्द न था। मचूरिया, अबीसीनिया, चेको स्लोवाकिया और स्पेन यह सारी-की-सारी बदकिस्मती और बर्बादी की दर्दनाक कहानी है और मै हमेशा गलती का पक्ष लेता हुआ दिखाई दिया। वे तो यथार्थवादी नीति के हामी थे इसलिए उन्होने कहा कि उन देशो से दोस्ती रखी जाये कि जो अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से ऊँचे दर्जे के है, या कम-से-कम उन्हे बहुत ज्यादा नाराज़ तो नही किया जाये।

मैने माना कि उन्होंने जो दोषारोपण किया है,उसका मै अपराधी हूँ, हालाँकि यह मानने के लिए मै तैयार नही हूँ कि मै यथार्थवादी नही हूँ।

इस चर्चा से हमारे सामने यह सवाल आता है कि यथार्थवाद या वास्तविकता क्या है ? क्या मौके से थोडी देर का फायदा उठा लेना ही इसकी कसौटी होनी चाहिए। या कोई दूरदेशी का दृष्टिकोण हमें सामने रखना चाहिए ? क्या सिद्धान्तों और आदर्शों की ओर भी कोई बुनियादी कसौटियाँ हैं या हम सिर्फ बाज़ारू भाषा मे ही उनकी बात सोचे ? हमारी इस मौजूदा दुनिया मे जिसमे किसी भी देश के लिए अब यह मुमकिन नही रहा कि वह अलग रह सके और जहाँ हरेक राजनैतिक सकट से दूसरे सुदूर देशो मे हलचल मच जाती है, क्या हम केवल एक ही राष्ट्र

की बात सोच सकते हैं ? डान्जिग के मामले को ही लीजिए। आज उसने यूरप भर को हिला दिया है और तमाम दुनिया के कान उधर हैं। कारण यह है कि डान्जिग महज डान्जिग ही नहीं है, बल्कि वह एक कभी न रुकनेवाला संघर्ष है जो हमारी आज की दुनिया को खाये जा रहा है।

अपने बीते हुए और मौजूदा ताल्लुकात पर मुझे कोई पछतावा नहीं है और मुझे इस बात का फख्र है कि भले ही स्पेन आज पैरों तले कुचल डाला गया है पर जरूरत के वक्त हिन्दुस्तान ने उसका साथ दिया और मैं तो अब भी बड़ी आशावादिता के साथ विश्वास करता हूँ कि प्रजातन्त्रीय स्पेन और चेका का प्रजातन्त्र जिनका उनके साथियों ने ही दगा देकर काम तमाम कर दिया है, फिर कभी-न-कभी उठ खड़े होंगे। हो सकता है कि यह मेरी खामखयाली ही हो, फिर भी मैं उनकी हिमायत करूँगा, क्योंकि मैं देखता हूँ कि उनमें मैंने जिन्दगी की वे कीमती बातें पायी कि जिनके लिए हिन्दुस्तान में हमने इतना पसीना बहाया है। अगर मैं इनको छोड़ दूँ तो हिन्दुस्तान में किसको अपनाऊँ ? और फिर वह आजादी कैसी होगी, कि जिसके लिए हम इतनी कशमकश कर रहे हैं।

मैं चीन जाता हूँ, क्योंकि वह महान् देश सैकड़ों तरह से मुझे अपनी तरफ खींच रहा है। लेकिन हमारे यहाँ जो संकट पैदा हो गया है उसमें स्वदेश से रवाना होने की मेरी मर्जी होती नहीं, लेकिन संकट तो भारत और दुनिया में हमेशा ही बना रहता है और हमारी भावनाएँ इतनी मर गयी हैं कि उसकी वकत नहीं कर सकते। तलवार की धार पर हम बैठे हैं, हम मुश्किल से सध पा रहे हैं और घटनाओं का दौरदौरा शुरू होने की बाट जोह रहे हैं। लड़ाई शुरू होगी या क्या ? हेर हिटलर क्या कहता है ? सिन्योर मुसोलिनी कहाँ है ? डान्जिग, टिंटसिन या हांगकांग में क्या हो रहा है ? मि० चेम्बरलेन क्या कहीं मछली मारने चले गये

है ? लेकिन डगमगाती किश्ती थोडी देर के लिए थमती है और जितनी देर थमी रहती है, हमे अपने काम पर लग जाना होता है।

बहुत दिनो की हिचकिचाहट के बाद मैने चीन जाना तै कर लिया। चीन जाना मैने इसलिए तै किया कि वह दूर है तो भी हवाई सफर ने उसे हमारे बहुत पास ला दिया है और दो-तीन दिन मे हम वहाँ पहुँच सकते है। वहाँ जाना भी आसान है और जरूरत आ पडे तो फौरन लौटा भी जा सकता है। हालाँकि मुझे हिचकिचाहट हो रही थी, लेकिन मैने जाना ही तै किया, क्योकि चीन के साथी हाथ से इशारा करके मुझे बुला रहे थे और अतीत की स्मृतियाँ मुझे जाने के लिए प्रेरित कर रही थी। भारत और चीन की वेदना और विजय का लम्बा इतिहास मेरी आँखो के सामने आ गया और मौजूदा मुसीबते अरब लोगो की तरह अपने डेरे-डण्डे उठा-उठाकर चुपचाप चली जा रही है। वर्तमान भी बीतेगा और भविष्य मे विलीन हो जायेगा। और भारत बना रहेगा, चीन भी बना रहेगा और अपनी और दुनिया की भलाई के लिए दोनों मिलकर काम करेगे।

चीन जाने की एक वजह और भी है। चीन ने आजादी की लडाई मे जो गौरवपूर्ण साहस दिखाया है उसका और उस दृढ निश्चय का वह प्रतीक है जो अकथ आपदाओ और अद्वितीय सकटो मे भी अमिट रहा है और अपने शत्रु के मुकाबले के लिए उसने जो एकता दिखायी, उसका भी वह प्रतीक है। मै उसको श्रद्धाजलि देने और उसका अभिनन्दन करने जा रहा हूँ।

दोस्तों ने मुझे आ सकनेवाले खतरो की चेतावनी दी है। उन्होने मुझपर जोर डाला है कि मै इस पागलपन के दुस्साहस को छोड दूँ। लेकिन, अगर हमारे लाखो चीनी भाई इन खतरों को बहादुरी से उठा

रहे है, तो निश्चित रूप से एक भारतवासी को भी उनका हाथ बँटाना चाहिए। हम खतरों से इतने नहीं डरते है कि उनसे दूर-दूर भाग। उम्र मेरी बीतती जा रही है, लेकिन खतरे उठाने की प्रेरणा अब भी मेरे अन्दर हैं। क्या मेरे मित्र मुझे इस पौष्टिक दवा और इस खुशी से महरूम रखना चाहते है ?

चीन मे जा रहा हूँ, पर दिल मेरा भारी-भारी है कि इन वर्षों मे पसीना बहाकर जो कुछ हमने खडा किया था, वह सब ढह पडता दीखता है। छिपी बुराइयाँ तमाम अपने-अपने बिलो से निकलकर सिर उठा रही है और जिस रास्ते पर हम गर्व और आत्म-विश्वास के साथ चले थे, उसपर अजनबी और मनहूस शक्ले हमला करती दिखाई दे रही है। साहस और बलिदान की भावना मानो अब जाती रही। न एक-दूसरे मे विश्वास ही बाकी बचा है और उनकी जगह कमीनापन व लडाई-झगडे लोगो मे घर कर गये है और वे एक-दूसरे पर बुरी तरह से सन्देह करने लगे है। हम अपने आपको ही भूल गये है।

लेकिन अपने आपको हम फिर पा लेगे और बुराई का आमने सामने मुकाबला करेगे और मार-मारकर उसका दम निकाल देगे। लडाई में हम फिर पडेगे। भारत के लिए हमारे हृदयो मे भरा प्रेम और देशवासियो को स्वतन्त्र करने की प्रबल इच्छा हमे आगे बढने मे प्रोत्साहन देगी।

जा तो रहा हूँ, पर मेरा दिल भारत मे बना रहेगा और जहाँ-कही मै जाऊँगा भारत का चित्र मेरे मन पर खिचा रहेगा। उस चित्र को मैने इस महाद्वीप के हजारो, हमेशा बदलती रहनेवाली शक्लो, रूपो और रगो मे देखा है। लाखो परिचित चेहरे मुझे याद आयेंगे—वे चेहरे जिनकी उन्मुक आँखो को मैने देखा है और यह जानने की कोशिश

की है कि उनके पीछे क्या-क्या छिपा है ? भारत और चीन मेरे दिमाग मे एक-दूसरे मे मिल जायेगे और मुझे उम्मीद है कि मै अपने साथ चीनियों का साहस, उनका अजेय आशावाद और अपने सामने खडी हुई मुसीबत के समय कधे-से-कधा भिडाकर सोचने की शक्ति अपने साथ लाऊँगा।

१८ अगस्त, १९३९

: ३ :

चीन-यात्रा के संस्मरण

चीन की यात्रा मे मैंने हरेक शाम को दिनभर की घटनाओ और अनुभवो को लिखते जाना शुरू किया। पहले भी डायरी रखने का शुभ सकल्प मैंने कई मर्तबा किया था, पर दूसरे कई अच्छे इरादो की तरह यह सकल्प भी बहुत जल्द निर्बल पड गया, लेकिन इस बार मैंने सोचा कि अपने अनुभवो को उनके ताजे रहते लिख डालना अच्छा है, ताकि हिन्दुस्तान के अपने दोस्तो और साथियो को भी उसका आनन्द ले लेने दूँ। इसलिए मैंने शुरू तो किया, मगर दिमाग मे यह बात जरूर थी कि मै यह सिलसिला जारी नही रख सकूगा। कलकत्ते से जिस दिन रवाना हुआ उसी साँझ को अपने अनुभवो की पहली लेखमाला मैंने सेगोन से भेज दी। पहले दिन मै कुनमिंग पहुँच गया और उसदिन थका हुआ था, तो भी दूसरे दिन का वर्णन लिख लिया और अगले दिन बडे तडके उसे डाक मे डलवा दिया। मै चुगकिग पहुँचा और उस रात को फिर बडी देर तक बैठा लिखता रहा। इसी तरह चौथी रात को भी लिखता रहा। लेकिन ये दोनो पिछले लेख हिन्दुस्तान नही भेजे गये। कुछ तो इसका कारण यह था कि मैंने सोचा कि दिनभर के व्यस्त व भारी कार्यक्रम के बाद रोजाना लिखने का नियम पालन करना बडा मुश्किल है और कुछ कारण यह था कि मेरे वर्णन या संस्मरण हवाई डाक से भी हिन्दुस्तान बडी देर मे पहुँचेगे और फिर उन दिनो चुगकिग मे लडाई के कारण पत्रो पर सेसर था। हालाँकि जो कुछ मै लिखता था सेसर को उसपर कोई ऐतराज हो नही सकता था, फिर भी इस सब सोच-विचार के बाद

मैने यह तै किया कि इस तरह का लिखना बन्द कर दूं। लेकिन असल में ठीक-ठीक सबब तो यही था कि मुझे वक्त नही मिलता था।

सिर्फ चार रात तक तो मैने लिखा, लेकिन बाद मे अपने ऊपर लदा हुआ यह काम मैने छोड दिया। लेकिन घटनाएँ एक के बाद एक घटित होती गयी और नये-नये अनुभव दिमाग मे भरते गये। मैने अपना अधिकाश वक्त चुगकिंग मे बिताया और फिर चुगतू गया। मेरा इरादा तो दूसरी कई जगहे देखने का था—खास करके उत्तर-पश्चिम को तो—जहाँ कि एट्थ रूट आर्मी (Eighth Route Army) ने जापानी फौजो को रोक लिया था—मै देखना ही चाहता था। फिर अपना काग्रेस का डाक्टरी दल भी तो था। वहाँ जाकर उसका काम देखने की भी मेरी इच्छा थी ही। लेकिन यह सब नही होना था। जब मै चुगतू मे था मेरे पास एक सन्देश पहुँचा--पहले-पहल मुझे काफी अचरज हुआ कि वह ब्रिटिश ब्राडकास्ट के जरिये पहुँचा—कि राष्ट्रपति ने मुझे शीघ्र स्वदेश मे बुलाया है। मै फौरन चुगकिंग को लौट पडा और हिन्दुस्तान आनेवाले एक हवाई जहाज मे जगह पाने की कोशिश की। इस कोशिश मे कामयाब न हो पाया, तब चीन सरकार ने मेरी मदद की और मुझे एक उम्दा डगलस कपनी का हवाई जहाज दिया जो मुझे तीन ही घटे में लाशियो ले आया। यह बर्मा की सरहद पर है। इरादा मेरा था कि नयी ब्रह्मा सडक मे लौटूंगा, मगर हुआ यह कि मुझे उसके ऊपर उडकर आना पडा।

तो, तेरह दिन मे मैने इस महान् देश की यात्रा समाप्त की। ये तेरह दिन बडे व्यस्त रहे और मै चाहता तो क्या-क्या दृश्य मैने देखे, किन-किन लोगो से मै मिला, क्या-क्या मैने अनुभव किया—यह सब लिखकर आसानी से एक किताब तैयार कर सकता था। मैने पाँच हवाई

हमले देखे—जबकि मै खोदी हुई अँधेरी गुफा मे बैठा था, लेकिन कभी-कभी आसमान मे होनेवाली लडाई को देखने के लिए झाँक लेता था। जापान के बम बरसानेवाले हवाई जहाज सर्चलाइट की किरणो से देख लिये जाते थे। वे जहाज आसपास के अँधेरे मे बडे तेज चमकते थे और पीछा करनेवाले चीनी हवाई जहाजो के हमले से बचने की कोशिश करते थे। जब सरपर मौत मँडरा रही थी तब मैने भी देखा कि चीनी गिरोहो मे आश्चर्यजनक शाति से काम हो रहा है। लडाई की भयानक सरगर्मी के बावजूद मैने देखा कि नगर मे जिन्दगी की चहल-पहल साधारण गति मे हो रही है। मैने फैक्टरियाँ देखी, गर्मियो के स्कूल देखे, सैनिक शिक्षणालय देखे, जवानो के डेरे देखे, और देखे शिक्षणालय—जो मानो अपनी पुरानी जड मे उखडकर बाँस के छप्परो मे आगये थे और नया जीवन और बल पा रहे थे। गाँवो की सहयोग-सभा के आन्दोलन और घरेलू धन्धो की उन्नति ने मुझे बडा लुभा लिया। मै विद्वानो से, राजनेताओ से, सेनापतियो से और नवीन चीन के नेताओ से मिला और सबसे ज्यादा बढकर तो मुझे चीन के सर्वश्रेष्ठ नेता और अधिनायक, प्रधान सेनापति च्याग-काई-शेक से कई मर्तबा मिलने का सुअवसर मिला। चीन के सगठित होने और अपने आपको स्वतन्त्र करने के दृढ सकल्प को मैने उनमे मूर्तिमान् देखा। यह भी मेरा सद्भाग्य था कि मै उस देश की सर्वश्रेष्ठ महिला श्रीमती च्याग से मिला जिनमे राष्ट्र को लगातार प्रेरणा मिलती रही है।

लेकिन चाहे मै वहाँके प्रमुख और प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषो से मिला, पर कोशिश मेरी हमेशा यही रही कि मै चीन के निवासियो को समझ सकूँ और उनसे कुछ प्रेरणा ले सकूँ। मैने उनके विषय मे और उनके गौरव-पूर्ण सास्कृतिक इतिहास के सम्बन्ध मे बहुत पढा था और मै उस वास्त-

विकता को देखना चाहता था। वास्तविकता मेरी आशा के अनुकूल ही निकली—मैंने उस जाति को विज्ञ, गभीर और अपने महान् अतीत के अनुकूल बुद्धिमान ही नही पाया, बल्कि मैंने पाया कि वे बड़े बलिष्ठ जीवन और शक्ति से परिपूर्ण लोग है—और आधुनिक परिस्थिति से सामजस्य स्थापित करनेवाले है। बाजार मे जाते हुए मामूली आदमी के चेहरे पर भी हजारो वर्षो की सस्कृति की छाप है। कुछ हद तक मैंने यही आशा बाँधी थी। लेकिन मुझे जिसने सचमुच प्रभावित किया वह नवीन चीन की अद्भुत शक्ति थी। सैन्य-बल का मैं कोई पारखी नही था, पर मै यह कल्पना तक नही कर सकता कि ऐसी जीवनी शक्ति और सकल्पवाली और युग-युग का बल अपने पीछे रखनेवाली वह जाति कभी कुचली जा सकती है।

हर जगह मुझे विपुल सद्भावना और आतिथ्य मिला और मुझे शीघ्र ही विदित होगया कि व्यक्तिगत महत्त्व मे यह वस्तु बडी है। मुझे भारत का, काग्रेस का, प्रतिनिधि समझा गया हालाकि मेरी ऐसी कोई हैसियत नही थी, और चीनवासी इस बात के लिए उत्सुक और उत्कण्ठित थे कि भारतीयो से मित्रता करे और सम्पर्क बढाये। यह भी तो मेरी हार्दिक इच्छा थी। इसलिए इससे ज्यादा खुशी की बात मुझे और क्या हो सकती थी?

इस तरह १३ दिन बाद मै लौट आया—विवश होकर, लेकिन उसे लाजमी समझकर, क्योकि भारत का बुलावा उस सकट के समय मे अनिवार्य था। लेकिन वह मेरा छोटा-सा प्रवास सचमुच मेरे ही लिए नही, हिन्दुस्तान और चीन के लिए कीमती होगया है।

एक अफसोस मुझे रहा। मै मेडम सन यात-सेन से न मिल सका, कि जो तबसे चीन की क्राति की जीवन-ज्योति और आत्मा बनी हुई है

जबसे कि उस क्रांति का वह विधायक उठ गया। मैंने उनसे १२ बरस पहले आध घण्टे मुलाकात की थी, तबसे मेरी इच्छा रही थी कि मैं उनसे फिर मिलता मगर बदकिस्मती से वे उस समय थी हांगकांग मे और मैं उस तरफ न जा सका।

१

२० अगस्त, १९३९

बमरौली हवाई-अड्डे पर हमे बहुत देर इन्तजार करना पड़ा। इस तरह का इन्तजार करना बड़ा बुरा लगता है और कुछ-कुछ उससे झुंझलाहट भी होती है। उस वक्त ठीक-ठीक यह भी तो मालूम नहीं होता कि क्या किया जाये या किस तरह से किया जाये ? बहुत देर तक विदाई होते रहना भी बवाल हो उठता है। आखिरकार एयर फ्रास लाइनर आया और तरीके से उतरा। जहाज आने के बाद भी चालीस मिनट फिर रुकना पड़ा। ड्राइवर और दूसरे राहगीरो ने खाया-पिया। और भी झुंझलाहट हुई।

दोपहर को १-३५ पर हम रवाना हुए। जहाज अच्छी तरह से चला। थोड़ी देर बाद हम बनारस पहुँचे और शहर का अच्छा दृश्य देखा। फिर मै सो गया। बड़ी अचरज की बात है कि मै हवाई-जहाज मे न जाने कितना सोता हूँ। यह तो शायद कुछ-कुछ पिछली थकान और कम सो पाने का नतीजा था। लेकिन कुछ हवाई जहाज के चलने और हिलने-डुलने से भी नींद आ जाती है। कलकत्ते तक के सफर मे करीब-करीब मैं सोता रहा। एक बार चौक कर उठा, तो देखा कि हम लोग पहाड़ी जगलो के देश मे नीचे उड़ रहे है। कभी-कभी हम किसी पहाड़ी की चोटी के ऊपर होकर निकल जाते थे। पहाड़ी की

शक्लें अजीब हैं, और तमाम देश एक अपरिचित-सा—कलकत्ते जानेवाली ट्रेन से हम जो कुछ देखते हैं, उससे बिलकुल निराला ही—दिखाई देता है। कुछ समझ में नहीं आता, कहाँ है? लेकिन पता लगाने का कोई जरिया हमारे पास नहीं है और नींद इतनी लग रही है कि कौन तकलीफ करे? गालिबन् हम लोग पूर्वी बिहार के ऊपर उड़ रहे होंगे। बड़ी तेज हवा सामने से आरही है। इससे चाल कम हो जाती है। यों इलाहाबाद से कलकत्ते तक का सफर अच्छी हालतों में ढाई घंटे का होता है और अक्सर तीन घंटे तक लग जाते हैं। पर अब तो उसमें साढ़े तीन घंटे लगते हैं। दमदम हम पाँच बजने के थोड़ी ही देर बाद पहुँचे। कलकत्ता साढ़े पाँच पर।

कलकत्ता

कलकत्ते में अपने दोस्तों को मैंने जानबूझकर अपने आने की खबर नहीं दी थी। थोड़े-से घंटों के लिए दौड़-धूप कराने से फायदा भी क्या? खास तौर से ऐसी हालत में जब कि जहाज के और साथी मुसाफिरों के साथ होटल में ठहरने का मेरा इरादा था। इन हवाई जहाजों से सफर करने में उनके होटलों में जाना और उनके सुपुर्द रहना हमेशा सबसे अच्छा होता है, क्योंकि सवेरे बहुत जल्दी उठना पड़ता है। अगर कोई अपने मित्र के यहाँ ठहरे तो लेट होने और दूसरों को भी लेट करने का और शायद कभी-कभी जहाज छूट जाने तक का खतरा रहता है। इसलिए कम्पनी होटल का भाड़ा भी टिकट में शामिल कर लेती है।

चीन के कौंसल-जनरल (प्रमुख राजकीय प्रतिनिधि) को मैंने अपने कलकत्ते से गुजरने की खबर दे दी थी, क्योंकि मैं उनसे मिलने की उम्मीद करता था। वह हवाई-अड्डे पर अपने और दूसरे चीनी दोस्तों के साथ मौजूद थे और यह देखकर अचरज हुआ कि वहाँ पत्र-

प्रतिनिधियो और दूसरे आदमियो की भीड-सी लगी है।

मुझे पता चला कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर कलकत्ते मे है। यह एक अच्छा मौका था, जिसे मै क्यो खोता ? क्योकि गुरुदेव से मिलना तो हमेशा बडी खुशी की बात होती है। अपने होटल से मै फौरन ही उनके घर पहुँचा और थोडे से वक्त मे उन्होने एशिया की सस्कृतियो के सगम पर बात की और बताया कि क्यो हिन्दुस्तान को पूर्वी देशो से सम्पर्क बढाना चाहिए।

इस बात से वह खुश थे कि मै चीन जारहा हूँ। उन्होने जोर देकर कहा कि जापान भी जाना, खास तौर से जापानियो से यह कहने के लिए कि वे आजकल चीन मे जो काम कर रहे है, उसमे अपनी आत्मा को न गिराएँ। वह इस बात के लिए इच्छुक थे कि हम जापान और जापान की निस्बत अपनी स्थिति साफ-साफ प्रकट करदे। जापान के सैनिकवाद और साम्राज्यवाद और आतक की, जो उन्होने चीन मे फैला रखा है, हम सख्त मुखालफत करते है, लेकिन जापानियो के प्रति हमारी कोई दुर्भावना नही है। उनके साथ हम दोस्ती करना चाहते है, लेकिन इस गलत बुनियाद पर नही। चीन की मुसीबत तो खौफनाक थी ही, जापान का नुकसान भी कम नही था और यह हैवानियत-भरा साम्राज्यवाद उनकी आत्मा को ऐसी चोट पहुँचा रहा है, जो हमेशा बनी रहेगी।

मैने उन्हे यकीन दिलाया कि मै जापान जाना बहुत चाहता हूँ। बहुत दिनो से मै जापान जाना चाह रहा हूँ, लेकिन इस वक्त वह मुश्किल ही दीखता है, क्योकि उसमे वक्त बहुत ज्यादा लगेगा। राष्ट्रीय चीन को पार करके मै कई मोर्चों पर होकर तो जापान के अधीन भागो मे पहुँच नही सकता। मुझे हागकाग वापस आना होगा

और फिर वहाँसे सीधे समुद्र से या हवाई जहाज से जापान जा सकूँगा। इसमे हिन्दुस्तान से जितने दिन बाहर रहने की बात थी, उससे कही ज्यादा दिन लग जायेगे। इसके अलावा मुझे अपनी ताकत पर भरोसा नही है कि मै जापान की सरकार को अमन-चैन के और जन-तन्त्रीय तरीके अख्तियार करने के लिए राजी कर सकूँगा। और अमल मे उस वक्त जापान की सरकार से मिलना भी मुमकिन नही था।

चीनी कौंसल-जनरल आये और मुझे अपने स्थान पर ले गये। वहाँ से हम एक चीनी होटल मे गये, जहाँपर कलकत्ते के दो दर्जन चीनी लोग दावत के लिए जमा हुए थे। मुझे एक खूबसूरत रेशमी झण्डा भेट किया गया, जिसपर चीनी जबान मे कुछ लिखा था। उसमे मेरा हार्दिक अभिनन्दन किया गया था और आगे के सफर के लिए शुभ कामनाएँ की गयी थी। मुझसे साफ-साफ और कुछ माफी-सी माँगते हुए कहा गया कि दावत बहुत मुख्तसिर है, ताकि मुझे देर न हो। चीनियों का भोजन मुझे पसन्द है, पर उनकी दावतो से मुझे डर लगता है। उनका हल्का खाना तक इतना भारी और देर तक चलनेवाला हो जाया करता है कि मुझसे तो बर्दाश्त नही हो सकता। दावत बढिया हुई, सात बार परोसा गया, और जब मै आनन्द से खारहा था, तब अचानक चीनी दावतो के खत्म न होनेवाले सिलसिले की चर्चा सुनकर मै सहम गया।

वह खुशगवार दावत आपस मे सद्भावनाएँ प्रकट करने कराने के बाद खत्म हुई और मै झटपट अपने होटल मे लौट आया। थोडी-सी चिट्ठियाँ लिखी, फिर कुछ दूसरे इन्तजाम। इधर आधीरात का घटा बजा और उधर मै सोया। मुझे खबर दी गयी थी कि हमे तीन बजे बुलाया जायेगा, और ३,-४० पर हमे होटल से चल देना होगा। ऐसा

वक्त हवाई सफर का मजा बहुत कुछ किरकिरा कर देता है। फिर अगर सफर करते हुए कोइ ओघने लगे तो कोई ताज्जुब नही होना चाहिए। इस तरह पहला दिन बीता।

२

२१ अगस्त, १९३९

चीनी कौंसल जनरल और दूसरे दोस्त सवेरे साढे तीन बजे होटल मे आये। हवाई अड्डे पर इतने सवेरे कलकत्ते के अपने दोस्तो और साथियो की भीड-की-भीड देखकर मुझे अचरज हुआ। उनमे बहुत से मुझसे नाराज हुए कि मैने पहले से अपने आने की खबर क्यो नही दी ?

सुबह साढ़े-चार बजे हमारा जहाज चला और मुझे अपनी आराम-कुर्सी पर नीद आने लगी। पौ फटी, मैने जगकर देखा कि समुद्र मे विलीन होते हुए बगाल की झलक दिखाई देरही है।

अक्याब

सुबह कोई सात बजे हम अक्याब पहुँचे। मैने देखा कि वहाँके हिन्दुस्तानी मेरा स्वागत करने के लिए इकट्ठे है। दिल्ली रेडियो से उन्हे मेरे आने की खबर मिल गयी थी। वहाँप हमे आधा घटे ठहरकर चलना था। मुझे फिर नीद आ गयी। और कुछ देर बाद एक कँपकँपी के साथ फिर नीद खुल गयी। साफ है कि हम बहुत ऊँचाई पर उड रहे थे और बादल हमसे बहुत ऊपर थे। बादलो को छोडकर कुछ नजर नही आता था।

बैंगकॉक

बैंगकॉक हम लोग अपनी घडियो से बारह बजे के करीब पहुँचे, लेकिन बैंगकॉक मे उस वक्त एक बजा था। खूबसूरत हवाई-अड्डा था और हिन्दुस्तानियो की बडी भीड मेरा स्वागत करने को

तैयार थी । उन्होने मुझसे कहा कि कोई मील दो मील पर बहुत से हमारे देशवासी इकट्ठे हुए है और मेरे लिए वहाँ इन्तजार कर रहे है । झटपट मोटर से मै वहाँ ले जाया गया और चन्द मिनटों तक भाषण देने के बाद मै फिर लौट आया ।

यह कहना गलत है कि हम लोग बैंगकॉक पहुँच गये । शहर तो हवाई-अड्डे से अठारह मील दूर था । आसमान से दूर पर उसकी कुछ झलक हमे मिल गयी थी ।

स्याम के पत्रकार मुझसे मुलाकात करना चाहते थे । उनके कुछ सवालो का जवाब मैने दिया । हिन्दुस्तानी चाहते थे कि मै वादा करूँ कि वापसी सफर मे मै जरूर बैंगकॉक ठहरूँगा । ठहरना तो मै चाहूँगा । देश मुझे अपनी तरफ खीचता है और वह हमारा पास-पडोसी ही तो है । हवाई जहाज से सिर्फ सात घटे का रास्ता है । उस देश को स्याम नही कहा जाता । वह थाईलैण्ड—'आजाद लोगों का देश'—के नाम से मशहूर है । विदेशो मे भी हमे शीघ्र ही उसे थाईलैण्ड के नाम से पुकारना पडेगा ।

बैंगकॉक के हवाई-अड्डे पर फूलो की जैसी खूबसूरत मालाएँ मुझे भेट की गयी, वैसी मैने कभी नही देखी । और मालाओ मे मेरे तरह-तरह के तजुरबे है । बडी चतुराई और कलात्मक ढग से वे बनायी गयी थी । खूबी के साथ रगों का मेल उनमे किया गया था ।

बैंगकॉक के पास जो हिन्दुस्तानी मुझे मिले, वे हिन्दुस्तान के जुदा-जुदा हिस्सो के थे, लेकिन ज्यादातर उत्तर-पश्चिम के थे । बहुत-से मुसलमान सिक्ख थे । इसलिए मैने उनसे हिन्दुस्तानी में ही बातचीत की । जब मै बैंगकॉक छोड रहा था, तभी सेगौन से बेतार की खबर आयी कि वहाँपर हिन्दुस्तानी मेरे स्वागत की व्यवस्था कर रहे है ।

सेगौन

बैंगकॉक के हवाई-अड्डे से हम दोपहर को १—४५ पर चल दिये। सफर मे कोई खास बात नही हुई। मुझे कुछ उम्मीद थी कि शायद हम अगकोर पर होकर गुजरे और उसके खण्डहरों की एक झलक मुझे देखने को मिल जाये, लेकिन वह पूरी न हुई। सेगौन पहुंचने से कुछ पहले हम एक बहुत बडी झील पर होकर गुजरे। हो सकता है वहाँ बाढ का पानी इकट्ठा हो गया हो। कोई पॉच बजे हम सेगौन पहुँचे। हिन्दुस्तानियो की भीड मालाएँ और खूबसूरत गुलदस्ते लिये खडी थी। ज्योही मै जहाज से उतरा, एक हिन्दुस्तानी आगे बढे और उन्होने अच्छी फ्रेंच जबान मे मेरा स्वागत किया। उन्होने तो जोरदार भाषण ही दे डाला। मै परेशान था, क्योकि मुसाफिरो को चुगी के दफ्तर मे जाना था। फौरन ही मैने और भी महसूस किया कि जैसे मै फ्रास के किसी प्रान्त मे हूँ। भाषा, दुकाने, चौडी छायादार सडके, गलियाँ, और अखबार बिकने व बैण्ड बजाने के स्थान इन सबसे मुझे वहाँ फ्रास की ही याद आयी, गाडी से मै शहर मे खूब घूमा, हालाँकि पानी पड रहा था। शहर बहुत खूबसूरत था। तेज रोशनी से जगमगा रहा था। और खास-खास दुकानो पर 'नियन' से होनेवाली रोशनी देखी। बहुत-सी फ्रेंच दुकाने भी वहाँपर थी। चीनियो का एक पूरा क्वार्टर ही था, और हिन्दुस्तानी दुकानो की खासी तादाद थी।

देखने मे इडोचीन मे कोई पाँच हजार हिन्दुस्तानी है, जिनमे से ज्यादातर मध्यम श्रेणी के लोग है और चोकीदार है, उनमे से अधिकाश तमिल देश के है। करीब-करीब सभी थोडी-बहुत फ्रेंच जानते है और बहुत से तो खूब बोल लेते है। हम लोग तो जैसा देश होता है वैसा ही भेष बना लेते है। हिन्दुस्तान मे हमने अग्रेजी को अपना लिया

है, और इण्डो-चीन मे फ्रेंच को। सरकारी नौकरी मे भी बहुत से हिन्दुस्तानी दिखाई दिये। उनमे से ज्यादातर पाण्डचेरी के बाशिन्दे थे। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि पाण्डचेरी के बहुत से हरिजन यहाँ मजिस्ट्रेट है।

चीनी लोगो की तादाद तो बहुत है। मुझे बताया गया कि पढे-लिखों की तादाद यहाँ बहुत ज्यादा है, कोई ३० फी सदी, जिनमे से बहुत से फ्रेंच जानते है। अनामी भाषा लेटिन लिपि मे पढायी जाती है। पुराने चीनी अक्षरो का प्रयोग बहुत-कुछ छोड दिया गया है।

राजनैतिक जीवन यहाँ लोगो मे नही और सार्वजनिक सभाओ जैसी चीज़ मुश्किल से ही कोई जानता है।

शाम को मुझे यहाँके नत्तूकोट्टै मन्दिर मे या मन्दिर की परिक्रमा मे ले जाया गया। वहाँ बहुत से हिन्दुस्तानी इकट्ठे हुए थे। मुझे बर्मा और लका मे भी पता चला था कि नत्तूकोट्टै मन्दिर ही अक्सर ऐसे जलसो के लिए काम मे लिया जाता है, क्योकि यहाँपर हॉल नही है। मुझे एक अभिनन्दन-पत्र भेट किया गया जिसका जवाब मैने कुछ विस्तार से दिया।

यह देखकर खुशी होती है और अचरज भी होता है कि इन दूर पडे हिन्दुस्तानियो की बस्ती मे अपनी मातृभूमि के लिए इतना प्रेम और अभिमान है। बदकिस्मती से हमसे वे एकदम अलहदा है। हमे उनसे निकट सम्पर्क कायम करना चाहिए।

इन देशो का सफर करनेवाले मुसाफिर पर एक बात का असर पडता है वह है चीनियो और हिन्दुस्तानियो की भारी ताकत और हिम्मत। बहुत से चीनी और हिन्दुस्तानी दूर देश चले जाते है और बिना किसी के अपनी ही मेहनत से खुशहाल हो जाते है।

इस तरह दूसरा दिन खतम हुआ। मन में इस विचार से बड़ा आनन्द आ रहा है कि आज सुबह मैं कलकत्ते में था और दिन में बर्मा और स्याम से होकर गुजरा और अब मैं इंडो-चीन में हूँ।

३

२२ अगस्त, १९३९

सुबह छः के बाद ही हम सेगोन से चल दिये और उड़ते-उड़ते बादलों से बहुत ऊँचे चले गये। हम बहुत ऊँचाई पर उड़ रहे होंगे, क्योंकि सर्दी काफी मालूम देती थी। नीचे धरती हमें दिखाई नहीं देती थी और कभी-कभी बादल हमें घेर लेते थे और कुछ सूझता नहीं था। कोई पाँच घंटे की उड़ान के बाद ग्यारह बजे हम हैनोय पहुँचे। एयर-फ्रांस से सफर का अब अखीर था। हमने अपने हवाई जहाज 'ला विले डी कैलकटा' से विदा ली। मुझे यह देखकर अचरज हुआ और खुशी भी हुई कि जहाज का नाम बँगला में भी एक तरफ लिखा था। मेरे खयाल से यह कलकत्ते के लिए, जिसका नाम उस जहाज पर था, एक बड़ी बधाई की बात है।

हैनोय

चीनी कौंसल (राजकीय प्रतिनिधि) और बहुत से हिन्दुस्तानियों ने हमारा स्वागत किया। कौंसल ने बताया कि दोपहर बाद तीन बजे कुनमिंग को जानेवाले जहाज में मेरे लिए एक सीट ले ली गयी है। हिन्दुस्तानी दोस्त चाहते थे कि एक या दो दिन मैं वहाँ ठहरूँ, लेकिन अपने कार्यक्रम में कोई हेरफेर न कर सका।

एक सिंधी सौदागर मुझे अपने घर ले गये। उनकी बहुत बड़ी दुकान थी, जिसमें खिड़कियों पर खूबसूरत-सी फुर्तीली अनामी लड़कियाँ

चीजें बेच रही थी। वहाँके हिन्दुस्तानियो की एक सभा हुई और मैंने भाषण दिया। मैंने देखा कि कुछ सिंधियो को छोडकर बाकी सब तामिल थे, जिनमे हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। कुछ सिंधियो और दो-तीन मुसल्मानो को छोडकर कोई भी हिन्दुस्तानी नही समझता था, और अग्रेजी तो उनसे भी कम समझ सकते थे। तामिल के अलावा वे फ्रेंच खूब जानते थे। अपनी फ्रेंच पर भरोसा न करके मैंने हिन्दुस्तानी मे भाषण दिया और बाद मे एक मुसलमान ने जो शायद वहाँकी मसजिद के इमाम थे, उसका तामिल मे तरजुमा किया।

हिन्दुस्तान मे जितनी अग्रेजी फैली है, उससे भी ज्यादा वहाँ फ्रेंच का राज्य है। भिखारी लडके-लडकियाँ तक फ्रेंच भाषा मे भीख माँगते है। पढे-लिखो की तादाद वहाँ ज्यादा मालूम पडी।

हैनोय मे कोई दो सौ ढाई-सौ हिन्दुस्तानी है। सब कारबार में लगे है और उनका काम अच्छी तरह से चल रहा है। वे सब यूरोपियन ढग के कपडे पहने हुए थे। बैंगकॉक और सेगौन की तरह धोतियाँ यहाँ नही थी।

मै मोटर मे शहर मे होकर गुज़रा। वह सेगौन से बडा है और यहाँकी चाल–ढाल भी फ्रासीसी है। दोनो मे सेगौन मुझे ज्यादा लुभावना जान पडा।

तीसरे पहर सवा तीन बजे मै हवाई जहाज से कुर्नमिग को रवाना हुआ। हिन्दुस्तानियो और चीनियो की भीड ने मुझे हार्दिक बिदाई दी। जिस जहाज से मै सफर कर रहा था, वह यूरेशिया कम्पनी का था। यह चीनी-जर्मन कारपारेशन है। जहाज जर्मनी का बना हुआ था और उसका ड्राइवर भी जर्मन था। एयर फ्रास जहाज से वह बहुत छोटा था, उसमे दस मुसाफिरो के लिए जगह थी। जगह की कमी की वजह से हम बडे घिरे-से महसूस करते थे।

ज्योंही हम चीन के करीब पहुँचे मेरे अन्दर खुशी की एक लहर उठी। कुदरती नज्जारे भी बड़े खूबसूरत थे। पीछे पहाड थे और एक नदी उनमें से निकलकर चक्कर खाती हुई घाटी मे बह रही थी। जगल से लदी पहाडियाँ ऊपर छायी हुई थी। कही-कही हरे-हरे खेत और छोटे-छोटे गाँव थे। नदी करीब-करीब लाल दिखाई देती थी और पहाडियों के खुले हिस्से भी गहरे लाल थे। शायद इसी रग की वजह से हैनोय की नदी 'लाल नदी' कहलाती है।

जब हम पहाडो के पास पहुँचे तो बहुत ऊँचाई पर उडने लगे और कोई चार हज़ार फीट पहाडो के ऊपर पहुँच गये। कुदरती दृश्यो को ऊपर से देखने मे धरती से देखने की बनिस्बत बहुत फर्क पड जाता है। नीचे से देखने मे जो बहुत खूबसूरत दिखाई देता है ऊपर से उतना नही दिखाई देता; लेकिन जो दृश्य मैने देखा, वह बहुत खूबसूरत था और तरह-तरह के पहाडो की जुदा-जुदा शक्लो की वजह से नीरसता नहीं आने पाती थी। एक गहरी नीली झील, जिसके चारों तरफ हरे और लाल पत्थर थे, बडी खूबसूरत दिखाई देती थी। उसके बाद ही दूर एक और झील दिखाई दी, लेकिन तभी जहाज का नौकर आया और सब पर्दे गिराकर हमे आगाह कर गया कि हम पर्दे न उठाये। शायद मै सोचता हूँ ऐसा लडाई के लिए अहतियातन् किया गया होगा। इस तरह मुसाफिरों को 'पर्दानशीन' कर दिया गया। हाँ, जर्मन चालक सारा दृश्य देख सकता था।

कुनमिग आ रहा था और हमे ऐसा लगा कि जहाज उतर रहा है। फौरन ही जहाज के धरती पर उतरने से हमे हल्का-सा धक्का लगा और हम चीन देश मे खडे थे।

कुनमिंग (यूनानफू)

क्योमिन्ताग के एक प्रतिनिधि, मि० योग कोता, जोकि लेजिस्लेटिव

ब्यौरो के मेम्बर भी हैं, चुगकिंग से मेरा स्वागत करने के लिए ही आये थे। कुनमिंग के मेयर भी वहाँ थे। मुझसे कहा गया कि एक रात मुझे शहर मे बितानी होगी और चुगकिंग दूसरे दिन जा सकूँगा। मैं एक होटल मे ले जाया गया।

चीन मेरे लिए एक नया मुल्क था—कथा-कहानी और इतिहास और मौजूदा जमाने के बहादुरी के कामोवाला अद्भुत देश! और मैं तो हर बात के लिए तैयार था। लेकिन जब मै होटल में पहुँचा तो मुझे कुछ अचरज हुआ। जितने होटल मैंने देखे थे, उन सबसे वह एकदम निराला था। उसका दरवाजा, खूबसूरत चौक और उसका बाहरी रूप बहुत आकर्षक था और खास चीनी ढग का था। लेकिन होटल के बारे मे मेरी जो कल्पना थी उनसे वह जरा भी नहीं मिलता था। मैंने उसके मुताबिक ही अपने को बनाया और निश्चित किया कि चीनी ढंग ऐसा ही होता होगा। जो कमरा मुझे दिया गया था, वह कुछ छोटा था, लेकिन साफ और आरामदेह था। गरम और ठडे पानी का इतजाम भी उसमें था। होटल का यह भेद बाद मे खुला, जब मुझे बताया गया कि वह पहले मदिर था पर बाद मे उसे होटल बना लिया गया। मुसाफ़िरों के ठहरने के कमरे पादरियो या पुजारियो के लिए रहे होगे, ऐसा दिखाई देता था, हालाँकि इसमे शक नही कि बाद मे उन्हे फिर से बनाया गया और उसमे सामान भी जुटा दिया गया था। फिर भी पुजारी उनमें अच्छी तरह से रहते होंगे। मेरा ध्यान हिन्दुस्तान के झगड़ो की तरफ गया जो मदिरों और मसजिदो को लेकर बराबर चलते रहते है। लेकिन चीनियों ने मदिरों को होटल बनाने में कोई रोक-थाम नही की और मुझे बताया गया कि बहुत-से मदिर स्कूल बना लिये गये है।

होटल का मैनेजर फ्रासीसी था। उसने हमको बढ़िया फ्रासीसी खाना

खिलाया और पीने के लिए ईविअन पानी दिया। उसके पास अच्छी फ्रेंच शराबें भी थी। वैसे लड़ाई के दिनो में चीन मे आसानी से रहा जा सकता है, लेकिन कुनमिंग नमूने का चीनी शहर नही था। वह सरहद के करीब है, इसलिए विदेशी लोग और विदेशी माल आते रहते हैं। होटल का सारा वायुमण्डल फ्रांसीसी था। होटल के नौकर चीनी बच्चे तक फ्रेंच बोलते थे।

हिन्दी चीन में और यहाँ मुझे अपनी बहुत दिनो की दफ़नायी हुई फ्रेंच का जंग छुड़ाना पड़ा; क्योंकि कुछ आदमियो से बातचीत करने का दूसरा कोई ज़रिया ही नही था। हिन्दुस्तानियों से फ्रेंच में बात करना मुझे अजीब मालूम होता है। फिर भी वह उतना अजीब नही है जितना हिन्दुस्तानियों का आपस में अंग्रेजी मे बातचीत करना।

मोटर से शहर में चक्कर लगाने और पैदल घूमने के लिए मै गया। पुराना शहर था, जिसकी तीन या चार लाख की आबादी थी। लेकिन लड़ाई की वजह से हाल ही मे आबादी बढ़ गयी थी, क्योंकि चीन से बाहर जाने के रास्तो मे से कुनमिंग भी एक है। मुझे पता चला कि कुनमिंग और यूनानफू जगहें एक ही है। आज शाम तक मै सोचे बैठा था कि वे दो जुदा-जुदा शहर होगे। यूनानफू पुराना नाम है, और कुनमिंग नया है और बिना किसी फ़र्क के दोनो नाम इस्तैमाल किये जाते है।

एक चीनी दोस्त के साथ मे शहर मे घूमा और इस कोशिश मे रहा कि चीन के वायुमण्डल का अन्दाज़ करूँ, और लड़ाई के निशानात पाऊँ। सिपाहियो की यहाँ-वहाँ बिखरी टुकड़ियो के अलावा लड़ाई के कोई निशान न थे। कुनमिंग पर गोलाबारी नही हुई थी। सड़कों में गोल पत्थर लगे थे और वहाँ रोशनी ज्यादा नहीं थी। दुकानो पर रोशनी

खूब थी और वे आकर्षक थी। खाने की चीजें और कपडे और दूसरी चीजे बहुतायत से थीं। लेकिन फिर भी शान-शौकत की चीजों की कमी थी। सडको पर लोगों की भीड थी और रिक्शाएँ चल रही थीं। अख-बार बेचनेवाले लडके अपने-अपने अखबारो के नाम और खबरे जोर-जोर से चिल्लाकर बता रहे थे। निश्चय ही शहर का रूप बिगड रहा था और वहाँ तडक-भडक नही दिखाई देती थी; लेकिन लोग खुश और बेफिक्र दिखाई देते थे। किताबों की बहुत-सी दुकाने थीं। फल बहुता-यत से दिखाई पडते थे। अनार मैंने बहुत ज्यादा देखे। सडक पर बहुत से धुनिये अपनी धुनकी लिये मेरे पास से गुजरे। शायद दिन का काम खत्म करके जा रहे थे। एक जगह पर धुनिये काम कर रहे थे और एक औरत बैठी थी। एक बडे-से चर्खे से वह सूत को दोहरा कर रही थी। छोटे-छोटे मोटे-ताजे बच्चे खुश होकर इधर-उधर खेल रहे थे और छोटे-छोटे लडके और लडकियाँ हमारे पास होकर गुजरे। फिक्र उन्हे नही थी और वे हँस रहे थे।

आमतौर से फैले भद्देपन की वजह शायद यह थी कि सब कपडो के रग एकसे थे। करीब-करीब सभी मर्द, औरते और बच्चे एक गहरे नीले या काले रंग की कमीज या गाउन पहने थे। चीनी पोशाक मुझे अच्छी लगती है। अगर वह अच्छी तरह से तैयार की जाये तो वह बडी खूबसूरत और शानदार लगती है और काम करने के खयाल से भी वह अच्छी है। उस पोशाक में खासकर लडको और लड़कियों दोनों के लिए एक कमीज और पाजामा होते है। कमीज शरीर में चुस्त होती है जो लम्बी होती है या छोटी। बडी लड़कियाँ अक्सर एक लम्बी गाउन पहनती है जो नीचे पैर तक पहुँचती है; लेकिन एक तरफ को घुटने तक कटी होती है। यह लम्बी गाउन बड़ी खूबसूरत होती है;

लेकिन काम के खयाल से ज्यादा अच्छी नही होती ।

चीनी कुली और मजदूर सभी धूप के कारण घास या बाँस के बने टोप लगाते हैं । हैनोय मे मैने देखा कि हरेक औरत और मर्द मजदूर टोप की तरह एक मुडी टोकरी इस्तेमाल करता है । धूप से बचने की यह सस्ती, अच्छी और हल्की टोपी है । कभी-कभी उसका किनारा इतना बडा होता है कि मेह मे भी छाते की तरह काम आता है । मेरे खयाल से हमारे हिन्दुस्तानी किसानो मे भी इसी तरह धूप के टोप बनाने और पहनने का शौक पैदा करना चाहिए । इससे उनको बडी मदद मिलेगी । मुझे यकीन है कि बाँस या सरकडे के बने धूप के टोप उडीसा और मलाबार मे पहने भी जाते हैं ।

एक भोज मे मै प्रो० तिन तुआन सेन, खानों के एक्सपर्ट मि० के० टी० ह्वाग और चीन के डाक-विभाग के डाइरेक्टर-जनरल, मि० सिन सुग से मिला । उनसे बहुत दिलचस्प बाते हुई ।

चुगकिंग का प्रोग्राम जो मेरे लिए रखा गया है, मुझे दिखा दिया गया है । वह बहुत बडा है, लेकिन है दिलचस्प । कल दोपहर मे चुगकिंग पहुँचूँगा और वहाँ शायद एक हफ्ते ठहरूँ । उम्मीद है कि रेडिओ पर भी बोलूँ ।

मै इस बात को नही भूल पाता कि कल सुबह मै कलकत्ते मे था । उसके बाद से बर्मा, स्याम और हिन्द-चीन से गुजरा हूँ और अब मैं चीन में हूँ । इन जल्दी-जल्दी होनेवाली तब्दीलियो के मुआफिक होना बडा मुश्किल है । मौजूदा परिस्थितियो से हमारे दिमाग कितने पिछडे हुए है । हम बीते दिनो की बात सोचे जाते है और आज की जो नियामते है उनका फायदा उठाने से इनकार कर देते है । तब दुनिया मे इतनी लडाई और मुसीबत है, तो अचरज क्या है ?

४

२३ अगस्त, १९३९

कुनर्मिंग की आबहवा बड़ी खुशगवार और ठंडी थी और हैनोय की गर्मी से वह तब्दीली बड़ी अच्छी जान पड़ी। रात को खूब सर्दी थी। उसकी वजह शायद यह थी कि पास ही एक झील थी। यह मुझे सुबह मालूम हुआ। वह झील मेरे कमरे की खिड़की के ठीक पीछे तक आती थी। हमारे होटल का नाम 'ग्राण्ड होटल ड्यू लैक' था।

बड़े तड़के सहन में से एक तीखी आवाज आती हुई मैंने सुनी। वह आवाज फ्रेंच व्यवस्थापिका की थी, जो सफाई और धुलाई की देखभाल करती हुई तेजी और गुस्से से फ्रेंच भाषा में चीनी लड़कों को डाँट-फटकार रही थी। और आवाजें भी आ रही थी जैसे अखबार बेचनेवाले लड़कों की।

कलेवे के बाद हम झील पर घूमने गये। जवान सैनिकों की टोलियाँ गाती हुई जा रही थी। इन सैनिको या नव-सैनिकों में से कुछ तो लड़के ही मालूम होते थे। पन्द्रह बरस से ज्यादा के नहीं। लेकिन विदेशी को चीनियों की उम्र का अन्दाज लगाना मुश्किल है।

दस बजे से बहुत पहले हम हवाई अड्डे पर पहुँच गये। वहाँपर कोलाहल-सा मचा हुआ था। प्रान्तीय सरकार के कोई मेम्बर भी उसी जहाज से सफर कर रहे थे और कर्मचारियों को विदाई देनेवालों की भीड़ इकट्ठी थी। यूरेशिया कारपोरेशन के जहाज में हम सवा दस बजे रवाना हुए। जहाज भरा हुआ था और उसमें जगह कम ही थी। सब पर्दे डाल दिये गये थे। कुछ मिनट के बाद हमें बाहर देखने की इजाजत मिली। जाहिरा तौर पर वह तो हवाई अड्डा ही था और उसमें जो कुछ था वह जनता के देखने के लिए नहीं था।

उड़ने के दरमियान ही बेतार से यह खबर हमें मिली कि केन्द्रीय कौमिन्तांग के प्रधान मंत्री, डाक्टर चू चिआ हुआ दूसरी बहुत-सी संस्थाओं के प्रतिनिधियों के, जिनमें चुगकिंग के मेयर भी शामिल हैं, नेता की हैसियत से हवाई अड्डे से आपका अभिनन्दन और स्वागत करते हैं।

चुंगकिंग

चुगकिंग पहुँचने में हमें तीन घंटे से कुछ ज्यादा लगे। रास्ते भर पहाड़-ही-पहाड़ थे और जब हम चुगकिंग के पास पहुँचे तो पहाड़ों और चट्टानी किनारों के बीच याग्त्सी नदी चक्कर लगाती हुई दिखाई दी। धरती की सतह ज़रा भी दिखाई नहीं देती थी। मुझे अचरज हुआ कि इस ऊँचे-नीचे मुल्क में हवाई अड्डा किस तरह बनाया गया होगा। इसका जवाब बड़ा दिलचस्प था और मेरे लिए तो वह अनोखा। जहाज नदी के बीचों-बीच सूखी ज़मीन पर उतरा। बहुत-से बड़े बड़े लोग वहाँ जमा हुए थे। फौज के कुछ बड़े अफसर और डाक्टर चू जिन्होंने बेतार की खबर भेजी थी, उनके प्रमुख थे। ज्योंही मैं जहाज से उतरा 'वन्दे-मातरम्' की परिचित और मधुर ध्वनि में मेरा अभिनन्दन किया। अच-रज से जब मैंने ऊपर देखा तो यूनिफार्म में एक हिन्दुस्तानी को पाया। वह हमारे कांग्रेस मेडिकल यूनिट के बीरेश मुखर्जी थे।

स्वागत में एक छोटा-सा भाषण हुआ और फूलों के गुलदस्ते भेंट किये गये। उसके बाद हम यूनिफ़ार्म में खड़ी लड़कियों और लड़कों की कतार के पास होकर गुज़रे। उन्होंने एक आवाज़ से झण्डे हिलाकर हमारा अभिवादन किया। बाद में नदी पार करने के लिए हम एक नाव पर जा बैठे।

नदी के दूसरे किनारे पर बहुत-सी सीढ़ियाँ हमारे सामने दिखाई



प० जवाहरलाल नेहरू : चीन में डॉ० चू चिया ह्वा (केंद्रीय क्यो मितांग के प्रधान मन्त्री), जनरल चेन चैंग आदि के साथ

दीं और मुझसे एक पालकी में (जिसे 'चो से' कहते थे) बैठने के लिए कहा गया। सोचा गया था कि उसमें मुझे ऊपर लेजाया जाये। इस तरह ऊपर ले जाये जाने के विचार पर मुझे हँसी आयी और फुर्ती के साथ मैंने सीढ़ियो पर चढ़ना शुरू कर दिया, लेकिन फौरन ही मुझे मालूम हुआ कि ऊपर चढ़ना आसान काम नही है। कोई २१५ बड़ी सीढियाँ थीं। मै हाँपने लगा और थक भी चला। औरों पर मैंने अपनी ताकत का रौब गालिब तो किया; लेकिन मैंने महसूस किया कि ऐसे हिम्मत के खेल कर सकूँ इतना जवान अब मैं नहीं रहा हूँ। वहाँसे हमने विदेशी ऑफिस के महमान-घर के लिए, जहाँ मेरे ठहरने का इन्तजाम किया गया था, कार ली। वहाँ फिर हमें कोई सौ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ीं। चुगकिंग पहाडो पर फैला हुआ बसा है। कुछ पहाड़ों के बीच में है, कुछ ऊपर चोटी पर और हमवार रास्ता तो बहुत ही थोडा है।

बहुत-से बडे अफसर और दूसरे लोग मुझसे मिलने आये और मैंने चुगकिंग का एक हफ्ते का कार्यक्रम जो मेरे लिए बनाया गया था, देखा। सबसे पहले उसी शाम को चार बजे एक मीटिंग थी, जिसमें १९३ संस्थाएँ मेरा स्वागत करने को थीं। इस मीटिंग में हम गये। एक बुजुर्ग राजनेता श्री यू चि-हुई ने अभिनन्दन करते हुए कुछ शब्द कहे, जिनका मैंने जवाब दिया। उसके बाद सन यात-सेन की तस्वीर के सामने राष्ट्रीय नारे लगाये गये और वन्दना की गयी। बाजे चीनी राष्ट्र-गीत बजा रहे थे। सारा दृश्य बड़ा प्रभावशाली था।

इसी मीटिंग के दरमियान मुझे मालूम हुआ कि जहाँ कहीं प्रधान सेनापति का नाम आता है, वहीं उनकी इज्जत के लिए सारे लोगों को उठकर खडा होना पडता है। इस बार-बार खड़े होने से मीटिंग में बाधा पड़ती है। इसलिए उसे रोकने के लिए मुनासिब यह है कि

उनको नेता या और किसी नाम से पुकार लिया जाया करे, नाम उनका न लिया जाये।

मीटिंग के बाद फौरन ही मुझे भोज मे पहुँच जाना था, जिसका इन्तज़ाम बहुत-सी सस्थाओ की तरफ से किया गया था। लेकिन तभी गुप्त रूप से खबर मिली कि गोलाबारी की उम्मीद की जा रही है। इसलिए खाने का मामला ही खत्म हो गया। जल्दी से हम अपने घर की तरफ लौटे। हमने देखा कि सडक पहले ही से आदमियों से भरी हुई है और सब एक तरफ को जा रहे है। सरकार की तरफ से खतरे का सिगनल अभी नही दिया गया था; लेकिन खबर दे दी गयी थी और मर्द-औरतें अपने बचाव के लिए सुरगो की तरफ तेजी से जा रहे थे। चुगकिंग को एक सहूलियत है। दुश्मनो के जहाजो के आने की खबर जल्दी ही एक घण्टे से भी पहले मिल जाती है।

उसके बाद फौरन ही खतरे का भोपू बोला और मुझसे कहा गया कि मै किसी सुरग मे चला जाऊँ। यह बात मैने बहुत नापसद की, लेकिन अपने मेजबानो से इनकार भी तो नही कर सकता था। हम लोग मोटर मे बैठकर एक खास सुरग मे गये जो विदेशमत्री के घर से मिली हुई थी। सडको पर बडा जोशीला दृश्य दिखाई दे रहा था। लोग भागकर या तेजी से चलकर सब-के-सब बमबारी से बचानेवाली जुदा-जुदा सुरगो की ओर जा रहे थे। कुछेक के साथ छोटे-मोटे बण्डल या बक्स थे। माँएँ अपने बच्चो को छाती से लगाये हुए थी और छोटे-छोटे कुनबे साथ-साथ जा रहे थे। लॉरियाँ आदमी भर-भरकर ले जा रही थीं। किसी तरह की घबराहट वहाँ दिखाई नही देती थी। वह तो लोगों का रोजमर्रा का काम था और वे उसके आदी हो गये थे।

हम विदेश-मत्री की सुरग मे पहुंचे। देखा कि उनके दोस्त जमा होते

जा रहे थे। ज्योंही दूसरी मर्तबा खतरे का सिगनल दिया गया तो हम १५×१० की एक छोटी मगर ठंडी जगह के भीतर चले गये। उसमें लोहे के दरवाजे लगे हुए थे। हमें बताया कि हमारे ऊपर पच्चीस फीट मज़बूत पथरी थी। यहाँ पर हम बैठ गये या खडे रहे; क्योंकि भीड़ बढ़ती गयी और कोई पचास आदमी अन्दर आ गये थे। रोशनी बुझा दी गयी। कभी-कभी बिजली की टार्च इस्तैमाल की जाती थी।

वहाँपर बहुत-से दिलचस्प आदमी थे। सरकारी अफ़सर, उनकी बीवियाँ, सेनापति, प्रोफेसर और अखबारनवीस सभी थे। मगर मेरा मन कही और न होता तो वक्त बडी अच्छी तरह से कट जाता। वैसे भी वहाँ गर्मी थी और जगह तग थी। चुगकिग मे तो जितनी गर्मी मै समझता था, उससे भी कही ज्यादा निकली। सुरंग के अन्दर तो थोड़ी ठडक थी, लेकिन उससे कही ज्यादा वहाँ दम घुटा जाता था। जब खास सुरगो का यह हाल था तो मुझे अचरज था कि उन आम सुरगों का क्या हाल होगा जिनमे हजारो लोगो की भीड़-की-भीड भरी होगी ?

बाहर से आनेवाली आवाज को मै ग़ौर से सुनता रहा। उससे मैं कुछ समझ न सका। लेकिन उनके आदी कानों ने पहचान लिया कि बम गिरने की आवाज है; यह पीछा करनेवाले चीनी जहाजों की भनभनाहट है और यह दुश्मनो के बम बरसानेवाले जहाजों का शब्द है।

तो हम वहाँ इतजार में बैठे रहे। कभी-कभी बाहर झांक लेते थे। चाँदनी फैली हुई थी। कितनी शात ! कितनी शीतल ! ! और अष्टमी का चाँद चैन से चमक रहा था। हत्याकाण्ड और ज़ोर की बरबादी हो रही थी। कुछ कारणों से बमबारी को रोकनेवाली तोपें नही चलायी जा रही थी और सर्चलाइटों में भी रोशनी नही थी। उस सुरंग के हमारे पड़ोसी सोचते थे कि विरोधी जहाजों में घमासान लड़ाई चल रही है।

वक्त काटने के लिए हमने अन्तर्राष्ट्रीय हालत की हाल की पेचीदगी रूस और जर्मनी की प्रस्तावित अनाक्रमण संधि व इंग्लैण्ड, फ्रांस और जापान पर उसका असर इन सबपर चर्चा की। इस संधि से बहुत से चीनी खुश थे, क्योंकि इसे वह जापान के अकेला रह जाने की निशानी समझते थे।

उस सुरंग के अँधेरे में हम दो घंटे तक बैठे रहे। सब एक दम खामोश और एकचित बैठे थे और मुझे बताया गया कि हवाई हमला अमूमन तीन-चार घंटे तक चलता है। तब्दीली के खयाल से यह तजुर्बा मुझे बुरा नहीं लगा, लेकिन अपने मन में मैं यह साफ तौर से जानता था कि एक वक्त में घंटों यों ही बन्द पड़े रहने की बनिस्बत मैं चन्द्रमा की ताज़ी और ठंडी रोशनी में जाने का खतरा उठाना ज्यादा पसन्द करूंगा। मुझे यह ज्यादा पसन्द होगा कि आदमी से चूहा बनकर बिल में बैठ जाने की बनिस्बत लड़ाई के मोर्चे पर जाऊँ या ऊपर आसमान में किसी पीछा करनेवाले जहाज़ में चक्कर लगाऊँ।

दो घंटे बीते और तब खबर मिली कि जापानी जहाज़ लौटे जा रहे हैं। सत्ताईस जहाज आये थे जिनमें से अठारह पहले ही हैंको की तरफ जाते देखे गये थे। बाकी नौ भी चले गये। रोशनी हुई और फौरन ही वहाँ पर शोर-गुल और जोश दिखाई देने लगा। वे सब लोग जो इतनी आत्मीयता से दो घंटे तक पास-पास बैठे थे, बिना किसी तकल्लुफ या दुआ-सलाम के जुदा हो गये और अपने-अपने घरों की तरफ तेजी से चले गये।

ज्यों-ज्यों आदमी अपनी छिपने की जगहों से बाहर आने लगे, सड़कें फिर भरने लगीं। जिस चाल से लोग गये थे, उससे कहीं धीमे लौट रहे थे। लौटते में हमें लोगों के बहुत-से गिरोह मिले। वे कुदाली

और बेलचा लिये उन जगहों की तरफ जा रहे थे जहाँपर कि बमबारी की वजह से नुकसान पहुँचा था। वे उसे ठीक करने जा रहे थे, दूसरे लोग अपने-अपने काम पर। चुगकिंग में फिर मामूली तौर से कारोबार चलता दिखाई देने लगा। कुछ लोग शायद ऐसे थे जिनका काम खत्म हो गया था और अपने मुर्दा और झुलसे शरीर से और आधुनिक सभ्यता की प्रगति और महानता का प्रदर्शन कर रहे थे।

हमें अबतक ठीक मालूम नहीं कि उस हमले में क्या हुआ ? जाहिरा तौर पर खास शहर तो बच गया, लेकिन उसके सरहदों पर, खासकर एक गाँव पर जो छोटा-सा औद्योगिक केन्द्र था, बम-वर्षा हुई।

५

२४ अगस्त, १९३९

पिछली रात का हवाई हमला, जहाँतक जापानियों का ताल्लुक था, यों ही गया। मालूम होता है कि चीन के पीछा करनेंवाले जहाजों ने उन्हे शहर से बाहर ही रोक दिया था और थोड़ी मामूली-सी लडाई हुई। सर्च-लाइट से कुछ जापानी जहाज पहचान लिये गये। इसलिए जापानी जहाज शहर के बाहर खेतो पर ही जल्दी-जल्दी बम डालकर चले गये। एक झोपडी बरबाद हो गयी और दो आदमियों के मामूली चोट आयी। कहा जाता है कि पीछा करनेवाले जहाजों मे से चलायी गयी मशीनगनों के गोले कई एक जापानी जहाजों में आकर लगे। जापानी जहाजो का कितना नुकसान हुआ, इसका तो पता नहीं। लेकिन ऐसा खयाल किया जाता है, या उम्मीद की जाती है, कि उन जहाजों में से कुछ को लौटने में मजबूरन् जगह-जगह उतरना पड़ा होगा।

अगले कुछ दिनो में अबतक चाँदनी रात रहेगी, शायद कुछ हवाई

हमले और हो। भविष्य मे चाँदनी रात का ताल्लुक और-और चीजों के साथ हवाई हमलो से भी समझा जाना चाहिए।

आज सुबह मुझे पता चला कि प्रधान सभापति ने पिछली रात के हमले मे मेरी हिफाजत के बारे में अपनी चिंता प्रगट की थी। उन्होंने खबर दी कि मुझे उनकी खास सुरग मे भेज दिया जाये, लेकिन इस खबर के आने से पहले ही मै तो विदेशी मत्री के यहाँ चला गया था।

बहुत से लोगो—मन्त्रियो और सेनापतियों—ने मुझे सुजनतापूर्ण निमन्त्रण दिया है कि जब-कभी मोका आये, मै उनकी सुरग इस्तैमाल करूँ। मेरा अन्दाज है कि बमबारी के इस जमाने मे यह शिष्टाचार और मित्र-भाव की हद है।

सुबह का वक्त मैने मिलने-मिलाने मे बिताया। पहले मै कोमिताग के प्रधान कार्यालय मे गया, जहाँपर मुझे प्रधान-मत्री डा० चूचिआ हवा मिले। कोमिताग का विधान और सगठन मुझे समझाने लगे। यह विधान तो बडा पेचीदा है और वह कैसे बना और किस तरह उसका सचालन होता है इस बारे मे मुझे बहुत ही धुँधला खयाल रहा। फिर भी मै इतना तो समझ गया कि कोमिताग कोई ज्यादा जनतत्रीय सस्था नही है, चाहे वह कहलाती जनतत्रीय ही है। उस दिन, बाद मे मैने कुछ मत्रियो से शासन की रूपरेखा को समझने की कोशिश की। वह तो और भी पेचीदा है और कोमिताग और सरकार के बीच का सम्बन्ध बड़ा अजीब है। शायद आपसी बाते उनके मजबूत सबध को कायम किये हुए है। मैने कुछ ऐसी किताबे और कागजात माँगे है, जिनसे सरकार और कोमिताग का ढाँचा समझ सकूँ।

उसके बाद मै विदेश-मत्री डा० वेग से मिलने गया, जिनका बे-बुलाया मै पिछली रात सुरग के भीतर रहा था। बहुत देर तक हम

दिलचस्प बातें करते रहे।

मेरी तीसरी मुलाकात डा० हॉलिटन के. तांग के साथ हुई जिनके सुपुर्द प्रकाशन का काम है। उनका और उनके काम का मुझपर अच्छा असर पड़ा।

नदी-किनारे के एक रेस्ट्रां (भोजनालय) में नाश्ते का इन्तजाम बड़े पैमाने पर किया गया था और वह तकल्लुफाना भी था। वह शहर के कारपोरेशन, कोमिंताग और नगर-रक्षक-सेना के कमान्डर की तरफ से दिया गया था। ऐसे तकल्लुफाना जल्से— भले ही मेजबान लोग उनमें काफी घरेलूपन ला देते हों—बड़े परेशान करते हैं। नुमायशी तकरीरें हुईं जिनका जवाब मैंने गिने-चुने बेजान शब्दों में दिया और फिर उनका तरजुमा हुआ है। मेरे वहाँ पहुँचने और वहाँसे चलने पर फौजी बाजे बजने लगते हैं और सलामी का तो कोई ठिकाना ही नहीं। मुझे डर है कि मेरी बेतकल्लुफ़ आदतें इस सबसे मेल नहीं खा पाती।

लेकिन सबसे बड़ी आफत तो खाना है, जो चलता ही रहता है; अखीर जिसका दीखता ही नहीं। और ठीक उसी वक्त जब में सोचता हूँ कि चलो खत्म हुआ, तभी मेज पर आधी दर्जन रकाबियाँ और आ धमकती हैं। चीनी खाना या उसकी कुछ चीजें मुझे पसन्द हैं। उनमें कला होती है। लेकिन खाना मेरी समझ में नहीं आता। मालूम होता है कि मजेदार रकाबियों की बहुत-सी किस्में हैं, जो एक के बाद एक चली आती हैं। खानेवाले थोड़ा-थोड़ा करके उन्हें खाते हैं। और तरह-तरह के उम्दा स्वादों का आनन्द लेते जाते हैं। खाने का तरीका मैं पसन्द नहीं करता। मेरा मतलब चॉप स्टिकों से नहीं है जिन्हें होशियारी और लियाकत के साथ इस्तेमाल करना होता है। काश कि मैं उनको इस्तेमाल करने में ज्यादा माहिर होता! सारी रक़ाबियाँ बीच

में रख दी जाती है और हरेक मेहमान बीच मे रखी हुई रसभरी रकाबियों में से ही लजीज चीजें उठाता जाता है और लाजिमी तौर से रसभरे कुछ टुकड़े मेजपोश पर गिरते जाते हैं।

तीसरे पहर मेरी एक बडी मजेदार मुलाकात मशहूर एट्थ रूट आर्मी (Eighth Route Army) के जनरल ये चियन-यिंग के साथ हुई। आना वोंग उनके साथ थी, जो मेरी बोली का तरजुमा करती जाती थी। आना वोग जर्मन (आर्य) है। पर शादी उनकी चीन मे हुई है और तन-मन से वह चीन-निवासिनी है। जापानी बमो से वह बाल-बाल बच चुकी है।

जनरल ये ने एट्थ रूट आर्मी के बारे मे बाते की और बताया कि अपनी फौजी कार्रवाइयो के अलावा और क्या-क्या काम वह कर रही है। अपने दृष्टिकोण से उन्होने चीन की मौजूदा हालत भी समझायी।

उसके बाद मे प्रधान मत्री या ठीक-ठीक कहे तो एक्जीक्यूटिव युअन के अध्यक्ष डा० कुग से मिलने गया। वहाँसे हम एक बड़ी चायपार्टी में गये, जो मेरा स्वागत करने के लिए खास-खास आदमियो की तरफ से दी जा रही थी। पार्टी बडी मजेदार रही और बहुत-से मत्रियो, उप-मत्रियों, भूतपूर्व मत्रियो और सेनापतियो तक से मेरा मिलना हुआ। चीनी जलसेना-नायक ने तो मुझे हैरत मे डाल दिया। मैने चीनी जहाजी बेडे के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि फिलहाल तो जहाजी बेडे में सिर्फ थोडी-सी तोपवाली नावे है। लेकिन कुछ भी हो जहाजी बेड़े का बाजा तो था ही, जो उस पार्टी मे अच्छी तरह से बजाया जा रहा था।

इस पार्टी में मै जिन लोगो से मिला उनमे सिंकिआग से आये हुए एक प्रतिनिधि भी थे। वह मेरे सम्बन्ध मे फ़ारसी में बोले। मुझे बड़ा अचरज हुआ। मेरे स्वागत में उन्होंने जो कुछ कहा, उसके बस एक-दो

शब्द मे समझ सका और उस राजसी भाषा में बातचीत जारी रखने की अपनी नाक़ाबिलीयत पर मुझे अफ़सोस हुआ।

बहुत-से विदेशी पत्रकार खास तौर से अमरीकन और रूसी पत्रकार, वहाँ मौजूद थे।

चीनियों के नाम तो एक आफत है, खासकर तब जब कि खासी तादाद से मेरा साबक़ा पडता है। बहुत से नाम तो करीब-क़रीब एक से ही सुनाई दिये। मेरा अन्दाज है कि इसी कठिनाई की वजह से चीनी लोगों की विज़िटिंग कार्डों से मुहब्बत बढी। ज्योंही आप किसी चीनी से मिलेंगे, फौरन ही वह अपना कार्ड निकालकर पेश कर देगा। मेरे पास बीसियों ऐसे कार्ड अभी से ही जमा होगये हैं। हिन्दुस्तान में कार्डों का आदी न होने की वजह से मेरे पास अपने कार्ड ज्यादा नहीं हैं; पुराने जरूर मेरे पास पड़े है। लेकिन वे कबतक चलेंगे ?

बहुत-से मन्त्रियों और दूसरे लोगो के साथ जिनमें, जनरल चैन चैग भी शामिल थे, भोज हुआ। हम दोनो की एक जबान न होते हुए भी जनरल चैन चेग को मै बहुत पसन्द करता हूँ। वह बेतकल्लुफ़ाना भोज था और हमारी बातचीते बडी मजेदार हुई। चीनी मुझे बहुत अद्‌भुत और बढे-चढे लोग जान पड़े। उनसे बात करने में मजा आता है, बशर्ते कि जबान की मुश्किल बीच में न आ जाये।

रात को कोई हवाई हमला नही हुआ।

: १ :

स्पेन के प्रजातन्त्र को श्रद्धांजलि *

आज जबकि दुनिया मे काली करतूतें की जा रही है, सस्कृति तथा सभ्यता नष्ट होती जा रही है और हर जगह हिंसा का बेरोक-टोक बोल-बाला है, तब स्पेन और चीन के प्रजातन्त्र राष्ट्रों ने अपने ऊपर आये हुए विकट सकटो का भी बडे शान के साथ मुकाबला करके उन लोगो के रास्ते मे रोशनी करदी है, जो अँधेरी रात में इधर-उधर भटक रहे थे पर कोई रास्ता नहीं दीख पडता था। जो हैरतगेज़ भयानक काण्ड हुए है, उनपर हमे दुख है, लेकिन उस मनुष्यतापूर्ण दिलेरी और साहस पर हम फख्र और उसकी तारीफ करते है, जो आफतो मे भी मुसकराती रही है और अधिक ताकतवर होगयी है और इन्सान की उस अजेय आत्मा के प्रति भी हम आदर प्रकट करते है जो किसी भी बडी से-बडी ताक़त के आगे सिर नही झुकाती, चाहे नतीजा कुछ भी क्यों न हो।

स्पेनवासियो के नसीब को हम बडी चिन्ता के साथ देख रहे हैं, लेकिन हम यह जानते है कि वे पददलित कभी नहीं किये जा सकते, कारण कि स्वय वह उद्देश्य ही अमिट है, जिसके पीछे इतना अजेय साहस और बलिदान हो रहा है। मैड्रिड, वेलेशिया और बार्सीलोना हमेशा जिन्दा रहेंगे और उनकी राख से उठ-उठकर स्पेन के प्रजातन्त्रवादी अपने स्वतन्त्र स्पेन का निर्माण करके अपने अरमान पूरे करेगे।

हम लोग जो अपनी आजादी के लिए कशमकश कर रहे है, स्पेनीय प्रजातन्त्र के इस ऐतिहासिक युद्ध से बहुत प्रभावित हुए है क्योंकि वहाँ पर ससारभर की आजादी खतरे में है। हमारी लडाई के सरहद्दी मोर्चे

सिर्फ़ हमारे देश ही में नही बल्कि चीन और स्पेन में भी हैं।

इसी बीच लाखों शरणार्थी लोग प्रजातन्त्र-स्पेन में भूखो मर रहे है और औरते और बच्चे ऊपर से दुश्मन की बमबारी ही नही सहते बल्कि खाने के बगैर मौत से भी लडते है। इस भयकर विपत्ति की हिन्दुस्तान उपेक्षा नही कर सकता और हमे चाहिए कि हम उनके लिए भोजन और सहायता पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करे।

मै उन लोगो को, जिन्होंने यह आयोजन किया है और स्पेनवासियो के जीवन-मरण के सकट के समय उनकी मदद पहुँचाने के लिए जो लोग इसमे हिस्सा बँटा रहे है उन्हे, मुबारकबाद देता हूँ। आजादी के उन दीवानो के लिए हम कर तो कुछ भी नही सकते, पर कम-से-कम उनके गौरवपूर्ण साहस और जिस उद्देश्य के लिए उन्होने असीम बलिदान किया है, उसके प्रति यह श्रद्धाजलि तो भेट कर ही सकते है।

स्पेन-प्रजातन्त्र की जय हो!

२४ जनवरी, १९३९

: २ :

स्पेन में

पिछले साल स्पेन में लड़ाई चल रही थी और मैं वहाँ गया था, पर मैंने ये लेख अब लिखे हैं और कोशिश की है कि जो कुछ असर मुझपर पड़ा, उसे लिख डालूँ। बदक़िस्मती से मैंने अपनी आदत के मुताबिक घटनाओं की कोई डायरी नहीं रखी, न कोई नोट ही लिये थे और वक्त गुजर जाने से वे असर गायब होगये और याददाश्त तो बड़ी अजीब-अजीब चालें खेलती है। फिर भी चूँकि वे काफी साफ़ थे, इसलिए मेरे दिमाग में बहुत कुछ रहा और रहेगा, भले ही नये-नये खतरे और नयी-नयी आफतें क्यों न आती जायें। जैसा मैंने चाहा था मैं इन्हें पूरा नहीं लिख सका, इसलिए इन लेखों को अपूर्ण वर्णन ही मानना चाहिए।

१

एक साल पहले और ठीक-ठीक कहूँ तो एक साल और एक हफ्ता पहले १४ जून १९३८ को हम जिनोवा में उतरे थे। हमारा निश्चय स्पेन—प्रजातन्त्र स्पेन जाने का था, इसलिए हम फ़ौरन मार्सेलीज जाने के लिए हवाई जहाज पर सवार होगये। हमारा हवाई जहाज रिवीयरा के चक्करदार और समुद्रतट के ऊपर होकर उड़ता चला। वहाँ पास-पोर्ट लेना-लिवाना, पुलिस के कायदे-क़ानून मानना वगैरा दस्तूर अदा किये गये। बिना आराम किये और खाना खाये हम वहाँ के कई दफ्तरों में गये और एक से दूसरे में भटकते रहे। स्पेन के लिए हमारे

पास एक खास पास था और स्पेन सरकार का वह निमन्त्रणपत्र भी था, जिसमें हमसे वहाँ आने की और उनके प्रतिनिधियो को हमारे लिए तमाम सुविधा करने और सहायता देने की सूचना दी गयी थी।

इस बल पर हमने सोचा कि अब हमारे रास्ते मे कोई अडचन नही आयेगी। लेकिन वह हमारी भूल थी। घटों हम मार्सेलीज के एक कोने से दूसरे कोने मे,एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर मे और वहाँसे भी अगले दफ्तर मे भेजे जाने के लिए फिर तीसरे दफ्तर मे और फिर चौथे दफ्तर मे—भागे-भागे फिरे। हमे पता चला कि कुछ और फोटो जरूरी है। इसलिए हमने एक फोटोग्राफर खोज निकाला, जिसने अपनी ओटो-मेटिक मशीन से मिनटो मे फोटो तैयार करके दे दिये।

एक कार्यालय का काम सँभालनेवाली महिला ने बताया कि स्पेन के लिए मेरे पास जो पास है वह ठीक नही है। वह लिखा हुआ था अंग्रेजी में और एक फ्रेंच कार्यालय को अंग्रेजी भाषा पर ध्यान देने की भला क्या जरूरत पडी थी ? मैंने कहा कि मैं उसके कुछ शब्दो का अनुवाद कर दूं, लेकिन वह तो अपनी बात पर अडी थी। इसलिए हम ब्रिटिश कौंसलेट मे गये और वहाँसे दूसरा पास प्राप्त किया। अबकी बार वह फ्रेंच मे था। लौटकर उसी हठीली महिला के पास आये। लेकिन उसने कहा कि फीस तो आपने दी ही नही है। हम फीस देने को तैयार हुए, तो वह हमारी नादानी पर घृणा के भाव से मुस्करायी। फीस तो पुलिस दफ्तर में जमा होनी चाहिए थी कि जो वहाँसे कुछ मील की दूरी पर था और उसकी रसीद पासपोर्ट के कार्यालय मे लायी जानी चाहिए थी।

अधिकारी की आज्ञा का हमें पालन करना पडा। पुलिस-दफ्तर हम गये, फीस जमा की और रसीद लेकर विजय की खुशी के साथ लौटे।

महिला ने देखकर कहा—यह क्या? जरूरी फ़ीस में से आपने तो आधी ही जमा की है! यह काफी नहीं है। साफ था कि या तो हमने उस महिला की बात ग़लत समझी, या हममें से किसीने भूल की थी। अब तो इसके सिवा और उपाय ही न था कि थके-मांदे पुलिस-दफ्तर फिर वापस जाते। जल्दी-जल्दी हमें जाना पड़ा क्योंकि कार्यालय के बन्द होने का समय आ गया था।

आखिरकार पूरी-पूरी फीस जमा करके ठीक रसीद ली गयी और कार्यालय की वह महिला हमारी परेशानी पर रहम खाकर हमपर मुस्करायी और अधिकार-पत्र हमें दे दिया। अपने कार्यालय को उसने हमारी वजह से खोले रखा था, हालाँकि शाम हो गयी थी और दूसरे दफ्तर बन्द हो चुके थे।

अब स्पेनिश कौसलेट का सवाल रहा, क्योंकि उसकी भी इजाजत पाना जरूरी था। हम वहाँ गये। डर था कि कहीं वह बन्द न हो गया हो। बन्द तो वह हो ही गया था, लेकिन हमारे पास जो काग़ज थे, उन्होंने गजब कर दिखाया। बन्द दरवाजे खोले गये और हमारा बड़ा हार्दिक स्वागत किया गया।

आखिरकार हमारी मनचाही चीज हमें मिली। रात होती जा रही थी और हम भी थके हुए थे। भूख हमें लग रही थी और आँखों में नींद घुल रही थी। खाने में स्पेनिश कौसल ने हमारा साथ दिया; लेकिन हम उसका साथ क्या दे सकते थे? हम तो बस बिस्तर और नींद की ही बात सोच रहे थे।

इस तरह हमारा यूरोप का पहला दिन बीता! अगले दिन तड़के साढे चार बजे हम बार्सीलोना का जहाज पकड़ने के लिए हवाई अड्डे की तरफ़ भागे। हमारे नीचे गहरा नीला भूमध्यसागर था और स्पेन के

समुद्री किनारे की रेखा दूर पर फैली हुई थी । शीघ्र ही हम स्पेनिश भूमि पर उडने लगे और लडाई और बरबादी के चिह्न खोजने लगे । लेकिन उतनी ऊँचाई से हमे कोई निशान दिखाई नहीं दिया । देश में शान्ति फैली हुई दीखती थी ।

अपने मंजिलेमकसूद, बार्सीलोना के हवाई स्टेशन पर हम पहुँचे जो शहर से कुछ मील दूर था । कुछ गलती होगयी दीखती थी । वहाँ हमसे मिलने के लिए कोई नही था और कुछ समय तक हम समझ न पाये कि हमे क्या करना चाहिए ? कुछ देर बाट जोहने के बाद हम मोटर-बस से शहर गये । हरे-भरे लहलहाते खेतो के बीच से हम गुजरे और कही-कही सडक के किनारे हमें घरो के खण्डहर भी मिले । जाहिर था कि उनपर हवाई जहाजो ने बम बरसाये होगे । लेकिन दृश्य शात था और मर्द और औरते खेतों मे काम कर रही थी । दूर पर बार्सी-लोना दिखाई दिया । वह समुद्र-तट के सहारे-सहारे फैला हुआ था और ठीक भीतर तक चला गया था । उस भूप्रदेश मे जहाँ-तहाँ खडी हुई छोटी-छोटी पहाडियाँ उससे मिली हुई थी । धूप लेता हुआ बार्सीलोना बडा गौरवशाली दिखाई दिया । मालूम होता था वर्षो के तजुर्बोवाला और जईफ वह है और लम्बा इतिहास उसके पीछे है; लेकिन फिर भी जैसे ताकत और जान उसमे है और जो कोई परदेसी उसे देखे उसका अपनी मधुर मुसकराहट से वह अपने सकट और दुख के वक्त भी हार्दिक स्वागत करता है ।

बार्सीलोना की चौडी और सायादार सडको पर हम पहुँचे । सडकें लोगो से भरी थी । लोग हँस रहे थे, खुश थे और अपने काम या कारो-बार पर तेजी से जा रहे थे । मुसाफिरों से खचाखच भरी ट्रामें इधर-से-उधर दौड रही थी । दुकाने खुली हुई थीं । थियेटरों, सिनेमा और

नाचघरो में चहल-पहल दिखाई दे रही थी। अचंभित होकर हमने इस बड़े शहर की जिन्दगी के इस चलते-फिरते नज्जारे को देखा। क्या यह उस युद्धकालीन सरकार की राजधानी थी जो विदेशी हमले और घरेलू झगड़ों के खिलाफ़ जीवन की साँसें ले रही है ? उसकी लड़ाई का मोर्चा कुछ ही मील की दूरी पर है और जिन्दगी मौत के किनारे ही चक्कर लगा रही है ? क्या यह वही शहर है जिसपर रोज हवाई जहाजों से बम बरसते है ? और जो लगातार आसमान से मौत का सामना करता आरहा है ?

लड़ाई के निशान काफी साफ दिखाई देते थे। बड़ी-बड़ी इमारत खडहर हुई पडी थी और उनके जले हुए हिस्से दिखाई देते थ। सड़कें और पक्के फर्श बम गिरने से टूट गये थे और उनमें गहरे गड्ढे पड़ गये थे। दुकाने खुली तो थी, लेकिन उनपर सामान बहुत कम था और शान-शोकत की चीजे नजर नही आती थी। आदमियो और औरतों के कपड़े पुराने थे और ज्यादातर फटे थे। हर जगह सिपाही वर्दी में दिखाई देते थे। हालांकि स्पेनवासियों का जैसा स्वभाव है, वे लोग हँसते थे, मगर चेहरों से उनके गम्भीरता और दुख टपकता था। वहाँके वाता-वरण मे शोक था। स्पेन की औरते अपनी ओढ़नी मे शानदार और आकर्षक लगती थी जैसी कि वे हमेशा लगा करती हैं। मुँह पर मुस्क-राहट थी, पर उनकी काली आँखो से चिन्ता टपकती थी। बिना टोप के वे जाती थी, क्योंकि टोप अनावश्यक विलासिता की चीज थी और अपनी नयी आजादी के चिह्नस्वरूप उन्होने टोप लगाना छोड़ दिया था। लेकिन चाहे वे खुश थे या दुखी, उनकी निगाह में, चाल-ढाल में और निश्चय में अभिमान था।

हम अपने होटल—मैजेस्टिक में पहुँचे और फ़ौरन ही विदेशी ऑफ़िस

को फ़ोन किया। थोडी देर बाद प्रचार और प्रकाशन मन्त्रिमण्डल की एक जवान महिला बहुत-कुछ माफी माँगती हुई हमसे मिलने आयी। वह बडी होशियार और सुन्दर थी। उसने हमारा सारा ज़िम्मा लिया और हमारे ठहरने और कार्यक्रम की सारी व्यवस्था की। बार्सीलोना के हमारे थोड़े वक्त के ठहरने मे वह हमारी मार्गप्रदर्शिका रही, दोस्त रही और हमारे वहाँ आने से सम्बन्ध रखनेवाली हरेक बात पर वह ध्यान देती रही।

इस खूबसूरत शहर में हमने पाँच दिन बिताये और पाँचो रात हवाई जहाजो से बमबारी हुई। इन पाँच दिनो मे नयी-नयी घटनाएँ घटी और तरह-तरह के अनुभव हुए। जिनकी याद हमेशा बनी रहेगी।

२१ जून, १९३९

२

क्या सिर्फ एक ही साल पहले में स्पेन मे था? तबसे जमाना बीत गया है। धक्के लगे हैं, मुसीबते आयी है। आते-जाते सूरज और चाँद को देख-देखकर दिन गिन-गिनकर तो हमारी ज़िन्दगी के साथ बढती जाती हुई अपनी भावनाओ और अनुभवो का सच्चा अन्दाज लगाया नही जा सकता। स्पेन मे जिन बहादुर, शानदार ज़िन्दगी से भरे-पूरे, राष्ट्र की आशा के प्रतीक मर्द और औरतो से में मिला, उनकी शक्ले आज खयाली शक्ले है। बहुत से मर गये और बहुत से पनाहगीर की तरह इधर-उधर मारे-मारे फिरते है। लेकिन मन उनकी याद से भरा है और अपने चन्द दिनों स्पेन में ठहरने मे जो खयालात मैंने उनके बारे मे बनाये, वे भी अबतक बने है। कभी-कभी तो ये स्मृतियाँ इतनी स्पष्ट होती हैं कि मुझे दीखता है कि जैसे कल ही मे वहाँ था और कभी लगता था कि



पं० जवाहरलाल नेहरू : स्पेन में इंटरनेशनल ब्रिगेड के साथ

जैसे हजार बरस बीत गये है और मै बूढ़ा, बहुत बूढ़ा हो गया हूँ। वक़्त हमारा बडा अजीब और धोखे में डालनेवाला साथी है! लेकिन याद-दाश्त की चालें उससे भी अजीब हैं। पुरानी भूली बातें बराबर याद आती हैं, अनजानी दुनिया की झलक आती जाती है और मानव-जाति और स्वयं मनुष्यता के आरम्भिक दिनों की धुंधली छाप पडती है। हम आदमी बहुत पुराने है और 'हव्वा' की बुलबुलो का तराना अब भी हमारे कानों मे गूंज रहा है और जन्नत के सपनों से हम परेशान रहते हैं और युगों की दुखभरी कहानियाँ हमें दुखी बनाती है।

बार्सीलोना मे व उसके आसपास हमे बहुत-से लोग मिले, और बहुतो की साफ-साफ और जीती-जागती तस्वीरे अबतक मन पर बनी हैं। फिर भी हरेक आदमी का महत्त्व तो उस बडे दृश्य में गायब हो गया, जो हमने वहाँ देखा। विद्रोह के शुरू के दिनों मे, जैसा कि हमने पढ़ा और हमे बताया गया, सरकार और जनता बिल्कुल तैयार नहीं थी। हर जगह बदअमनी फैली थी। दफ्तर बन्द थे। फौज, जैसी कुछ वह थी, बिखर गयी थी। फिर भी इस बदअमनी के पीछे लोगों में मुक़ाबिला करने की भारी ख्वाहिश थी। बिना हथियार लिये या फिर बुरी-तरह हथियारबंद होकर वे दुश्मन पर झपटे और जनरल फ्रेंको के आसानी से फतहयाब होने के सपने को उन्होंने तोड़ दिया और कई जगह उसकी फौजों को रोक दिया। बडी कोशिश के बाद मैड्रिड बचा लिया गया और उसकी बुर्जों पर दो बरस तक जनतन्त्र का झण्डा शान के साथ उडता रहा, हालाँकि उसकी सरहदों पर दुश्मन ने काबू कर लिया था और शहर पर करीब-क़रीब रोज ही बमबारी की जाती थी।

जबतक अच्छी फौज और गोला-बारूद न हो, तबतक रोक-थाम थोडी देर को ही हो सकती है। आदमी के साहस और संतोष की क़ीमत

बहुत होती है, लेकिन आजकल की लड़ाइयों मे आदमी योग्य फ़ौजों और उनकी मशीनगनों, टैंको और बमबारी की चालो का मुक़ाबिला नहीं कर सकते। इसलिए फ्रैंको की फौजे आगे बढ़ती गयीं। ज्यादातर उनमें मूर की, इटली और जर्मनी की टुकड़ियाँ थीं और गोला-बारूद की उनकी जरूरत इटली और जर्मनी पूरी कर रहे थे। दो होशियार जर्मन और इटैलियन जनरल स्टाफ उन फौजो की बड़ी हलचलो को चला रहे थे। स्पेन की प्रजातन्त्र सरकार के सामने एक समस्या यह थी कि वह ख़ास तौर से मुश्किल वक्त में एक नयी फौज तैयार करे, जबकि यह मुसीबतों मे लड़ रही थी और इंग्लैण्ड और फ्रांस की हस्त-क्षेप न करने की नीति से सतायी जारही थी। सरकारी दफ्तरो की उसे नये सिरे से व्यवस्था करनी पड़ी और फौज और आदमियो के लिए खाने और कपड़े का भी बन्दोबस्त करना पड़ा।

अमन के वक्त भी यह एक बड़ी समस्या थी और जिन्दगी और मौत के सवाल के साथ वह आदमी की शक्ति से करीब-करीब बाहर दिखाई देती थी। पर प्रजातन्त्र के नेताओ ने उस समस्या को सुलझाने की कोशिश की और कठिनाइयो और नाउम्मीदो के बावजूद वे उस पर जमे ही रहे। अन्दरूनी झगड़ों ने उन्हे कमजोर कर दिया और उनकी प्रगति को रोक दिया। जब मै स्पेन गया तो मैने दो साल की कोशिश का नतीजा देखा और वह मेरे लिए एक आश्चर्यजनक दृश्य था। पुरानी बदअमनी और हँसी के लायक हालत अब न रही थी और उसकी जगह चतुर सरकार व्यवस्थित तरीके से काम कर रही थी और एक शानदार फौज तैयार हो गयी थी।

मैं बहुत से सरकारी दफ्तरो मे गया और मन्त्रियों और महकमों के हाकिमों से मिला। बदकिस्मती से मै प्रधान-मन्त्री नैग्रिन से न मिल

सका, क्योंकि जब मैं बार्सीलोना मे था, वह मैड्रिड गये हुए थे। इस दफ्तरो में व्यवस्थित रूप से काम चल रहा था जो कि कार्य-क्षमता का चिह्न है। कहीं भी सुस्ती या आलस दिखाई नहीं देता था और न काम मे दौड-धूप होती जान पडती थी। लोग अपना-अपना काम चुपचाप खामोशी व जोश-खरोश के साथ कर रहे थे। अक्सर नये काम उन्हे करने पडते थे और उनका ढंग पुराने सिविल नौकरों की बनिस्बत जो मशीन के ही पुर्जे बन गये थे, जुदा था और ज्यादा बेजाब्ता था। लेकिन बदलती परिस्थितियों मे तो जरूरत काम के अनुकूल अपने को बनाने की थी। सिविल नौकरो में यह बात मुश्किल होती है, लेकिन वे लोग काम के साथ अपने को ठीक बिठा सकते थे। और उनके तजुर्बे मे जो-कुछ कमी थी वह उनके काम की तत्परता और काम कर डालने के सकल्प से पूरी हो जाती थी। चन्द रोज तक ही उनके हाल देखने के बाद और उनके बारे मे कुछ कहना मेरे लिए बेजा होगा। लेकिन मेरी राय यह बनी कि वहाँ आश्चर्यजनक कार्य-क्षमता थी और सहयोग था। झगडे भी रहे होंगे और असल मे झगडे और त्रुटियाँ थी भी लेकिन सतह पर वे दिखाई नही देती थीं।

खाने की समस्या गम्भीर थी। फौज थी जिसका पेट भरना था, और थी बडे शहरो की आबादी और फ्रैंको के प्रदेश के बहुत से पनाहगीर। दूध और मक्खन कही देखने को नही मिलता था। मांस, तरकारी और रोटी सबकी कमी थी। ऐसा हमने उस खाने से जाना जो सरकार के मेहमान होते हुए हमें बार्सीलोना के अच्छे-से-अच्छे होटल में मिला। नाश्ते में हमे एक प्याला काली कॉफी मिली और आधा रोटी का टुकड़ा। बस, और कुछ नही था। दोपहर के भोजन में और नाश्ते में भी मामूली चीजे व एक हरा शाक था। आलू तक नहीं मिलते थे।

खास आदमियो के लिए जब यह बात थी, तो दूसरों का तो कहना ही क्या ? हमारे सम्मान मे स्पेन की पार्लमेण्ट के प्रधान या स्पीकर ने भोज दिया। जल-पान में मुख्यत दो तरह की मिस्सी रोटियाँ थीं।

भले ही खाना कम था और कम होता जा रहा था, फिर भी फौज को भूखा नही रखा जा सकता था। उसकी माँग सबसे पहले पूरी की जाती थी। उसके बाद बच्चे थे, जिन्हे जितना दूध वहाँ मिल सकता था, दिया जाता था। पनाहगीरो मे बहुत-से बच्चे थे और सरकार ने उनके कुनबे बसा दिये थे। इनमे से एक कुनबे मे हम गये। एक खूबसूरत गाँव मे वह बसा हुआ था। उसीसे मिला हुआ एक बाग था। वहाँ हमने एक बगीचे के पास खुशनुमा जगह मे बच्चो को काम करते और खेलते हुए पाया। उनमे बहुत-से तो मुल्क के दूर-दूर के हिस्सो के अनाथ थे। उनके घर गिर गये थे और वे बरबाद हो गये थे। उस सबका डर उन बच्चो के मन मे बना था। लेकिन उनकी सरक्षिका अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह से समझती थी और बडी नर्मी और मुहब्बत के साथ उस कुनबे मे मेल-जोल का जीवन बिताने के लिए वह उन्हें तैयार करती थी। बच्चो को हर चीज के पीछे खूबसूरती दिखाने के लिए जरा-जरा-सी बात पर ध्यान दिया जाता था। कमरे सीधे-सादे थे, पर ऐसे तरीके से सजाये गये थे कि सजावट को देखकर खुशी होती थी और बिस्तर की चादर बच्चों को खुश करने के लिए होशियारी के साथ बनायी गयी थी।

बच्चो के कुनबो या घर के अलावा जहाँ बच्चे स्कूल-बोर्डिंग की तरह रहते थे, शहर के कुछ हिस्सो मे बच्चों के लिए भोजनालय भी थे। जो भी बच्चा वहाँ आ जाता, उसीको खाना मिलता। हमे बताया गया कि ऐसे भोजनालय आमतौर से म्युनिसिपैलिटी की मदद से किसी

संस्था या फ़ौजी सिपाहियो द्वारा खोले गये है। इन या ऐसे ही सम्पर्कों से नयी फ़ौज जनता के बहुत समीप आ जाती थी। खुशकिस्मती से ऐसे ही एक बच्चों के भोजनालय के उद्‌घाटन के वक्त हम मौजूद थे। लिस्टर की फौज के एक हिस्से ने उसे बनवाया था और उस हिस्से के प्रतिनिधि अफ़सर और आदमी मय अपने बेंड के उस समारोह में हिस्सा लेने के लिए आये थे। सिपाही चाहते थे कि लोग उन्हें खाना दें और बदले मे वे उनके बच्चों को खिलाने में मदद देना चाहते थे। इस भोजनालय मे तीन हज़ार बच्चो को रोज़ाना खाना खिलाया जा सकता था।

यह भोजनालय देखने में बड़ा खूबसूरत था। दीवारों पर बड़ी अच्छी सजावट हो रही थी। नीली पोशाक मे और सफ़ेद टोपी और लिबास सफाई के साथ पहने लडकियो की कतारे आनेवाले मेहमानों और बच्चो का स्वागत कर रही थी। ये लडकियाँ अपनी मर्ज़ी से काम करने आयी थी और उनका काम हॉल मे बच्चो को खाना परोसना था। हॉल के भीतर और बाहर जोश से भरे बच्चो की भीड़ खडी थी। उनमें तेज़ी थी, उम्मीद थी।

इस समारोह से पहली रात को बार्सीलोना पर तीन मर्तबा हवाई हमले हुए थे और कुछ बम जहाँ आकर गिरे थे वह जगह बच्चों के उस भोजनालय से ज्यादा दूर नही थी कि जिसका उद्‌घाटन हम देख रहे थे।

३० जून, १९३९

२

बार्सीलोना से दूसरे दिन बडे तड़के हम मोर्चे की तरफ चल दिये और शाम को बड़ी देर तक वहाँ रहे। दो घटे का रास्ता था और इजा-

जत का परवाना और एक स्पैनिश अफसर साथ होने की वजह से हम उन बहुत-से टिकट चैक किये जानेवाले ठिकानों में कोई कठिनाई नही हुई, जिनसे आगे मामूली आवागमन नही हो सकता था। जिन-जिन गाँवों में होकर हम गुजरे, उनमे लड़ाई के चिह्न साफ़ दिखाई देते थे। लेकिन इन चिह्नों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण चीज़ उन गाँवों का वायुमण्डल था। चारो ओर ऐसी खामोशी छायी थी कि जैसी लड़ाई के मैदान मे हुआ करती है। जीवन वहाँ अब भी है, लेकिन रोज़मर्रा की तरह नहीं चल रहा था। लोग देखते थे कि कब वक्त-वक्त पर फूट पड़नेवाला दोज़ख का शोर फूट पड़े।

हम लोग लिस्टर के मुकाम पर गये। लिस्टर और मॉडेस्टो के बारे में हम बहुत-कुछ सुन चुके थे। वे दोनों फौजी अफ़सर मामूली जगहो से तेज़ी से ऊपर उठे और अब प्रजातन्त्र के सबसे अधिक विश्वासपात्र सेना-पतियों में से थे। मैड्रिड के बहादुर रक्षक जनरल मिआजा के बाद ही उनकी प्रसिद्धि और सर्वप्रियता दिखाई देती थी। मिआजा पुराने गार्ड का पेशेवर फौजी अफसर था और उस समय मे जबकि फौज के अधिकाश भाग ने बगावत की थी, उसने प्रजातन्त्र का साथ नहीं छोड़ा था। लेकिन मॉडेस्टो और लिस्टर तो उस समय के सिविलियन थे। उनके पेशे भी फौजी नही थे। एक तो दर्जी था, दूसरा राजगीरी करता था। विद्रोहियो से लडने के लिए जब नयी फौज तैयार करने को आदमियों की माँग आयी, तो ये दोनों भर्ती हो गये और फौरन् ही उन्होंने अपूर्व योग्यता दिखायी। एक-एक सीढी चढ़ते-चढ़ते वे सिपाहियों की पलटनों से ऊपर उठे और दो बरस के अर्से मे, जब कि मैं स्पेन गया था, दोनों एक-एक लाख की फ़ौज के अफसर थे और लड़ाई में उनकी जीतो का भी बड़ा शानदार रिकार्ड था।



प० जवाहरलाल नेहरू : स्पेन मे श्री वी. के. कृष्ण मेनन और जनरल लिस्टर के साथ

मॉडेस्टो से हम मिलते-मिलते चूक गये और इसका हमें अफ़सोस हुआ। लेकिन लिस्टर से हम मिले और दोपहरी का ज्यादातर वक़्त उसीके साथ खाना खाते बिताया। सीधा-सादा खाना था। लिस्टर रोबीला आदमी है। चेहरा खुला और आकर्षक, उस लड़के की तरह जो जल्दी बढ़कर आदमी हो गया हो। लड़कपन और सयानपन का अजीब संगम था। गंभीरता की जगह थी उसकी जिन्दा-दिली और दूसरों को भी हँसा देनेवाली हँसी। जिम्मेदारी उसके ऊपर बहुत थी और जो बोझ उसे उठाना पड़ रहा था, वह भारी था। आये दिन उसे मुश्किल हालतों का सामना करना पड़ता था और जहाँ कहीं खतरा ज्यादा-से-ज्यादा होता था या दुश्मन आगे बढ़ते आते होते थे, तो उसका मुक़ाबिला करने के लिए झटपट उसे या मॉडेस्टो को ही ले जाया जाता था। फिर भी लिस्टर की खूबसूरती और चाल-ढाल में कोई अन्तर नही आया था और उसके तमाम ढंग में आत्म-विश्वास और निश्चय की झलक थी। वह तो एक ऐसा बहादुर योद्धा था कि जो किसी भी बात से भयभीत होता नहीं दिखाई देता था और महान् संकट की परिस्थिति में उसमें अपूर्व शक्ति भर आती थी।

नजदीक से मैंने उसे देखा क्योंकि मैं देखना चाहता था कि लोकप्रिय फ़ौज के ये नये अफसर कैसे है ? पुराने फ़ौजी आदमियों को तो हम जानते है, जो कट्टर अनुशासनप्रिय लोग है, चतुरता जिनकी सीमित होती है, जैसे रोजमर्रा के काम में लगे, गुजरे जमाने में पड़े हुए। नयी बातों से जिन्हें घृणा होती है, क्योंकि वे उनकी युद्ध की धारणाओं को ही बदल डालती हैं। पिछले महायुद्ध में ये लोग तो बहुत ही असफल साबित हुए। फिर भी उस तरह के लोग अब भी बहुत हद तक फ़ौजो पर हुकूमत कर रहे हैं। हिन्दुस्तान में भी ऐसे बहुत से लोग है और

अक्सर उनकी पुरानी सीखें हमे मिला करती है। वह तो कितनी बार हमसे कह चुके है कि हिन्दुस्तानियो के हम-जैसे बनने में (हां, यदि वे उतनी शानदार ऊँचाई पर कभी पहुँच भी सके) और बड़े-बड़े अफसरों की जगह पाने मे तो पुश्ते लग जायेंगी। अफसोस है इन पुराने फौजी आदमियों के लिए, जो पोलो और ब्रिज के खेल मे तथा परेड के मैदान मे इतने तेज दिखाई देते हैं, लेकिन आज के लिए वे गये-गुजरे हो गये है। अपना जमाना वे देख चुके और अब उन्हे यन्त्रकारो, इंजिनियरों और विशुद्ध राजनैतिक विचारोंवाले लोगों को जगह देनी पडी, जो मौजूदा अस्त्र-शस्त्रो की लड़ाई के तरीकों की बारीकियो को समझते है। उन्हें अपनी जगह उन सिपाहियो को देनी होगी जिनकी अन्य मामूली सिपाहियों से अलहदा कोई ऊँची श्रेणी नही है। वह तो जनता की फौज का अफसर होगा। फौज के लिए जो अनुशासन जरूरी है, उसे वह कायम रखेगा, लेकिन फिर भी अपने मातहत फौज के साथ भाई-चारे का नाता रखेगा।

लिस्टर को मैंने इसी नये नमूने का पाया। उन्होंने बहुत से अफसरो से मेरी मुलाकात करायी और अफसरो के ट्रेनिंग स्कूल मे मुझे ले गये। हर जगह मुझे घरेलूपन और भाई चारे का वायुमण्डल मालूम हुआ। और वहां उन सबको जोडनेवाली मजबूत कडी थी वह ध्येय, जिसकी रक्षा करने का सकल्प वे कर चुके थे। फिर भी अनुशासन वहां था। इस स्कूल मे मैंने देखा कि अफसरों को राजनैतिक शिक्षा देने का खयाल रखा जाता है। अफसरो के स्कूल छोड देने और अपने पलटनो मे जा दाखिल होने पर भी इस राजनैतिक शिक्षा की तरफ से लापरवाही नहीं होती, क्योंकि हरएक पलटन के साथ राजनैतिक कमिसर होता है, जिसकी राय किसी भी सवाल के राजनैतिक पहलुओ पर कमान्डर को हमेशा लेनी पडती थी। कमिसर का कर्त्तव्य होता था कि वह फ़ौज मे दिलेरी बनाये रखें।

स्पेनिश जनतन्त्र की सबसे खास बातों में एक बात थी दो बरस के अर्से में एक बहुत ही अच्छी फौज का तैयार करना, जिसमे हजारों सुयोग्य अफसर थे। जनतन्त्र की अन्त मे हार हुई, उसका कारण इस फौज की असफलता नहीं थी। भूख ने और इंग्लैण्ड और फ्रांस की दगाबाजी ने उसका खात्मा किया। मिआजा जैसे अफसर को छोडकर पुराने अफसर बेभरोसे के और अयोग्य साबित हुए, जैसा कि चीन में हुआ। बहुत-सी शिकस्ते तो इन पुराने अफसरो की वजह से हुई, लेकिन चूंकि नये तरीके के अफसरो की तादाद बढ़ गयी, इसलिए फौज में मजबूती आगयी। नये अफसरो में एक बात की कमी थी। वह यह कि युद्ध-विद्या की उन्हे लम्बी ट्रेनिंग नही मिली थी। लडाई सीखने के उनके शिक्षालय तो अक्सर लडाई के मैदान ही थे। वहीं उन्होंने बहुत-कुछ सीखा और तेजी से तरक्की की। लेकिन ऊँचे अफसरो के लिए लडाई का तख्ता पलट जाने और नयी हालतो के पैदा हो जाने की वजह से लोगों की भीड-की-भीड को जल्दी से सँभाल लेने का आदी हो जाना बहुत मुश्किल था। इस बात मे वे जर्मनी और इटली के सुरक्षित स्टाफ की बराबरी नही कर सकते थे, जो फ्रेंको की तरफ से लड रहे थे।

जनतन्त्र के रास्ते में यह एक भारी अडचन थी, लेकिन बढते-बढ़ते उसपर उसने विजय पायी और अफ़सरो की भीड मे से मॉडेस्टो और लिस्टर जैसे योग्य व्यक्ति सामने आये। ऊपर की रुकावट के विरुद्ध जनतन्त्र का लवाजमा कहीं ज्यादा लायक था, और मध्यमश्रेणी के उसके अफसर बडे चतुर और तेज थे। अगर उन्हे काफ़ी रसद और गोला-बारूद मिल जाते, तो इसमें सन्देह नही कि जनतन्त्र की नयी फौज फ्रेंको के पेशेवरों और विशेषज्ञो से जीत जाती, भले ही उनके पास जर्मनों और इटालियनों की फ़ौजे और अस्त्र-शस्त्र और गोला-बारूद

बहुत ज्यादा होता।

इस नयी फौज और उसकी ट्रेनिंग से मैं बड़ा प्रभावित हुआ। बाद में हमें अन्तर्राष्ट्रीय दल को देखने के लिए ले जाया गया, जिसने लड़ाई में बहुत नाम पैदा किया था। शुरू मे उसमे सब-के-सब विदेशी सैनिक ही थे, लेकिन जब मैं वहाँ गया, तब उसमें ६० फीसदी स्पेनिश थे। जनतन्त्र की सरकार विदेशी सैनिकों की भर्ती को रोक रही थी, क्योंकि उसका ध्येय यह बतलाना था कि वह स्पेन पर जर्मन, इटालियन, और मूर-जैसे विदेशियों के हमले की मुखालफत मे लड़ रही है, उस घरेलू लड़ाई मे नहीं कि जिसे विदेशी लोग महज मदद दे रहे है। लडाई के बारे मे बार्सीलोना में हमेशा यही कहा जाता था कि वह तो एक विदेशी हमला है, घरेलू लडाई नहीं है।

अन्तर्राष्ट्रीय दल का पता हमे आसानी से न मिल सका। यह एक अजीब बात थी कि पडोस मे भारी फौज पडी होने पर भी वह दिखाई नही देती थी, और देहात करीब-करीब बियाबान-सा दीख पडता था। हाँ, कहीं-कहीं सिपाहियो या संतरियो की टोलियाँ दीख पडती थी, और एक फौजी लॉरी इधर-उधर दौड रही थी। इसकी वजह हवाई जहाज थे और बमबारी का डर ही इतना था कि सब सार्वजनिक कार्रवाइयों को छोड देना पडा था। इसलिए फौज की टुकडियाँ छिपी रहती थीं, और छिपकर ही काम करती थी। उनकी तोपें पेडों की टहनियों से छिपा दी गयी थीं। पहाडियो पर ढेर-की-ढेर तोपें लगी थी, लेकिन थोडे से फासिले से वहाँ पेड और झाडियाँ ही दिखाई देती थीं।

अन्तर्राष्ट्रीय दल बहुत बड़े रकबे मे फैला हुआ था। उसके हरेक हिस्से को देखने का हमें वक्त नहीं था। हम अंग्रेजी और अमरीकन पल-टन में गये और जब एक बार हमने उनका पता लगा लिया तो हमें पहा-

डियों पर और नीचे घाटी में बहुत-से सिपाही दिखाई दिये। वे वहाँ बहुत पुरानी हालतों में पड़ाव डाले हुए थे। मिट्टी और झाड़ियों से उन्होंने चंदरोज़ा झोंपड़ियाँ बना ली थी, या छोटी खाइयाँ खोद ली थीं। आराम की तो वहाँ कुछ भी चीज़ नहीं थी, फिर भी वे इतने मस्त थे कि जैसे मैंने कहीं भी नहीं देखे। उनका उत्साह दूसरों को भी उत्साहित करने-वाला था। और उनके जोश और निश्चय को देखकर यह खयाल करना भी मुश्किल था कि जिस ध्येय के लिए ये लड़ रहे थे, वह पूरा न होगा।

उनमें से बहुत से सिपाहियो से हमने बातचीत की। अपनी इच्छा से वे दूर जगहों से आ गये थे। उन्हें उस ध्येय के लिए जान जुटाने की कोशिश खींच लायी थी कि जिससे हरेक युग मे स्त्री-पुरुषों को प्रेरणा मिली है। अपने घरबार, काम-काज और आरामो को उन्होंने छोड़ दिया था और अपनी पसद से उन्होने खतरे से भरी मुश्किल की ज़िन्दगी को हर वक्त की अपनी साथिन बनाया था। मौत तो उनकी अक्सर आने-वाली मेहमान थी। उन्हे हँसते और खेलते देखकर मुझे लड़ाई के पिछले दो बरसों की याद आयी। बदकिस्मती और बरबादी के खौफनाक बरसों का इस दल का शानदार रिकार्ड भी मेरे सामने आया। न जाने कितनी बार उन्होंने जनतंत्र को बचाया, और उनमे से हजारों स्पेन की जमीन में सो रहे हैं। मैंने जितने खुश-दिल युवको को देखा, उनमें से कितने ऐसे होंगे जो कभी अपने घर न लौट सकेंगे, और उनके कुटुम्बी बेकार उनकी राह देखते रहेंगे?

कुछ ही दिन बाद मैंने देखा कि वे फिर लड़ाई के मैदान में आगये थे, और उसके कुछ ही अर्से बाद फ्रैंको की फ़ौजो को रोकने के लिए उन्हें ईब्रो दौड़ आना पड़ा। उनमें से बहुत-से तो हमेशा के लिए वहीं रह गये। मुझे याद है कि उनमें से कई एक ने मेरे हस्ताक्षर लिये थे।

मर्जी न होते हुए भी मुझे अन्तर्राष्ट्रीय दल के इन बहादुर आदमियो के पास से चला आना पडा। मन मे कुछ ऐसा था जो मुझे उस वीरान दीखनेवाले पहाडी देश में ठहरने को प्रेरित कर रहा था, जिसने इतने मनुष्योचित साहस और जीवन की इतनी अमूल्य चीज़ को आश्रय दिया। एक स्पेनिश दल के स्थान पर हमें ले जाया गया। मेरे खयाल से वह स्थान मॉडेस्टो का था, हालाँकि मॉडेस्टो उस समय वहाँ पर नही था। हमारे सम्मान मे सब अफसर इकट्ठे हो गये थे, और हमने मिलकर खाना खाया। उस आनन्ददायक गोष्ठी मे यह याद रखना मुश्किल था कि लडाई का मैदान वहाँ से दूर नही है, और कोई भी अनिष्ट बम हमारी शान्ति को भग कर सकता है। एक स्पेनिश अफसर के सुन्दर भाषण के बाद हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिए शुभ-कामनाएँ की गयी। थोडे से शब्दो मे धन्यवाद देते हुए मैने उनका जवाब दिया और जनतत्र और उसकी अच्छी फौज के प्रति मैने अपनी सद्भावना प्रकट की।

और फिर बार्सीलोना की तारो की रोशनी मे वापिस लौट आया।

७ जुलाई, १९३९

४

जो खास-खास लोग स्पेन मे हमे मिले, लिस्टर उनमे से एक था। दूसरा आदमी था सीनर डेल वेयो जो उस वक्त प्रजातन्त्र का विदेशी मत्री था। बार्सीलोना पहुँचते ही हम उससे मिलने गये। बाद मे भी कई मौकों पर हम उससे मिले। आमतौर पर कूटनीतिज्ञ जैसे एकान्त-प्रिय और सुशील हुआ करते है और कोई भी बात निश्चित रूप से कहने मे घबराते है, और जिन्हे कूटनीति की चालो की लम्बी ट्रेनिंग मिली

होती है, वैसा वेयो नहीं था। वह तो एक पत्रकार और लेखक था। क्रांति ने उसे सार्वजनिक जीवन में आगे ला दिया था। अब भी उसमें पत्रकारपन कुछ मौजूद था। योग्यता उसकी असंदिग्ध थी; लेकिन उसके जिस गुण का असर मुझपर बहुत ज्यादा पड़ा, वह उसकी जीवट और उसका संकल्प था। मैड्रिड, बार्सीलोना और जेनेवा में उसने प्रजातन्त्र की तरफ से सभी मुश्किलों का मुकाबला किया, और 'अ-हस्तक्षेप' की पेचीदा चालबाजियों पर हावी होने की कोशिश की। मार्च १९३८ के संकट के दिनों मे और जब १९३८ की गर्मियों मे ईब्रो की लम्बी खिचती जाती लड़ाई जारी थी, तब वह प्रजातन्त्र के आदमियों के लिए आश्रय-स्थान और प्रकाश स्तम्भ बना।

प्रधान-मन्त्री डा० नैग्रिन के बाद वह सरकार का मुख्य व्यक्ति था। भारी से-भारी बरबादी होने और बदकिस्मती सामने आने पर इन दोनों मे से किसीके हाथ-पैर कभी नही फूले और न कभी हिम्मत ही छोड़ी। किसी राष्ट्र के अध्यक्ष ने इतनी बड़ी दिलेरी कभी नहीं बतलायी होगी जितनी डा० नैग्रिन ने कि जो उस समय जब कि ईब्रो पर ज़ोरों का हमला हो रहा था, जूरिक मे वैज्ञानिकों की एक कांग्रेस मे शामिल होने चले गये।

डेल वेयो और मुझमे बहुत देर तक बातचीत होती रही। उसने बिना किसी छिपाव के स्पेन की स्थिति समझायी और अपनी कठिनाइयों की न तो अवगणना की, न उन्हे कम ही बतलाया। नयी फौज ने जो प्रगति की, उससे लड़ाई के खयाल से वह सन्तुष्ट था, लेकिन स्टाफ़ का काम अच्छा नहीं था। उनके बहुत-सी शिकस्तें खाने और पीछे हटने का कारण दुश्मनों का बमबारी के साधनों, हथियारों, बड़ी-बड़ी तोपों के अलावा यह भी था कि प्रजातन्त्र के सेनापतियों को बड़ी लड़ाइयों का

तजुर्बा न था और कभी-कभी प्रजातन्त्र के रखे हुए पुराने अफ़सर भी जानबूझकर काम बिगाड़ देते थे । यह काम बिगाड़ना नातजुर्बे-कारी से भी ज्यादा हानिकारक था । लेकिन ज्यों-ज्यों फौज के अफ़सर धीरे-धीरे इन अविश्वसनीय अफसरों की जगह लेते जाते थे, त्यो-त्यो वह हानि कम-से-कम होती जा रही थी । नये अनुभवहीन आदमियो का रखा जाना एक महँगे का सौदा था, लेकिन अनुभव तो वहाँ लड़ाई के मैदान मे प्राप्त किया जा रहा था और ग़लतियाँ भी उसमें कम ही होती थी । फौज की योग्यता रोज-ब-रोज बढ़ती जाती थी, और इस खयाल से प्रजातन्त्र के लिए अधिक वक्त निकल जाना फ़ायदे-मन्द था ।

मेरे स्पेन में जाने के कुछ ही हफ्तों बाद फ्रेंको की फ़ौजो ने जर्मन और इटेलियन मित्र-राष्ट्रो का पूरा सहयोग लेकर ईब्रो पर भयंकर हमला किया । ईब्रो की यह लड़ाई कई हफ्ते तक चलती रही । और वह मौजूदा समय की खास लड़ाइयों में से एक थी । लेकिन आज हमारे मापदण्ड बड़े हो गये है और यह लड़ाई मामूली लड़ाई की एक छोटी-सी घटना भर रह गयी है । इस लड़ाई मे प्रजातन्त्र की फ़ौज ने अपना पूरी तरह से औचित्य दिखाया और फ्रेंको की फ़ौज से अपने को अधिक योग्य साबित किया । हवाई लड़ाई के साधनों और गोला-बारूद की कमी होते हुए भी उसने हवाई जहाजों और भारी फ़ौज के हमलो को बार-बार रोका ।

डेल वेयो को फौज के बारे मे कोई फिक्र नही थी । उसकी परेशानी तो यह थी कि गोला-बारूद कहाँसे आये ? और उससे भी ज्यादा फ़िक्र थी उसे रसद की । आगे आनेवाला जाड़ा रसद के लिए एक बड़ी मुश्किल का वक़्त था । रसद और गोला-बारूद का मिलना ज्यादातर इंग्लैण्ड और फ्रांस की नीति पर निर्भर था और इन दोनो देशों की सरकारे बरा-

बर 'अहस्तक्षेप' के नाम पर प्रजातन्त्र का गला घोंटने और छिपे-छिपे फ्रेंको को ही मदद देने की नीति पर उतारू थे।

म्यूनिक और उसके तमाम पुछल्ले तो अब आने को थे और हमारी विवेक-बुद्धि बार-बार के धोखे और झूठ से उस वक्त तक जड़ नहीं हो पायी थी। लेकिन इस 'अहस्तक्षेप' का तमाशा तो एक अचम्भे में डाल देने की चीज थी और उसने जाहिर किया कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के मापदण्ड और साधन कितने खराब हैं! स्पेन के इस अहस्तक्षेप ने ही म्यूनिक को जन्म दिया।

डेल वेयो ने मेरे सामने फ्रेंको के बारे में एक भी कड़ा शब्द नहीं कहा। उसने बस इतना कहकर छोड़ दिया कि उसके मुल्क के असली दुश्मन और आक्रमणकारी तो नात्सी और फासिस्ट लोग हैं। फ्रेंको उनके हाथ की कठपुतली है। जर्मनी और इटली तक के बारे में भी उसमें कोई कटुता नहीं थी। लेकिन उसमें उस वक्त कटुता की कमी नहीं रही, जब उसने ब्रिटिश और फ्रेंच सरकारों की बात की कि जो मित्रता के बुर्के में प्रजातन्त्रीय स्पेन को खत्म कर डालने को इतना सब कर रही थीं। खास तौर से मि० चेम्बरलेन की सरकार के तो वह बेहद खिलाफ था; क्योंकि उसका खयाल था कि फ्रेंच सरकार तो एकदम व्हाइटहॉल स्ट्रीट के ताबे है।

डेल वेयो ने मुझसे कहा कि चाहे वह खुले आम तो वह नहीं कह सकता था, पर उसे और उसकी सरकार को यह समझने पर विवश होना पड़ा कि ब्रिटिश सरकार दुश्मन है और दुश्मन को मदद दे रही है। हमारी इस बातचीत के कुछ ही दिन बाद फ्रेंच सरकार ने ब्रिटिश सरकार के कहने पर पिरेनीज सरहद को रोक दिया। मुसोलिनी को संतुष्ट करने के इरादे से यह एक बड़ी बुरी करतूत थी। इससे प्रजातंत्र के

ध्येय को जितनी हानि पहुँची, उतनी उन लडाइयों से भी नहीं हुई, जिनमे फ्रैंको जीता था।

हम दोनो ने भारत के बारे मे भी बातचीत की और मैंने अपना राष्ट्रीय झण्डा उसे भेंट किया। कई महीने बाद, सितम्बर के उस पिछले भाग्य निर्णायक सप्ताह मे कि जब मि० चेम्बरलेन और उनका छाता 'सन्तुष्ट करने की नीति' को हवाई जहाज से गोडेसबर्ग ले जा रहे थे, मै डेल वेयो से जिनेवा मे मिला। रसद की समस्या बडी गम्भीर होती जा रही थी। उनने मुझसे प्रार्थना की कि हिन्दुस्तान से खाद्य-सामग्री भिजवाकर मैं उनकी मदद करूँ। उसके अन्तिम दर्शन मुझे आधी रात के वक्त जिनेवा के मशहूर कॉफी-हाउस में हुए, जहाँ राजनीतिज्ञ और पत्रकार ताजा खबरो और राजनीति मे फैली बदनामी की चर्चा करने के लिए इकट्ठे हुए थे। उन्हे काफी मसाला मिल जाता था, क्योंकि मैकयावेली के जमाने की स्पष्ट चालबाजियो को अँधेरे मे डाल देने के लिए 'सन्तुष्ट करने की नीति' का अवतार हुआ था।

तीसरी आकर्षक व्यक्ति जो मुझे स्पेन मे मिली डोलोरीज थी। वह पैशनेरिया के नाम से मशहूर थी। उसके बारे मे अक्सर मैंने बहुत-कुछ सुना था और उससे मिलने के लिए मै उत्सुक था। वह कुछ अस्वस्थ थी, हम उसके छोटे-से घर पर गये। कोई एक घण्टे हम उसके साथ रहे और एक दुभाषिये की मारफत हम लोगों ने बातचीत की। उसकी असाधारण जीवट ने मुझे चकित कर दिया और और मैंने अनुभव किया कि वह उन बहुत ही खास औरतों मे से एक है, जो मुझे वहाँ मिली थी।

वह बास्क देश के एक सुरंगसाज की बेटी थी, अधेड उम्र की, सीधीसाधी दिखनेवाली और सयाने-सयाने बच्चो की माँ! चेहरा उसका सुन्दर और खुशगवार था, जैसे एक 'खुश नर्स' का होता है। उसपर

मुस्कराहट थी और फिर भी उस सबके पीछे अपने वर्ग और राष्ट्र के लिए असीम वेदना छिपी हुई थी। आराम के वक़्त में उसका चेहरा शांत था। लेकिन सतह के नीचे की हलचल की रेखा उसपर झलकती थी। जब वह बोलने को मुँह खोलती तो जोशीले शब्द उसके मुँह से निकलने लगते थे, एक शब्द के ऊपर दूसरा शब्द टूट पडता हुआ। अन्दर की ज्वाला से उसका चेहरा दमक उठता था और उसकी खूबसूरत आँखे ऐसी चमक उठती थी कि आदमी को लुभा ले। एक छोटे-से कमरे में मैंने उसकी बात सुनी और स्पेनिश भाषा मे जो कुछ कह रही थी, उसका कुछ हिस्सा ही मै समझ पाया। लेकिन उसकी भाषा की सगीत-मय ध्वनि मझे बहुत पसन्द आयी और उसके चेहरे और आँखो के हाव-भाव भी अर्थपूर्ण थे। तब मै समझा कि स्पेन की जनता पर उसका कितना असर है। मै नही कह सकता कि मुझ-जैसे आदमी पर, कि जिस-पर किसीका असर आसानी से पड नही पाता, जब उसने इतना असर डाल दिया, तो अपने देश के लोगों पर तो न जाने उसका कितना असर पडता होगा ?

कोई एकाध महीने बाद मै पैशनेरिया से पेरिस में मिला और देखा कि वह एक बडी सभा में भाषण दे रही है। वह स्पेन की भाषा में बोल रही थी और लोग वहाँ ज्यादातर फ्रांस के थे, इसलिए वे उसकी बात आसानी से नही समझ सकते थे। लेकिन उस भारी भीड़ को उसने स्तब्ध रखा। ऐसा थोडे ही अच्छे बोलनेवाले कर सकते हैं। और जब मीटिंग खत्म हुई, तो औरतों पर औरतें, लडकियों पर लड़कियाँ और कभी-कभी आदमी, अपने हाथों में उसके लिए फूल या स्पेन देश के लिए भेट ले-लेकर पास आने लगे। उनकी आँसूभरी आँखों में उसके लिए प्रेम भरा था और जब वह उन्हें छाती से चिपटाती थी या कहती

थी कि तुम खुश रहो, तो वे अक्सर रो पड़ती थीं। वह वहाँ स्पेन के दुख और दुर्जय आत्मा की मूर्ति बनी खड़ी थी। लेकिन वह एक राष्ट्र-भर के प्रतीक होने से भी कुछ और ज्यादा थी। वह उन असंख्य प्राणियों के लिए उनके जीवन की पीड़ा का और उसका अन्त करने की प्रेरणा और आशा की मूर्ति थी। वह प्रत्येक सामान्य स्त्री-पुरुष की प्रतीक थी कि जो युग-युग से दुख उठाते और शोषित होते आ रहे हैं और जो अब स्वतन्त्र होने पर कटिबद्ध थे।
